गाँधीजी के राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी – राजस्थान के विशेष संदर्भ में (1919 ई.–1948 ई.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की
पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध—प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी
पृथ्वीसिंह बून्दवाल

शोध निर्देशिका
डॉ. (श्रीमती) शकुन्तला मीणा
उपाचार्य,
राजकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सवाई माधोपुर

इतिहास विभाग
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2017

कोटा विश्वविद्यालय
कोटा

UNIVERSITY OF KOTA
KOTA

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री पृथ्वीसिंह बून्दवाल ने प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध **''गाँधीजी के राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी – राजस्थान के विशेष संदर्भ में (1919 ई.–1948 ई.)''** मेरे निर्देशन में 200 दिन से अधिक समय में रहकर कार्य पूर्ण किया है। इनका शोध–कार्य मौलिक, अप्रकाशित एवं स्तरीय है। मैं इस शोध–प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. (इतिहास विभाग) उपाधि–हेतु प्रस्तुत करने की सहर्ष अनुमति प्रदान करती हूँ।

दिनांक :

स्थान :

शोध निर्देशिका

डॉ. (श्रीमती) शकुन्तला मीणा
उपाचार्य,
राजकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सवाई माधोपुर

घोषणा–पत्र

मैं घोषणा करता हूँ कि पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध कार्य ''**गाँधीजी के राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी – राजस्थान के विशेष संदर्भ में (1919 ई.–1948 ई.)**'' मेरे मौलिक प्रयासों का प्रतिफल है तथा यह किसी पूर्व सम्पन्न शोध का अंश नहीं है।

दिनांक :

शोधार्थी

पृथ्वीसिंह बून्दवाल
इतिहास विभाग,
कोटा विश्वविद्यालय,
कोटा

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति में स्त्री व पुरूष दोनों को एक गाड़ी के दो पहियों की तरह माना गया है। दोनों पहिए साथ–साथ और बराबर चलेंगे तभी जीवन रूपी गाड़ी भली प्रकार अग्रसर हो सकती है। इसी दृष्टि से स्त्री को पुरूष की अर्धांगनी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि ''पत्नी पुरूष की आत्मा का आधा भाग है।'' उसी प्रकार भारतीय संस्कृति में माता को **''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी''** अर्थात माता और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। यह भी कहा गया है कि ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' अर्थात जिस स्थान पर महिला की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। अतः भारतीय महिलाओं के जीवन में बदलाव आना स्वाभाविक था। वैदिक काल के पश्चात भारतीय महिला को धर्म का आतंक दिखाकर नये–नये निषेधों एवं बंधनों में बांधा गया।

जिस देश में महिला को प्राचीनतम् धर्मग्रंथों तथा वेदों की ऋचाओं में विशिष्ट स्थान दिया गया और जिस देश में सीता, सावित्री, द्रौपदी, दमयन्ती, गार्गी, मैत्रेयी, जैसी पवित्र और श्रेष्ठ महिलायें हुईं जिन्होंने गौरवपूर्ण पद पाया, उसी देश में महिला की यह दयनीय दशा हो गई कि वह घर में बंद रहकर पुरूष की गुलामी करने में ही अपने जीवन की सार्थकता मानने लगी।

सौभाग्य से उन्नीसवीं शताब्दी भारतीय महिलाओं के लिये नव जागरण का सन्देश लेकर आयी। इस सदी के भारत की एक विशेषता यह थी कि उस काल में अनेक समाज सुधारक हुए जिन्होंने महिलाओं की दशा को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका विचार था कि, महिलाओं की स्थिति में सुधार किये बिना समाज सुधार तथा सामाजिक जागृति नहीं लाई जा सकती। इनके लिये अनेक समाज सुधार संस्थाओं की स्थापना की गई। समाज सुधार के लिये सर्वप्रथम प्रयास राजा राममोहन राय ने अपनी संस्था ब्रह्म समाज के माध्यम से किया। इसके बाद आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी आदि के द्वारा भी प्रयास किये गये। इसी समय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को दूर करने के लिये ब्रिटिश शासकों के द्वारा अनेक कानून बनाये गये जिसका क्रियान्वयन सम्पूर्ण देश के साथ–साथ राजस्थान में भी किया गया

महिला जागरण में महात्मा गांधी के विचारों ने, महिला समाज को गति देने में उत्प्रेरक का काम किया। गांधी जी चाहते थे कि महिला शक्ति का उपयोग देश सेवा के लिए हो।उनके आगमन से भारतीय महिलाओं में नव–जीवन का संचार हो गया। उन्होंने सोई हुई महिला शक्ति को न केवल जगाया बल्कि उनके गौरव और महत्व को समझा और समझाया। गांधी जी ने उनकी आत्मा को सच्चे अर्थों में पहचाना। वे महिलाओं को त्याग, सहनशीलता, विनम्रता, श्रद्धा और विवेक की प्रतिमूर्ति मानते थे। उन्होंने जगह–जगह घूमकर महिलाओं तक स्वतंत्रता, समानता और नवजागृति का संदेश पहुँचाया। साथ ही उनका भारतीय स्वरूप भी अक्षुण्ण रखा। उन्होंने महिलाओं को उनके अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया तथा उनके आत्मविश्वास को प्रबल किया। उन्होंने परिवार भावना से बढ़कर व्यापक सामाजिक भावना के विकास के लिये प्रत्येक महिला के मानसिक विकास को आवश्यक माना और साथ ही विश्व भावना तक उसका प्रसार चाहा। इसके लिये उन्होंने भारतीय महिलाओ की प्रगति को अवरूद्ध करने वाली समस्त सामाजिक कुरीतियों पर करारी चोट ही नहीं की बल्कि उनके मार्ग की बाधाओं को दूर करने के लिये अपनी पूरी शक्ति लगा दी।

महिलाओं के लिये आदर का भाव गांधी जी के चरित्र का मुख्य गुण था। वे उनकी शक्ति को भली–भॉति परखते थे। उनके शब्दों में – ''महिला को अबला कहना उसकी मानहानि करना है। अगर ताकत से हमारा मतलब पाश्विक शक्ति से है तो निःसंदेह पुरूष की अपेक्षा महिला में पशुता कम है।'' वे केवल ऐसे विचार प्रकट करके ही नहीं रह गये, उन्होंने उसे अमलीजामा देने का भी निश्चय किया।

भारतीय महिलाओं को राजनीति के क्षेत्र में लाने का श्रेय महात्मा गांधी को ही है। उन्होंने महिलाओं की सहनशीलता और आत्मपीड़न की क्षमता का राष्ट्रीय स्तर पर सत्याग्रह और स्वतंत्रता संघर्ष के अस्त्र के रूप में प्रयोग किया। भारत के अन्य भागों की तरह ही राजस्थान की महिलाओं में भी गांधी जी के विचारों का प्रभाव पड़ा, जो कि राजस्थान् की महिलाओं के उत्थान में सहायक सिद्ध हुआ। गांधी जी का जब सर्वप्रथम आगमन हुआ उस समय राजस्थान की महिलाओं में जागृति लाने के लिये क्षेत्रीय स्तर पर राजनीतिक आन्दोलन के अग्रणी नेताओं के प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय थे।

समाज सुधार के लिये किये जा रहे कार्यों और शिक्षा के विकास से जो जन–जागृति फैली उसका प्रत्यक्ष प्रमाण महात्मा गांधी के राजस्थान आगमन में दृष्टिगोचर हुआ।

गांधी जी ने जब यहाँ पर महिलाओं की सभा को सम्बोधित करते हुए उन्हें देश के स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिये प्रेरित किया तो वे उनके विचारों से काफी प्रभावित हुई। यह महिलाओं में आ रही जागृति का ही परिणाम था कि उन्होंने गांधी जी द्वारा प्रारंभ किये गए असहयोग आन्दोलन में न केवल भाग लिया बल्कि आंदोलन में पुरूषों के साथ पूर्ण सहयोग किया। सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय यहाँ की महिलाओं ने मद्यनिषेध के लिये शराब की दुकानों तथा विदेशी वस्त्रों के सामने धरना देने, नारे लगाने का कार्य किया।

यहाँ की आदिवासी महिलाओं ने जंगल सत्याग्रह में भाग लेकर ब्रिटिश शासन का विरोध किया। भारत छोड़ों आंदोलन में भी महिलाआं ने बड़ी संख्या में भाग लिया और जेल की यात्राएँ की। इस प्रकार भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह ही राजस्थान की महिलाओं पर गांधी जी के विचारों का काफी गहरा प्रभाव पड़ा जो उनके उत्थान में सहायक सिद्ध हुआ।

वास्तव में महात्मा गांधी के आन्दोलनों ने महिलाओं में अपनी शक्ति के प्रति चेतना प्रदान की तथा समाज में उनकी वास्तविक स्थिति का भी आभास दे दिया। अपनी सामर्थ्य और योग्यता में नवीन विश्वास प्राप्त कर वे अब इस बात से परिचत हो गई कि घर और समाज में अपना उचित स्थान प्राप्त करने के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ेगा।

प्रस्तुत शोध प्रबंध ''**गाँधीजी के राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी – राजस्थान के विशेष संदर्भ में (1919 ई.–1948 ई.)** तक चलाये गये आंदोलनों के योगदान को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित राजस्थान के नेताओं द्वारा महिला उत्थान के लिए किये गये कार्यों का विश्लेषण भी इसमें किया गया है।

आभार

इस शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण हेतु शोध निर्देशिका डॉ. (श्रीमती) शकुन्तला मीणा, उपाचार्य राजकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाई माधोपुर (राजस्थान) के प्रति हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अत्यन्त व्यस्तता के उपरान्त भी समय–समय पर अपने स्नेह, आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन के साथ कुशल मार्गदर्शन प्रदान किया। आपने बहुमूल्य सुझाव एवं निर्देशन दिया जिसके अभाव में यह शोध कार्य कठिन था।

मैं, अपनी माँ श्रीमती प्रेम देवी एवं पिताजी सुबेदार श्री नत्थुराम का हृदय से आभारी हूँ, जिनके आशीर्वाद ने मुझे इस शोध कार्य को पूर्ण करने में सफलता दिलायी। मैं चाचा प्रभुदयाल बून्दवाल (बैंक प्रबन्धक), भाई धर्मपाल सिंह दिलेन्द्र (नर्सिंग ऑफिसर), यशपाल सिंह दिलेन्द्र (सहायक कमाडेन्ट) का भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मेरा समय–समय पर उत्साहवर्धन किया।

मैं आदरणीय गुरुवर डॉ. पी.सी. जैन (उपाचार्य राजकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर, प्रोफेसर ए.एम. खान (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर), डॉ. रतनलाल कुमावत (सहायक प्रोफेसर (महात्मा गाँधी पी.जी. महाविद्यालय, श्रीमाधोपुर), श्री कुलराज व्यास (व्याख्याता टी.टी. कॉलेज, भरतपुर), डॉ. ओमपाल कालावत (प्राचार्य नवजीवन महाविद्यालय, काँवट, सीकर), श्री सिताराम साम्भरिया (रिटार्यड प्राचार्य कॉलेज एजुकेशन, राजस्थान), श्री मुनेश यादव (आर.जे.एस.), श्री हेमेन्द्र गुर्जर (प्रबन्धक गेस्टा हाऊस, भरतपुर), श्री सुरेश शर्मा (अध्यापक मा.शिक्षा, राजस्थान), डॉ. मुकेश सकरवाल (अध्यापक मा.शिक्षा, राजस्थान), डॉ. विक्रम सिंह चौधरी (सहायक प्रोफेसर एस.एस.एस. कॉलेज, जमवारामगढ़),

डॉ. विपुल शर्मा (डिप्टी रजिस्ट्रार, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा) एवं श्री आशुतोष जी (वरिष्ठ लिपिक रिसर्च डिपार्टमेन्ट, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा), श्री सोहनचन्द लाडना (पुलिस उपाधिक्षक, जयपुर) का भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने शोध–कार्य के लिए उचित निर्देशन एवं साकारात्मक सहयोग प्रदान किया।

मैं उन सभी सूचनादात्रियों के योगदान के प्रति भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी व्यस्तता के बावजूद समय निकालकर शोध कार्य हेतु सूचनाएँ प्रदान की और शोध कार्य को सफल बनाया।

अंत में, मैं धन्यवाद देता हूँ विजय कुमार सिंह को जिन्होंने त्रुटिमुक्त, स्वच्छ टंकण एवं श्रेष्ठ मुद्रण का कार्य कर शोध को प्रस्तुतिकरण योग्य तैयार किया।

शोधार्थी

पृथ्वीसिंह बून्दवाल
इतिहास विभाग,
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

विषयानुक्रमणिका

		पृ.सं.
प्राक्कथन		i-iii
आभार		iv
प्रथम अध्याय	परिचयात्मक	1-50
द्वितीय अध्याय	स्त्रियों की स्थिति के विषय में गाँधीजी के विचार	51-110
तृतीय अध्याय	राजस्थान में महिला जागृति	111-133
चतुर्थ अध्याय	कृषक आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी	134-179
पंचम अध्याय	गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम एवं महिलाओं की भूमिका	180-211
षष्ठम अध्याय	सक्रिय राजनीति और महिलाओं की भागीदारी	212-229
सप्तम अध्याय	महिला कार्यकर्त्ताओं का संक्षिप्त जीवन वृत्त	230-247
	उपसंहार	248-265
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	266-274

प्रथम अध्याय

परिचयात्मक

द्वितीय अध्याय

स्त्रियों की स्थिति के विषय में गाँधीजी के विचार

तृतीय अध्याय

राजस्थान में महिला जागृति

चतुर्थ अध्याय

कृषक आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी

पंचम अध्याय

गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम एवं महिलाओं की भूमिका

षष्ठम अध्याय

सक्रिय राजनीति और महिलाओं की भागीदारी

सप्तम अध्याय

महिला कार्यकर्त्ताओं का संक्षिप्त जीवन वृत्त

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

गाँधीजी के राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी – राजस्थान के विशेष संदर्भ में (1919 ई.–1948 ई.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की
पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध—सारांश

कला संकाय

शोधार्थी
पृथ्वीसिंह बून्दवाल

शोध निर्देशिका
डॉ. (श्रीमती) शकुन्तला मीणा
उपाचार्य,
राजकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सवाई माधोपुर

इतिहास विभाग

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2017

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

महिला जन–जागरण में महात्मा गांधी के विचारों ने, महिला समाज को गति देने में उत्प्रेरक का काम किया। गांधी जी चाहते थे कि महिला शक्ति का उपयोग देश सेवा के लिए हो। उनके आगमन से भारतीय महिलाओं में नव–जीवन का संचार हो गया। उन्होंने सोई हुई महिला शक्ति को न केवल जगाया बल्कि उनके गौरव और महत्व को समझा और समझाया। गांधी जी ने उनकी आत्मा को सच्चे अर्थों में पहचाना। वे मेहिलाओं को त्याग, सहनशीलता, विनम्रता, श्रद्धा और विवेक की प्रतिमूर्ति मानते थे। उन्होंने जगह–जगह घूमकर महिलाओं तक स्वतंत्रता, समानता और नवजागृति का संदेश पहुँचाया। साथ ही उनका भारतीय स्वरूप भी अक्षुण्ण रखा। उन्होंने महिलाओं को उनके अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया तथा उनके आत्मविश्वास को प्रबल किया। उन्होंने परिवार भावना से बढ़कर व्यापक सामाजिक भावना के विकास के लिये प्रत्येक महिला के मानसिक विकास को आवश्यक माना और साथ ही विश्व भावना तक उसका प्रसार चाहा। इसके लिये उन्होंने भारतीय महिलाओ की प्रगति को अवरूद्ध करने वाली समस्त सामाजिक कुरीतियों पर करारी चोट ही नहीं की बल्कि उनके मार्ग की बाधाओं को दूर करने के लिये अपनी पूरी शक्ति लगा दी।

गांधी जी के जीवन का महत्वपूर्ण कार्य महिलाओं का उद्धार करना था। समाज के क्षेत्र में उनकी सबसे बड़ी सेवा महिलाओं के प्रति परम्परागत स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना था। महिलाओं के मन में बहुत कुछ कर गुजरने के लिये जोश व शक्ति थी, परन्तु संगठन के अभाव में वे अपने हृदय के भावों को कार्य रूप में परिणित नहीं कर पा रही थीं। गांधी जी ने उनके जोश और उत्साह को एक सूत्र में पिरोकर उनमें दृढ़ इच्छा शक्ति तथा संगठन की भावना उत्पन्न की।

गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में कस्तूरबा को अपने सत्याग्रह के विचार की प्रेरणा देने वाली अपनी गुरू कहा है। उनका ध्यान महिलाओं की जुझारू क्षमता पर पहली बार दक्षिण अफ्रीका में गया। उन्होंने अनेक बार इसका उल्लेख किया है कि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन में उन्होंने महिलाओं में आत्मत्याग और पीड़ा सहने की अद्भूत क्षमता देखी।

जहाँ तक पुरुष व स्त्री के कार्यगत क्षेत्रों का सवाल है, तो गाँधी कार्यगत विशिष्टता में विश्वास करते थे। एक ओर पुरुष का कार्य है कि वह परिवार के लिए रोटी का अर्जन करे, वहीं स्त्रियों का यह दायित्व है कि वह घर व बच्चों के पालन–पोषण में अपनी श्रेष्ठतम भूमिका अदा करे। गाँधी के दृष्टिकोण में स्त्रियों की भूमिका एक पालनकर्त्ता की थी। उनका मानना था– ''महिलाऐं मुख्य रूप से घर गृहिणी होती है, नौनिहालों की उत्तम परवरिश महिलाओं की मुख्य व एकाधिकारपूर्ण जिम्मेदारी होती है। बिना उनके लालन–पालन के मानवता के अस्तित्व कदापि संभव नहीं है।'' उन्होंने विवाह को महिलाओं के लिए अवश्यंभावी चीज मानने से इंकार कर दिया।

यद्यपि गाँधी सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियों की सक्रिय भूमिका के प्रबल पैरोकार नहीं थे फिर भी जब 1921 में महिला मताधिकार का मुद्दा उठा तो उन्होंने इसका पुरजोर समर्थन किया तथा सत्याग्रह आंदोलन व दांडी मार्च की सफलता में स्त्रियों की उत्साहपूर्ण व सक्रिय भागीदारी की निर्णायक भूमिका थी। ''गाँधी अहिंसक संघर्षों में महिलाओं की भूमिका को अपनी मूल अवधारणा के विपरीत नहीं मानते थे। वरन् इसके उलट उनका ख्याल था, सत्याग्रह में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित कर महिलाऐं सम्पूर्ण मानवता के पालन–पोषण की अपनी जिम्मेदारी को और अधिक सुविस्तृत व सुव्यापक करती है।'' कैथल में स्त्रियों की एक सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा– ''समाज की बुनियाद घर के अस्तित्व पर टिकी होती है तथा 'धर्म' के विकास का श्रेष्ठतम स्थान घर होता है।'' वे भारतीय स्त्रियों के वस्त्र चयन व वैचारिक सादगी से काफी प्रभावित थे। उन्होंने इस बात का बार–बार अपने लेखन में उल्लेख

किया कि वह मदुरई की सफेद साड़ी, बंगाल की लाल किनारी वाली साड़ी तथा पंजाबी स्त्रियों की सादगीपूर्ण वस्त्र–विन्यास से काफी प्रभावित थे। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि स्त्रियों के वास्तविक आभूषण उनके उत्कृष्ट गुण है, उनके हुनर हैं, उनकी सुचिता है तथा उनकी सतीत्व है, अतः आत्मा की पवित्रता अधिक महत्त्वपूर्ण है न कि बाह्य सौंदर्य, जो कि क्षणभंगुर व मात्र चमड़ी की सुंदरता होती है।

गाँधी का मत था कि स्त्रियों को किसी भी तरह वैधानिक अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा– ना हमें बेटियों व बेटों दोनों को पूर्ण समानता के भाव के साथ समान रूप से अपनाना चाहिए।'' गाँधी की प्रेरणा से 1931 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पारित किया– ''इस सम्मेलन का यह मत है कि उत्तराधिकार व सम्पत्ति से सम्बन्धी मामलों में स्त्रियों व पुरुषों दोनों का समान अधिकार सुनिश्चित होना चाहिए।'' प्राचीन इतिहास का संदर्भ देते हुए उन्होंने लिखा कि प्राचीनकाल में स्त्रियों की स्थिति अधिक न्यायपूर्ण तथा भागीदारी वाली थी। वे सार्वजनिक बहसों व सभाओं में खुलकर भाग लेती थीं तथा निःसंकोच अपने विचारों को प्रकट करती थी। उन्होंने यह सवाल उठाया कि– ''क्यों हमारी महिलाएँ पुरुषों के समान अधिकारों का उपभोग नहीं करती हैं? क्यों वे खुले माहौल में स्वतंत्र रूप से विचरण नहीं कर सकती हैं? गाँधी ने 'पर्दा' को 'बर्बरतापूर्ण प्रथा' समाज का अपूरणीय क्षति करने वाला बताकर उसे सिरे से खारिज कर दिया।

दहेज प्रथा भी एक अन्य तरह की सामाजिक बुराई है, जिसने स्त्रियों के जीवन को विकृत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। 1929 में गाँधी ने अपने समकालीन समाज को अचंभित करते हुए कहा कि, ''यदि मेरे पास मेरी देख–रेख में कोई लड़की होती, तो मैं उसे जीवन भर कुंवारी रखता, बजाय इसके कि उसे किसी ऐसे व्यक्ति को सौंपता, जो उसे अपनी पत्नी बनाने के एवज में एक पाई पाने की भी अपेक्षा रखता।'' गाँधी ने युवाओं से दहेजरूपी

विकृत प्रथा की समाप्ति की अपील कर वस्तुतः एक बड़े व व्यापक युवा आंदोलन की नींव डाल दी।

गाँधी ने लड़कों व लड़कियों के लिए समान शिक्षा का समर्थन किया। 1937 में अपने 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम' के अंतर्गत गाँधी ने 7 से 14 वर्ष तक लड़के व लड़कियों दोनों के लिए मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव किया। साथ ही स्त्रियों के लिए पाठ्यक्रम में ऐसे तत्त्वों को शामिल न करने का प्रस्ताव किया जो उन्हें उनकी भावी भूमिका तथा मातृत्व व गृहणी बनने में मददगार हो सके। गाँधी को इस बात का पूरा यकीन था कि आर्थिक आजादी महिला—सशक्तिकरण में अहम भूमिका अदा कर सकती है। वह महिलाओं को चरखा कताई व बुनाई करने के लिए निरंतर प्रोत्साहित एवं प्रेरित करते रहते थे। वास्तव में गाँधी ने यह महसूस किया कि स्वदेशी आंदोलन की सफलता तभी संभव है जब महिलाएँ व्यापक स्तर पर तथा बड़े पैमाने पर कताई व बुनाई का काम अपने हाथों में लेंगी, साथ ही वह इसके द्वारा महिला को आर्थिक रूप से सशक्त व स्वतंत्र करने का प्रयास भी कर रहे थे।

गाँधी ने एक ओर महिलाओं को सामाजिक व सांस्कृतिक शोषण का शिकार पाया। वहीं दूसरी ओर उसे निचले स्तर से सामाजिक परिवर्तन का निर्णायक वाहक व उत्प्रेरक भी माना। इसलिए गाँधी परिवार व समाज में महिलाओं की प्रभावी सामाजिक भूमिका के प्रबल पैरोकार थे। वे उनमें समाज व राष्ट्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की महती जिम्मेदारी निहित करना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने महिलाओं को हस्तनिर्मित सूत उत्पादक के रूप में जो कि विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का सर्वाधिक निर्णायक हथियार था, स्वदेशी आंदोलन के केन्द्र में स्थापित किया। स्वदेशी व असहयोग के उनके कार्यक्रम महिलाओं की पारंपरिक भूमिकाओं व विचारों से प्रेरित थे। ऐतिहासिक रूप से कहा जाए, तो महिलाएँ घरेलू उपयोगी हेतु प्रयुक्तम वस्त्रों की कताई व बुनाई के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी रहीं हैं तथा यह एक वैश्विक प्रवृत्ति रही है। इस प्रकार से सुख व आधिपत्य वाले इस संसार में उसका संघर्ष मौन और

अहिंसक रहा है। आश्चर्यजनक रूप से गाँधी ने महिलाओं की इन दो अभिन्न गुणों की पहचान करके उसे पारिवारिक गतिविधियों से राष्ट्रीय गतिविधियों में समाहित, संपूरित व एकीकृत कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप एक जनाधारित ठोस राष्ट्रवादी संघर्ष की नींव पुख्ता व परिणामोत्पादक हुई। महिलाओं की दृढ़ता व साहस के आगे ब्रिटिश साम्राज्य को भी नतमस्तक होना पड़ा। यह अपने आप में एक बहुत बड़ी सफलता थी और इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्होंने प्रायः उपेक्षित न नजरअंदाज कर दिए गए तथाकथित ''महिला कार्य व श्रम'' की महत्ता को स्थापित किया तथा उसे 'भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन' की सफलता का पर्याय बनाया।

राजस्थान में पूर्व आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति

मध्यकाल में विदेशियों के आगमन से स्त्रियों की स्थिति में जबरदस्त गिरावट आयी। अशिक्षा और रूढ़ियाँ जकड़ती हुई, घर की चाहरदीवारी में कैद होती गई और नारी एक अबला, रमणी और भोग्या बनकर रह गई। आर्य समाज जैसी अनेकों समाजसेवी संस्थाओं ने नारी शिक्षा आदि के लिए प्रयास आरम्भ किये। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत के कुछ समाजसेवियों ने अत्याचारी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठायी। इन्होंने तत्कालीन अंग्रेज शासकों के समक्ष स्त्री पुरुष समानता, स्त्री–शिक्षा, सती प्रथा पर रोक तथा बहुविवाह पर रोक की आवाज उठायी। इसी का परिणाम था कि सती प्रथा निषेध अधिनियम 1829, 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1891 में एज ऑफ कन्सटेन्ट बिल, 1891 में बहुविवाह रोकने के लिए वेटिव मैरिज एक्ट पास कराया। इन सभी कानूनों का समाज पर दूरगामी परिणाम हुआ। वर्षों से नारी स्थिति में आयी गिरावट में रोक लगी। आने वाले समय में स्त्री जागरूकता में वृद्धि हुई और नये नारी संगठनों का सूत्रपात हुआ जिनकी मुख्य मांग स्त्री–शिक्षा, दहेज, बाल–विवाह जैसी कुरीतियों पर रोक, महिला अधिकार, महिला शिक्षा की मांग की गई।

महिलाओं के पुनरोत्थान का काल ब्रिटिश काल से शुरू होता है। ब्रिटिश शासन की अवधि में हमारे समाज की सामाजिक व आर्थिक संरचनाओं में अनेक परिवर्तन किए गए। ब्रिटिश शासन के 200 वर्षों की अवधि में स्त्रियों के जीवन में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अनेक सुधार आये। औद्योगिकीकरण, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक आंदोलन व महिला संगठनों का उदय व सामाजिक विधानों ने स्त्रियों की दशा में बड़ी सीमा तक सुधार की ठोस शुरूआत की।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक स्त्रियों की निम्न दशा के प्रमुख कारण अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, धार्मिक निषेध, जाति–बन्धन, स्त्री नेतृत्व का अभाव तथा पुरुषों का उनके प्रति अनुचित दृष्टिकोण आदि थे। हिन्दू संस्कृति में स्त्रियों की एकान्तता तथा उनके निम्न स्तर के लिए पाँच कारकों को उत्तरदायी ठहराया है। ये हैं– हिन्दू धर्म, जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार, इस्लामी शासन तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद। हिन्दूवाद के आदर्शों के अनुसार पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ होते हैं और स्त्रियों व पुरुषों को भिन्न–भिन्न भूमिकायें निभावी चाहिए। स्त्रियों में माता व गृहणी की भूमिकाओं की और पुरुषों से राजनीतिक व आर्थिक भूमिकाओं की आशा की जाती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार द्वारा उनकी आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार लाने तथा उन्हें विकास की मुख्य धारा में समाहित करने हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया गया है। महिलाओं को विकास की अखिल भारतीय धारा में प्रवाहित करने, शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति सजग करते हुए उनकी सोच में मूलभूत परिवर्तन लाने, आर्थिक गतिविधियों में उनकी अभिरूचि उत्पन्न कर उन्हें आर्थिक–सामाजिक दृष्टि से आत्मनिर्भर और स्वावलम्बन की ओर अग्रसारित करने जैसे अहम उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पिछले कुछ दशकों में विशेष प्रयास किये गए हैं।

उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से लेकर इक्कीसवीं सदी तक आते–जाते पुनः महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ और महिलाओं ने शैक्षिक, राजनीतिक,

सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, प्रशासनिक आदि विविध क्षेत्रों में उपलब्धियों के नए आयाम तय किये। आज महिलाएँ आत्मनिर्भर, स्वनिर्मित, आत्मविश्वासी हैं, जिसने पुरुष प्रधान चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों में भी अपनी योग्यता प्रदर्शित की है।

गाँधी ने महिलाओं को शिक्षा देने तथा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये जो सुधार आंदोलन प्रारम्भ किया उससे समाज में एक नयी जागरूकता उत्पन्न हुई है। बाल–विवाह, भ्रूण–हत्या पर सरकार द्वारा रोक लगाने का अथक प्रयास हुआ है। शैक्षणिक गतिशीलता से पारिवारिक जीवन में परिवर्तन हुआ है। गाँधीजी ने कहा था कि एक लड़की की शिक्षा एक लड़के की शिक्षा की उपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लड़के को शिक्षित करने पर वह अकेला शिक्षित होता है, किन्तु एक लड़की की शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। शिक्षा ही वह कुंजी है जो जीवन के वह सभी द्वार खोल देती है जो कि आवश्यक रूप से सामाजिक हैं। शिक्षित महिलाओं को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय होने में बहुत मदद मिली। महिलाएं अपनी स्थिति व अपने अधिकारों के विषय में सचेत होने लगी। शिक्षा ने उन्हें आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक न्याय तथा पुरुष के साथ समानता के अधिकारों की मांग करने को प्रेरित किया।

महिला शिक्षा समाज का आधार है। समाज द्वारा पुरुष को शिक्षित करने का लाभ केवल मात्र पुरुष को होता है जबकि महिला शिक्षा का स्पष्ट लाभ परिवार, समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र को होता है। चूंकि महिला ही माता के रूप में बच्चे की प्रथम अध्यापक बनती है। महिला शिक्षा एवं संस्कृति को सभी क्षेत्रों में पर्याप्त समर्थन मिला। यद्यपि कुछ समय तक महिला शिक्षा के समर्थक कम किन्तु आज समय एवं परिस्थितियों ने महिला शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है। अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिये संघर्ष करती हुई स्त्रियों ने लम्बा रास्ता तय कर लिया है, परन्तु आज भी एक बड़ा हिस्सा सदियों से सामाजिक अन्याय का शिकार है। ''जब–जब स्त्री अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहती है

तब–तब जाने कितने रीति–रिवाजों, परम्पराओं, पौराणिक आख्यानों की दुहाई देकर उसे गुमनाम जीवन जीने पर विवश कर दिया जाता है।''

आखिर क्यों हमेशा एक लड़की या एक औरत को ही अपना सब कुछ त्याग देना पड़ता है? फिर वे शिक्षित हों या अशिक्षित इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसे ही अपना सब कुछ छोड़ना पड़ता है। शादी के बाद अपना घर, माता–पिता, भाई–बहन यहाँ तक कि अपनी पढ़ाई, अपना भविष्य भी वह अपने ससुराल वालों के लिए छोड़ देती है। वह पूरा दिन घर में काम करती है, उसके लिए उसे कोई पैसे नहीं मिलते, पर वह उन पैसों की कोई कामना भी नहीं करती। यह हर सांचे में खुद को ढ़ाल लेती है। वह शादी के बाद अपने ससुराल वालों के रंग–ढंग में रच–बस जाती है और वह ये सब अपने परिवार की खुशी के लिए करती है। सोचिये अगर किसी पुरुष या लड़के को अपने परिवार के लिए सबकुछ छोड़ने को कहें तो क्या वो छोड़ देगा? यह कदाचित संभव नहीं है। वह ऐसा कभी भी नहीं करेगा, पर एक लड़की ऐसा करेगी क्योंकि उसके दिल में सबके लिए प्यार होता है, उसे सबकी चिंता होती है।

हम काफी शिक्षित हैं, अब भी हमारे समाज में लड़का और लड़की के बीच बहुत बड़ा भेदभाव किया जाता है और यह बात हम सबसे छिपी नहीं है। इस बात से हम अच्छी तरह वाकिफ हैं कि एक ही घर में अगर लड़का जन्म ले तो उसकी खुशी में मिठाईयाँ बांटी जाती हैं, उत्सव मनाया जाता है और वहीं दूसरी ओर अगर लड़की का जन्म हो तो उसे बोझ माना जाता है। उसकी तुलना एक बोझ के साथ की जाती है। यह माना जाता है कि वह अपने परिवार वालों का कल्याण नहीं करा सकती। वह उनका वंश आगे नहीं बढ़ा सकती और तो और उसे जन्म लेने का भी हक नहीं है। हमारे देश के कई हिस्सों में लड़की को उसके जन्म से पहले ही उसे उसकी माँ के पेट में बड़ी बेरहमी से मार दिया जाता है और इस पक्षपात का शिकार और कोई नहीं बल्कि हमारे समाज के वो नाजुक स्तम्भ हैं जिसे हम औरत के नाम से जानते हैं।

इस समाज में औरतों को हमेशा ही अपने हक के लिए तरसना पड़ा है। उसके जन्म से लेकर उसके बड़े होने तक, उसकी शादी होने तक या उसका जीवन समाप्त होने तक। जब वह छोटी होती है तो माता–पिता सोचते हैं इसे पढ़ाने–लिखाने में पैसा खर्च करने से क्या मतलब इसे तो शादी करके ससुराल ही जाना है। वहाँ अपना घर बसाना है। जब वह अपने माता–पिता के घर जाती है तो वो उनके लिए काम करती है। शादी के बाद भी उसे दहेज न लाने पर मारा–पीटा जाता है। उसके साथ जानवरों से भी बुरा बर्ताव किया जाता है। यहाँ तक कि उसे जान से भी मार दिया जाता है और अगर वह पढ़–लिख भी जाये तब भी इस समाज में उनके लिये कुछ सीमायें निर्धारित कर दी हैं। उन्हें उस सीमा में ही रहना पड़ता है। आखिर क्यों हमेशा एक लड़की या एक औरत को ही अपना सबकुछ त्याग देना पड़ता है? फिर वे शिक्षित हों या अशिक्षित इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे ही अपना सबकुछ छोड़ना पड़ता है। शादी के बाद अपना घर, माता–पिता, भाई–बहन यहाँ तक कि अपनी पढ़ाई, अपना भविष्य भी वह अपने ससुराल वालों के लिए छोड़ देती है। वह शादी के बाद अपने ससुराल वालों के रंग–ढंग में रच–बस जाती है और वह ये सब अपने परिवार की खुशी के लिए करती है। सोचिये अगर किसी पुरुष या लड़के को अपने परिवार के लिए सबकुछ छोड़ने को कहें तो क्या वो छोड़ देगा? यह कदाचित संभव नहीं है। वह ऐसा कभी भी नहीं करेगा, पर एक लड़की को ऐसा करना पड़ता है क्योंकि उसके दिल में सबे लिए प्यार होता है, उसे सबकी चिंता होती है। हम हमारे देश का भविष्य हैं यह हमें सोचना चाहिए कि हमारे देश में इन असामाजिक तत्वों को कैसे हटाया जाये, कैसे उद्धार हो? इन अत्याचारों से, पक्षपात से लड़कियों को कैसे दूर रखा जाये। हम यह कर सकते हैं, क्योंकि हम पर देश का भविष्य टिका है। हमें इन अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठानी होगी। उन्हें उनका हक दिलाना होगा, तभी हमारे देश का उद्धार संभव है।

राजस्थान में महिला शिक्षा एवं नवाचार

हमारे देश में आजादी से पूर्व राजस्थान मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र था। उसमें केन्द्रशासित प्रदेश अजमेर के अतिरिक्त 21 देशी रियासतें थी। इन रियासतों में उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, जोधपुर, किशनगढ़, बीकानेर, कोटा–बूंदी, सिरोही, जयपुर, अलवर, जैसलमेर, करौली, झालावाड़, टोंक, भरतपुर और धौलपुर थीं।

राजस्थान के शौर्य का बखान करते हुये सुप्रसिद्ध इतिहासकार **कर्नल टॉड** ने अपने ग्रन्थ ''अनलस एण्ड एक्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान'' में कहा है कि राजस्थान में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसकी अपनी थर्मोपली नहीं हो और ऐसा कोई गांव या नगर नहीं है जिसमें अपना ''लियोनिडास'' पैदा ना किया हो। टॉड का यह कथन व केवल प्राचीन और मध्ययुग में वरन् आधुनिक काल में भी इतिहास की कसौटी पर खरा उतरा है।

किसी भी समाज के लिए यह आवश्यक है कि उसमें स्त्रियों की स्थिति क्या है तथा समाज की विविध समस्याओं के प्रति उनमें किसी जागृति है साथ ही अपनी राजनीतिक जागृति एवं अधिकारों के प्रति वे किस सीमा तक संघर्ष कर सकती है। 19वीं शताब्दी में राजस्थान क्षेत्र में सामंतवादी शासन पद्धति प्रचलित थी। स्वभावतः ही सामंतवाद अलोकतान्त्रिक एवं एक व्यक्ति का शासन होता है जिसमें स्वतंत्रता, समानता, अधिकारों आदि का कोई सरोकार नहीं होता। उल्लेखनीय है कि सामन्तवादी विचारधारा मध्ययुगीन विचारों से प्रेरित एवं प्रभावित थी, जिसमें आधुनिक तत्वों के स्थान पर प्राचीनकालीन प्रथायें, मान्यतायें, परम्पराओं को व्यक्तिगत जीवन में अत्यधिक महत्व दिया जाता था एवं उन्हें लागू करने के लिए तत्कालीन समाज किसी भी सीमा तक जा सकता था। ऐसी विकट स्थिति में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त ही दयनीय थी, उन्हें राजनैतिक, सामाजिक एवं सम्पत्ति सम्बन्धी किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं थे। स्त्रियों को अनेक प्रकार की प्रथायें, परम्पराओं, मान्यताओं का आरोपित कर

रखा था। जैसेः— बाल—विवाह, पर्दा—प्रथा, दहेज—प्रथा, विधवा विवाह का नारकीय जीवन आदि।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी के समाज सुधार आंदोलन के समाज सुधार कार्यों से महिलाओं में स्फूर्ति का विकास हुआ। इसके अलावा 19वीं शताब्दी में देश में राष्ट्रीय आंदोलन के लिए गतिविधियाँ भी चल रही थी जिनसे महिलाओं को व्यापक प्रेरणा प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगी और वे अपने सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के साथ—साथ राष्ट्रीय विचारधारा से जुड़ने लगी, धीरे—धीरे महिलायें अपने अधिकारों के प्रति इतनी अधिक जागरूक होती चली गई कि वे राष्ट्रीय आंदोलन में सहयोग करने लगी।

राजस्थान की महिलायें अपने शौर्य, त्याग और बलिदान के लिए सदैव ही अग्रणी रही है। यहाँ कि महिलाओं ने पुरुषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर खेत—खलिहान और कारखानों में काम किया है। वहीं इन्होंने आंदोलन में अत्याचारों के विरूद्ध पुरुषों के साथ संघर्ष किया। राजस्थान की आम महिलाओं में जाग्रति का अंकुर 1925 में प्रस्फुटित हुआ। समाज सुधार आंदोलन में घूंघट हटाना, नव जाग्रति के लोक गीत गाना, रूढ़िवादिता का त्याग और अंधविश्वासों के त्याग आदि अधिकांश कार्यक्रम महिलाओं के लिए आयोजित किए गए। जिस द्रुत गति से महिलाओं ने इन कार्यों को अपनाया आज उसी का परिणाम है कि आज इस राज्य की महिलाओं की शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक गतिविधियाँ अत्यधिक अच्छी एवं उच्च प्राथमिकता वाली रही। राजस्थान में महिलाओं में प्राचीनकाल से ही त्याग एवं बलिदान के संस्कार रहे हैं, चाहे वे किसी भी जाति या धर्म से संबंधित हो। ये महिलायें विपत्तिकाल में भी पुरुषों के साथ भागीदार रही हैं और आज भी हैं।

महिलाओं के उत्थान को तीव्र गति प्रदान करने के लिये **विद्यार्थी भवन, झुन्झुनू** में एक वृहत् महिला सम्मेलन 11 मार्च 1938 को आयोजित किया गया। जिसमें वर्तमान राजस्थान के दूर दराज के इलाकों से हजारों महिलाओं ने भाग

लिया। इस सम्मेलन कि एक विशेषता यह थी कि माँ, बेटी और पुत्रवधु तीनों ने भाग लिया। इन किसान महिलाओं में जाग्रति का संदेश देकर शिक्षा की ओर प्रेरित करना तथा अपने आपको पुरुषों से हीन न समझने की प्रेरणा देने के उद्देश्य से ही यह सम्मेलन आयोजित किया गया था। अपने स्वागत भाषण में कुमारी शीतल बाई ने निम्न बातें कहीं–

पहला कर्त्तव्य यही है कि हम शिक्षित बने और अपनी बालिकाओं को शिक्षित बनावें। बिना शिक्षा प्राप्त किये हमारी हालत नहीं सुधर सकती। आज हमारी जो पशुओं में गणना हो रही है और जो बात–बात पर अपमानित की जा रही है वह स्थिति एक असहनीय है। अगर यही हालत कुछ दिन और चले तो संसार में हमारी अच्छाईयों का नामोनिशान मिट जायेगा और मनुष्य समाज में भी हमारी पशुओं के समान गणना होने लगेगी अथवा उसमें भी बदत्तर गणना होने लगेगी। ऐसी स्थिति में हमारे समाज की तो दुर्दशा होगी वह तो होगी लेकिन साथ ही हमारे राष्ट्र को बड़ा धक्का लेगा। यह बलपूर्वक कहा जा सकता है कि जब किसी देश या जाति की महिला समाज में शिक्षित नहीं होगी जब तक कोई देश या जाति उन्नति नहीं कर सकता। जिस देश की मातृशक्ति कमजोर हो जाती है उस देश का पुरुष समाज भी कमजोर ही रहता है। ध्यान रहे कि हमारी उन्नति में ही पुरुष समाज की उन्नति है, क्योंकि पुरुषों को विद्वान व बलवान बनाना माता का ही काम है। जब राष्ट्र की उन्नति, अवनति स्त्री समाज पर ही निर्भर है।

इस प्रकार हमारी शिक्षा वही हो जो प्राचीनकाल से आर्य–महिलाओं की होती थी। हम अपनी जिन्दगी घूंघट, परदे और जेवर की सजावट में बिता देते हैं जिसके सिवा नुकसान के कोई लाभ नहीं है। अब इस रूढ़ी का समूल नष्ट करके सुप्रथायें ग्रहण करो। अगर हम अपने समाज को इस संसार में जीवित रखना चाहती है और राष्ट्र की उन्नति चाहती है तो अपना परम धर्म समझकर अपने पुत्र और पुत्रियों को शिक्षित और शुद्ध आचार–विचार वाले बनाने की प्रतिज्ञा करें।

इस सम्मेलन से महिलाओं में बड़ी जाग्रति आई और बहुत सी महिलाओं ने सभास्थल पर ही परदा प्रथा का त्याग कर दिया। इस प्रकार महिलाओं में जाग्रति, शिक्षा के साथ–साथ अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करने का निर्णय लिया तथा उनमें से अनेक महिलाएँ नेतृत्व भी करने लगी थी। 1938 के सम्मेलन की जाग्रति के कारण ही इस क्षेत्र से 11 छात्राओं को अध्ययन करने के लिए 1938 में वनस्थली विद्यापीठ में भेजा गया। जिन्होंने शिक्षा के उपरान्त समाज को एक नई दिशा ही नहीं दी अपितु स्वच्छ, सुदृढ़, नेतृत्व भी प्रदान किया और आज भी कर रही हैं। उन प्रतिभाशाली छात्राओं में सुमित्रा कुमारी, मनोरमा कुमारी, कमला कुमारी, देवी, सुविश कुमारी, सरस्वती कुमारी और पार्वती सम्मिलित थीं।

इस प्रकार राजस्थान में महिलाओं में शिक्षा का प्रसार व जाग्रति के प्रयास निरन्तर होते रहे जिसके फलस्वरूप महिलाओं में आत्मविश्वास ने जन्म लिया और वे इस कार्य को स्वयं करने लगी। धीरे–धीरे महिला सम्मेलनों, संगोष्ठी, सभा, आयोजनों की गतिविधियाँ बढ़ती गई एवं यह महिलायें अन्य प्रदेशों की अन्य महिलाओं से भी मिलकर जन जागरण करने लगी।

गाँधीजी शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की मुक्ति में विश्वास रखते थे और उन्होंने भारतीय समाज के कायाकल्प की दिशा में चलायी गयी राजनीतिक, सामाजिक अथवा विकास सम्बन्धी गतिविधियों में महिलाओं के प्रति कोई भेदभाव नहीं रखा। सामाजिक निरंकुशता और पुरुष प्रधानता की वजह से महिला की जो दुर्दशा हुई, उसका गाँधीजी को भलीभांति ज्ञान था। गांधीजी ने महिलाओं की शिक्षा को पर्याप्त महत्त्व दिया, किन्तु वे जानते थे कि अकेले शिक्षा से ही राष्ट्र निर्धारित लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सकते। वे सिर्फ महिलाओं की ही नहीं पुरुषों की भी मुक्ति के लिए समुचित कार्यवाही के पक्षधर थे। शिक्षा के बारे में उनके विचार अनेक समकालीनों से भिन्न थे और शिक्षा उनके अथवा पुनर्निर्माण तथा उसके माध्यम से राष्ट्र पुनर्निर्माण का मात्र एक हिस्सा, एक प्रमुख घटना थी। गाँधी के एक लेख से पता चलता है कि

महिलाओं को निरक्षरता, स्कूल–सुविधाओं का अभाव था, भू–स्वामियों के शोषण का शिकार होने और आर्थिक असमताओं का सामना ग्रामीण महिलाओं को करना पड़ता है। उनके अनुसार शिक्षा प्रणाली को दुरुस्त किया जाये और उस व्यापक जनसमुदाय को ध्यान में रखकर तय किया जाये। उनके अनुसार शिक्षा प्रणाली में बच्चों के साथ प्रौढ़ शिक्षा पर ही बल नहीं दिया जा सके। महिलाओं की उपेक्षा के लिए निश्चित रूप से ही पुरुष जिम्मेदार है, उन्होंने महिलाओं का अनुचित इस्तेमाल किया है। किन्तु जो महिलाएँ अन्धविश्वासों से ऊपर उठ चुकी हैं, उन्हें सुधार के लिए रचनात्मक कार्य करने होंगे।

गाँधीजी के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो लड़के–लड़कियों को स्वयं के प्रति अधिक उत्तरदायी बना सके और एक–दूसरे के प्रति अधिक सम्मान की भावना पैदा कर सके। महिलाओं के लिए ऐसा कोई कारण नहीं है कि वे अपने को पुरुषों के गुलाम अथवा पुरुषों से घटिया समझें, उनकी अलग पहचान नहीं है बल्कि एक ही सत्ता है। अतः महिलाओं को सलाह है कि वे सभी अवांछित और अनुचित दबावों के खिलाफ विद्रोह करें। इस तरह के विद्रोह से कोई क्षति होने की आशा नहीं है इससे तर्कसंगत प्रतिरोध होगा और पवित्रता आयेगी। हालांकि भारतीय परम्परा में आमतौर पर महिला को सम्मान मिला है और शायद भारत एकमात्र ऐसा देश है जहाँ करोड़ों लोग अर्धनारीश्वर की पूजा करते हैं और जहाँ मनु ने यह घोषणा की कि **जहाँ नारी का सम्मान होता है वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं**। यह सत्य है कि आज भी राजस्थानी महिलायें कुल मिलाकर निरक्षर और अशिक्षित हैं तथा वांछित रूप में अपनी आवाज संसद या विधानमण्डलों में उठाने में असमर्थ हैं। हमारी शिक्षा–प्रणाली अत्यन्त विशाल है जहाँ लाखों शिक्षक हैं तथा करोड़ों विद्यार्थी हैं। फिर भी शिक्षा–प्रणाली में लड़कों का पक्ष लिया जाता है।

गाँधीजी के विचारों को ध्यान में रखते हुये पहला उपाय यह करना होगा कि निचले स्तर पर शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जाये। स्कूल स्तर पर महिलाओं को विशेष कौशल का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। किसी लड़के या

लड़की के हॉयर सैकेण्डरी परीक्षा पास करने तक उन्हें रोजगार के लिए दक्ष बना दिया जाना चाहिए। नारी की क्षमता और किसी भी उन्नतीशील देश की नारी की क्षमता में कोई अन्तर नहीं होती है। संविधान में यद्यपि सिद्धान्त रूप में और स्त्री और पुरुष को समान अधिकार दिये गये हैं, पर व्यवहार में यह बात नहीं है और अनेक सामाजिक बाधाएँ उनके विकास में बाधक हैं। अतः नारियों को व्यावहारिक रूप में समान अधिकार मिलना चाहिए। महिलाओं की शिक्षा में भी हमें उनकी उन व्यावहारिक कठिनाइयों पर ध्यान देना होगा जो शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर आती है। इनकी शिक्षा, पाठ्यक्रम आदि के निर्धारण में नारी जाति की स्वाभाविक आवश्यकताओं का ध्यान रखना होगा। पुरुष और स्त्री के लिए एक ही प्रकार के पाठ्यक्रम के निर्धारण से उनका उचित विकास नहीं होगा। शिक्षा के क्षेत्र में यदि प्राथमिक शिक्षा स्तर तक सह–शिक्षा भी दी जा सकती है। परन्तु अधिक उत्तम हो कि सभी जगह अधिक से अधिक बालिका विद्यालय खोले जायें। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यह परिवर्तन और भी तीव्र गति से हो रहे हैं तथा नारियाँ अपना परम्पराबद्ध स्वाभाविक विशेषता से मुक्त होने लगी। स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान में महिलाएँ आज अधिकाधिक संख्या में वैतनिक एवं लाभपूर्ण व्यवसायों और काम–धन्धों में आने लगी हैं। इस राज्य में समाज के निम्नवर्ग की औरतें तो हमेशा से ही मजदूरी करती रही हैं, किन्तु उच्च वर्ग की महिलाएँ अधिकतर अपने घरों तक ही सीमित रही हैं। इससे स्पष्ट होता है कि समाज के इतने विकास के बाद भी आज महिलाएँ कार्यो–जन के क्षेत्र में प्रगति बहुत कम कर पायी हैं। क्योंकि अभी भी उच्च शिक्षण–प्रशिक्षण प्राप्त युवतियों की तीन–चौथाई संख्या रोजगार क्षेत्र में नहीं उतर पायी क्योंकि कुछ रूढ़ियाँ उनमें बाधक हैं।

भारत में महिलाओं की शिक्षा चूंकि ज्यादा नहीं हो पाती है इसलिए महिलाओं की ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए कि बालिकाओं को हाईस्कूल और इन्टरमीडिएट करने के साथ–साथ कोई ऐसी शिक्षा हो जो उनकी सभ्यता और संस्कृति से जुड़ी हुई हो और उस शिक्षा के द्वारा वह

अपनी जीविका चला सके। जिससे उन्हें अपनी जरूरत की सभी चीज़ों के लिए किसी और के ऊपर निर्भर न होना पड़े। इसलिए प्रत्येक बालिका को शिक्षा के साथ ऐसी कला सिखायी जाए जो उसको अपने घर में रहकर ही स्वरोजगार करके अपनी तथा अपने परिवार की जीविका चला सके।

भारतीय नारी परिवार, समुदाय और समाज में तभी उत्साहपूर्वक अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकती है जबकि सामाजिक जीवन में उसके काम और जीवन की दशाओं में सुधार होगा और वह स्वयं को सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक रूप से बन्धनमुक्त कर पायेगी। स्त्रियों को ऊँचा उठाने का दायित्व सम्पूर्ण व्यवस्था का है। इसके लिए सम्पूर्ण समाज को जागृत करने की आवश्यकता है, क्योंकि उनकी समस्याएँ एकांगी न होकर समस्त समाज से जुड़ी हुई हैं। तभी हमारा तत्कालीन राजस्थान आगे बढ़ सकेगा।

''हर कदम पर मुझे दबाने का प्रयास हुआ है
फिर भी मुझे स्त्री होने का गर्व है।
सुरक्षित महसूस नहीं करती हूँ इस समाज में
फिर भी मुझे स्त्री होने का गर्व है।
मुझे पुरुष समाज में उपभोग वस्तु समझा जा रहा है।
फिर भी मुझे स्त्री होने का गर्व है।
असमानता बढ़ती जा रही है मेरे लिए
फिर भी मुझे स्त्री होने का गर्व है।
पुरातन काल से भेदभाव की शिकार हूँ मैं
फिर भी मुझे स्त्री होने का गर्व है।
हर एक गंदी नजर से हर कदम पर बचना पड़ता है
फिर भी मुझे स्त्री होने का गर्व है।
ताने, घृणा, कुंठा सहकर मैं परेशान हूँ
फिर भी मुझे स्त्री होने का गर्व है।
मुझे बेशक कोख में ही मार दिया जाता है

फिर भी मुझे स्त्री होने का गर्व है।
आज चाहे जो भी हूँ मैं पर मुझे गर्व है अपने आप पर
मुझे गर्व है एक माँ होने पर।
मुझे गर्व है भेदभाव करने वाले समाज का निर्माण करने पर
मुझे गर्व है एक नारी होने पर
चाहे कुछ भी हो जाये ये गर्व बना रहेगा ऐसे ही
समाज चाहे जो भी सोचे जो भी कहे
मेरा मान मेरी नज़रों से गिरेगा नहीं
मेरा स्वाभिमान कभी डिगेगा नहीं
मेरा गर्व कभी कम नहीं होगा
चाहे कुछ भी है, फिर भी मुझे स्त्री होने का गर्व है।''

राजस्थान में महिलाओं की राजनीतिक चेतना

19वी–20वीं शताब्दी की बदलती राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित और प्रेरित होकर राजस्थान में राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधियाँ प्रारम्भ हुई। उल्लेखनीय है कि राजस्थान में केन्द्रशासित प्रदेश अजमेर के अलावा 19 देशी रियासतें थी। इन रियासतों में उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, शाहपुरा में गुहिल, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ में राठौड़, कोटा–बूंदी में हाड़ा–चौहान, सिरोही में देवड़ा चौहान, जयपुर और अलवर में कछवाह, जैसलमेर और करौली में यदुवंशी, झालावाड़ में झाला राजपूत, टोंक में मुसलमान, भरतपुर और धौलपुर राज्य में जाट राज्य विद्यमान थे। राष्ट्रीय आंदोलन में नारी को सक्रिय करने में गाँधीजी को भी महत्ती सफलता प्राप्त हुई। सविनय अवज्ञा आंदोलन में जितनी बड़ी संख्या में समाज के विविध वर्गों की स्त्रियों ने भाग लिया। इससे राजनीतिक संघर्ष का अनुमान लगाया जा सकता है। इस संबंध में गाँधीजी ने कहा कि जेल में स्त्रियों की सक्रियता की खबर सुनकर सभी सत्याग्रही रोमांचित हो उठे। राजस्थान में इस क्षेत्र में गतिविधियाँ और सक्रियता निरन्तर चली रही।

राजस्थान में राजनीतिक चेतना एवं महिलाओं की इसमें सक्रियता को प्रजामण्डलों एवं अन्य राजनीतिक संस्थाओं ने अत्यधिक प्रभावी बनाया। इस क्षेत्र में बने संगठन मारवाड़ लोक परिषद् 1928, 24 अप्रैल, 1938 को मेवाड़ प्रजामण्डल, 1931 में जयपुर प्रजामण्डल की स्थापना, 1931 में कोटा प्रजामण्डल, 1938 में अलवर प्रजामण्डल, 1938 में शाहपुरा प्रजामण्डल एवं भरतपुर प्रजामण्डल की स्थापना भरतपुर के बाहर रेवाड़ी में की गई। उल्लेखनीय है कि प्रजामण्डल आंदोलन रियासतों में अखिल भारतीय कांग्रेस के पूरक आंदोलन के रूप में चलाया गया था। इसमें स्त्रियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया, भाग लेने वाली स्त्रियों में श्रीमती विमला देवी चौधरी, भगवती देवी, रतन शास्त्री, जानकी देवी, गीता बजाज, महिमा देवी किंकर, नारायणी देवी वर्मा, रानी देवी, रजिया तहसीन, सुशीला देवी, कमला जैन, तारा बहन, सुकीर्ति देवी, दुर्गा देवी, रामप्यारी देवी, नगेन्द्र बाला, गंगा बाई, कमला स्वाधीन, किशोरी देवी, बीर वाला भावसार, नारायणी देवी, अंजना देवी आदि प्रमुख रहीं।

राजस्थान में महिलाओं की सक्रियता अत्यधिक रही। इन महिलाओं ने अनेक अवसरों पर जेल गई एवं अपनी राजनीतिक सक्रियता का परिचया दिया। श्रीमती विमला चौधरी पर जलियाँ वाला काण्ड का गहरा प्रभाव था। इस कारण 1921 से वे आंदोलन में सक्रिय हो गई और 1922 में उन्हें जेल भी जाना पड़ा। 1936 से 1945 तक वे अजमेर में कांग्रेस सेवादल की ''कप्तान'' के रूप में महिलाओं का नेतृत्व किया। 1936 में श्रीमती चौधरी डूंगरपुर में माणिक्यलाल वर्मा से मिलकर आंदोलन में सक्रिय रही। श्रीमती भगवती देवी विश्नोई को 1938 में भीलवाड़ा में प्रजामण्डल आंदोलन में सक्रियता के कारण गिरफ्तार कर ली गई और 10 दिवस का कठोर कारावास दिया गया। श्रीमती विश्नोई 1942 के भारत छोड़ो का सारे देश में जन आन्दोलन चला तब श्रीमती गुप्ता भी सक्रिय हो गई। इन्होंने सीमलवाड़ा तहसील पर सर्वप्रथम तिरंगा झंडा फहराया। इसलिये उन्हें बन्दी बनाकर डूंगरपुर जेल में रखा गया। जेल में इन्हें पाश्विक अत्याचार सहने पड़े। थोड़े दिन बाद इन पर मुकदमा चलाकर डूंगरपुर

रियासत से निष्कासित कर दिया गया। तभी वे अपने पति के साथ श्री जयनारायण व्यास के सम्पर्क में आई और जोधपुर में रचनात्मक कार्य में संलग्न हो गई। श्रीमती रतन शास्त्री अपने पति के साथ जयपुर प्रजामण्डल की सामान्य कार्यकर्त्ता बनी और जब जयपुर सत्याग्रह में प्रजामण्डल के प्रथम नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया तो श्रीमती शास्त्री जयपुर के बाहर रहकर अन्य सदस्यों के साथ सत्याग्रह का संचालन करती रही। लेकिन जब गाँधीजी ने सत्याग्रह को पीछे लेने का आदेश दिया तो श्रीमती शास्त्री बहुत दुःखी हुई। तब श्रीमती शास्त्री राधाकृष्ण बजाज के साथ दिल्ली गई और गाँधीजी से पूछ बैठी की आपने सत्याग्रह स्थगित करने का आदेश क्यों दिया। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के समय श्रीमती शास्त्री ने वनस्थली विद्यापीठ से अनेक कार्यकर्त्ताओं और महिलाओं को दिल्ली, उत्तरप्रदेश और अन्य प्रदेशों में जाकर आंदोलन में सम्मिलित होने के लिए भेजा। वनस्थली विद्यापीठ श्रीमती शास्त्री के कारण आंदोलनकारियों का आश्रय स्थल बन गया।

श्रीमती श्यामलता व्यास व्यवसाय से वकील होते हुए भी 1937 में प्रजामण्डल की सदस्यता ग्रहण कर 1947 तक जिला प्रजामण्डल की अध्यक्ष रहीं। इनके नेतृत्व में अनेक स्त्रियों ने राजनीतिक गतिविधियों में पदार्पण किया। श्रीमती सावित्री देवी भाटी ने 1940 में मारवाड़ लोक परिषद् द्वारा प्रारम्भ किये गये सामन्तशाही के विरुद्ध आंदोलन में पहली बार भाग लिया। इसी कारण इनको 18 अगस्त 1942 को गिरफ्तार कर लिया गया। इन पर तीन मुकदमे चलाए गये। 16 महीनों बाद इनको जेल से रिहा किया गया। उसके उपरान्त श्रीमती भाटी और भी अधिक सक्रिय हो गई। गीता बजाज ने 1942 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बी.ए. में प्रवेश लिया। उसी समय देश में भारत छोड़ो आंदोलन प्रारम्भ हो गया। उनके शिक्षक डॉ. गोरेला ने विद्यार्थियों को आह्वान किया कि वे भी आंदोलन में सक्रिय हो जायें। इस पर गीता देवी बजाज भी आंदोलन में कूद पड़ी, इसके कारण उन्हें विश्वविद्यालय से निष्कासित होना पड़ा। किन्तु श्रीमती गीता देवी बजाज परिणाम की चिन्ता

किये बिना ही 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय हो गई। बाद में वे पकड़ी गई, सजा मिली और लाहौर जेल में अनेक कष्ट सहने पड़े। 16 महीने की सजा के उपरान्त उनकी जेल से रिहाई हुई।

21 जून, 1938 को भरतपुर की स्थानीय पुलिस ने राज्य प्रजामण्डल के आह्वान पर आंदोलन कर रही महिला सत्याग्रहियों को जेल में भरना प्रारम्भ कर दिया। जेल में बन्द ये महिलाएँ थी खिवेणी देवी, कृष्णा देवी, कृष्णा प्यारी, शीला देवी, श्रीमती भगवती देवी आदि। उनके साथ अनेक महिलाएँ रहीं। भरतपुर में 1921, 1930 और 1931 के स्वतन्त्रता आंदोलन उल्लेखनीय रहे। जब जनता ने राजाशाही और ब्रिटिश साम्राज्य दोनों से लोहा लिया। श्रीमती त्रिवेणी देवी 11 अप्रैल 1939 को प्रजामण्डल के नेतृत्व में झण्डा फहराया एवं प्रेसीडेन्ट स्टेट कौन्सिल को प्रजामण्डल का मांग–पत्र दिया।

जयपुर में सत्याग्रह का आयोजन 1939 में हुआ था। इसमें महिलाओं का योगदान महत्वपूर्ण रहा। इन महिलाओं में रामप्यारी देवी, सुशीला देवी, श्रीमती महिमा देवी, राजेश्वरी देवी, रानी देवी, सुमित्रा सिंह, अन्जना देवी मोदी आदि महत्वपूर्ण रही। 15 मार्च 1939 को जयपुर राज्य की पुलिस ने सत्याग्रही महिलाओं पर लाठियाँ बरसाई एवं घोड़े दौड़ाये, यह अत्याचार की क्रूर कहानी है। इसके विरोध में महिलाओं ने पुलिस के अत्याचारों को मर्दों की भांति सहन किया, लाठियों के असहाय प्रहार के कारण अनेक महिलाएँ घायल भी हुई परन्तु तिरंगे झण्डे को नहीं झुकने दिया। आखिर पुलिस को हताश होना पड़ा। खूनी अत्याचार अहिंसा के आगे झुक गया। जयपुर सत्याग्रह में शेखावाटी की महिलाओं की अहम भूमिका रही। इन्होंने जयपुर के जौहरी बाजार क्षेत्र में व्यापक जुलूस निकाले। गिरफ्तारियाँ भी दी गईं, इन महिलाओं में श्रीमती दुर्गा देवी, वीरबाला भावसार, फूला देवी एवं श्रीमती देवी शर्मा सम्मिलित थी। इनका प्रथम जुलूस 18 मार्च 1939 को निकाला गया।

यद्यपि श्रीमती फूलादेवी, श्रीमती दुर्गा देवी और उनकी पुत्रवधू श्रीमती शमाकोरी देवी जिसकी गोद में 6 माह का बालक था। श्रीमती गौरी देवी,

श्रीमती सिणगारी देवी, प्रतापपुरा, श्रीमती मोहरी देवी पातुसरी, ने भी आगे बढ़कर गिरफ्तारियाँ दीं और 4 महीने तक केन्द्रीय कारागार–जयपुर में रही थीं। इसके अलावा गोविन्दगढ़ चरखा संघ के तत्वावधान में श्रीमती रमा देवी, श्रीमती शारदा देवी, श्रीमती सुमित्रा सिंह, श्रीमती विद्यादेवी, श्रीमती भारती देवी, श्रीमती केसर देवी, श्रीमती शिव देवी आदि ने गिरफ्तारियाँ दी। इस प्रकार सामंती शासन पद्धति एवं शोषणात्मक अत्याचार पूर्ण परिस्थितियों से मुक्ति लेने के लिये पुरुषों के साथ हजारों स्त्रियों ने संघर्ष में भागीदारी निभाई। इसी क्रम में 4 जून, 1941 को झुन्झुनू क्षेत्र में प्रजामण्डल का वार्षिक सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें वनस्थली विद्यापीठ की छात्राओं ने जुलूस निकाला। इसी समय श्रीमती सुभद्रा जोशीजी की अध्यक्षता में झुन्झुनू में एक महिला सम्मेलन हुआ। जिसमें हजारों महिलाओं ने भाग लिया। इससे महिलाएँ राजनीतिक रूप से मोर्चा बन्दी करने लगी थी। इससे राजस्थान में व्यापक राजनीतिक चेतना का विकास हुआ।

1942 के बम्बई अधिवेशन में अखिल भारतीय कांग्रेस ने निर्णय किया कि देश की स्वतंत्रता के लिए गांधीजी के नेतृत्व में जन संघर्ष शुरु किया जाये। कांग्रेस महासमिति ने गांधीजी को इस नाजुक घड़ी में आंदोलन का नेतृत्व करने की प्रार्थना की और दूसरी तरफ देश की जनता के नाम एक अपील जारी की जिसमें लिखा था कि जन आंदोलन के दौरान प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह एक अनुशासित सिपाही की तरह गांधीजी के आदेशों का पालन करे। इसी अवसर पर रियासतों के प्रजामण्डल के नेताओं के सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए, गांधीजी ने कहा कि ब्रिटिश भारत के भावी संघर्ष का नारा होगा ''अंग्रेजों भारत छोड़ो'' और रियासतों में नारा होगा कि ''राजाओं अंग्रेजों का साथ छोड़ो'' उन्होंने कहा कि प्रत्येक क्षेत्र में प्रजामण्डलों को राजाओं को चुनौती देनी होगी कि ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध विच्छेद करें एवं अत्याचार तुरन्त बंद करे। यदि वे इस मांग को नहीं मानते हैं तो प्रजामण्डलों को चाहिये कि वे तुरन्त संघर्ष शुरू कर दें। इस प्रकार यह पहला

अवसर था कि जब ब्रिटिश भारत के साथ रियासतों को भी जनसंघर्ष शुरू करने का आह्वान किया गया था।

आंदोलन की प्रगति के दूसरे दिन ही प्रातः 5 बजे से पूर्व ही गांधीजी एवं चोटी के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। गांधीजी ने गिरफ्तारी से पूर्व स्वतन्त्रता संग्राम में ''करो या मरो'' का आह्वान किया। राजस्थान में महिलाओं ने बड़े नेताओं की गिरफ्तारी के बाद पूरक आंदोलन के रूप में जन संघर्ष को आरम्भ रखा। इसमें भाग लेने वाली महिलाएँ गीता बजाज, कमला बेनीवाल, रतन शास्त्री, कोकिला देवी, विमला देवी चौधरी, नारायणी देवी वर्मा, कमला स्वाधीन, अंजना देवी, भागीरथी देवी आदि प्रमुख रहीं। आंदोलन सभी देशी रियासतों में महिलाओं के नेतृत्व में स्थानीय स्तर पर प्रारम्भ किया गया। जैसलमेर, जयपुर, बीकानेर, सीकर, धौलपुर, करौली, अलवर, झुन्झुनू में महिलाओं ने बड़े पैमानों पर जुलूस, धरना एवं हड़ताल के कार्यक्रम आयोजित किये गये। आंदोलन की प्रगति के कारण जगह–जगह जुलूस, सभाओं एवं हड़तालों का आयोजन हुआ। विद्यार्थी विश्वविद्यालय छोड़कर आंदोलन में आ गये। सरकार ने दमन चक्र के द्वारा इसे दबाने का प्रयास किया। आजादी के इस अंतिम लड़ाई में राजस्थान में महिलायें अग्रणी रहीं।

भारत छोड़ो आंदोलन शुरू होने के साथ ही शाहपुरा प्रजामण्डल ने राजाधिराज को अल्टीमेट दे दिया कि वे अंग्रेजों से संबंध विच्छेद कर दे। इसके बदले प्रजामण्डल कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें शाहपुरा से दूर ढिकोला के किले में बंद कर दिया गया। बाद में इन्हें अजमेर जेल भेज दिया गया। इसी प्रकार राज्य में सभी बड़ी रियासतों जयपुर, कोटा, अजमेर, बीकानेर, जैसलमेर में भी इस आंदोलन का क्रूरतम रूप सामने आया। महिलाएँ इन गतिविधियों में आगे रही वे न केवल आंदोलन का संचालन करती थी, अपितु एक गुप्तचर की भांति सूचना प्रेषित की भूमिका भी निभा रही थी। महिलाएँ आंदोलन काल में आंदोलन एवं देश–भक्ति से प्रेरित गीत गाकर भी आंदोलनकारियों को जागृत करती रहती थीं। जैसेः–

''यदि दुःख पड़ने पर हृदय का भेद जाहिर कर दिया
डरपोक बनकर शत्रु पग पर, शीश अपना धर दिया।
दो रोज के उपवास में ही, धीरता जाती रही
रोने लगे टुक दण्ड से, गम्भीरता जारी रही।
यदि कष्ट सहने के लिए, तन मन सभी असमर्थ हैं
तो देशभक्तों छोड़ दो, आशा तुम्हारी व्यर्थ है।''

इस प्रकार महिलाएँ आंदोलन काल में सभी स्तरों पर कार्य कर रही थी। श्रीमती रतन शास्त्री भी अपने वनस्थली विद्यापीठ में छात्राओं को देशभक्ती गीत, भजन, देशभक्तों की कहानियाँ सुनाया करती थी। उदाहरणः–

''जगें आजादी में एक साधारण नारी
कैसे शरीक हुई कोई नन्हीं सी बच्ची।
कब देशभक्त के गीत गुनगुनानें लगी।
कोई स्कूल छात्रा भगतसिंह की शहादत पर
कैसे लिखने लगी खून की होली।
देश के लिए जिऐंगे और मरेंगे।।
यह वो जज्बा था जो गोरी चमड़ी के
अन्याय को देखते अंदर ही अंदर उबलता था।
और आक्रोश के कोलाहल में उमड़ पड़ता था
यह है कुछ नारियों की जुबानी।।''

इस प्रकार स्त्रियों ने न केवल रचनात्मक कार्यक्रमों में अपितु सक्रिय राजनीति में भी भाग लिया। स्त्रियाँ कठोर सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण घर के चारदीवारी से बाहर नहीं आई। वे अब धीरे–धीरे से राजनीति में सक्रिय होने लगी थी। गाँधीवादी आंदोलनों के विभिन्न प्रक्रियाओं में भाग लिया। जैसे– जुलूस निकालना, सरकारी कार्यों की अवज्ञा करना, हड़ताल करना, छोटे बच्चों को लेकर जेल जाना आदि। उस समय की रूढ़िवादी वातावरण में

महिलाओं की ऐसी भूमिका उनके त्याग, साहस एवं बलिदान के परिचायक हैं। इस प्रकार की गतिविधियों में भाग लेना इन महिलाओं के लिये सहज एवं सरल नहीं था। महिलाओं ने विभिन्न स्तरों पर आंदोलनों में योगदान दिया व न केवल इनमें भागीदार बनी रही, अपितु वे इसमें नेतृत्व भी करती थीं। विद्यालयों में पढ़ने वाली छात्राओं ने भी इसमें योगदान दिया। यद्यपि इन स्त्रियों की संख्या कम थी, किन्तु इनका प्रभाव व्यापक एवं दूरगामी था। इन स्त्रियों की इस पहल ने स्त्रियों के लिए विकास एवं प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया।

निष्कर्ष

20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में भारतीय परिवेश में गांधीजी का पदार्पण हुआ। इससे पूर्व गांधीजी दक्षिण अफ्रिका में सफल सत्याग्रह कर चुके थे। गांधीजी एवं अखिल भारतीय कांग्रेस ने महिला अधिकारों का समर्थन किया एवं उनमें शिक्षा, समानता और सामाजिक बुराईयों को त्यागकर राष्ट्रीय धारा में जोड़ने का प्रयास अथवा आह्वान किया। इन सभी निरन्तर प्रयासों के कारण महिलाओं में जाग्रति अंकुरित होने लगी। यद्यपि 19वीं शताब्दी के समाज सुधार आंदोलन से राजस्थान अप्रभावित रहा। उल्लेखनीय है कि 19वीं शताब्दी में शासन की सामन्तवादी व्यवस्था प्रचलित थी। यह एक ऐसी व्यवस्था थी जिसमें एक वर्ग विशेष के पास राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अधिकार केन्द्रित रहते हैं। इसमें स्वतन्त्रता, समानता, शिक्षा, मानवादी मूल्य आदि आधुनिक अवधारणा से कोई सरोकार नहीं होता। ऐसी विकट परिस्थितियों में चारदिवारों से झाँकना भी अपराध समझा जाता था। किन्तु महिलाओं में भी जागृति का अंकुरण एवं उन पर अत्याचारों की बढ़ी घटनाओं के कारण महिलाओं ने आवाज उठाना आरम्भ कर दिया और विरोध करने के लिये महिला संगठनों की स्थापना की जाने लगी।

यद्यपि राजस्थान में गांधीवादी आंदोलनों से पूर्व भी इन महिलाओं ने किसान आंदोलन (बेगू, बिजौलिया, नीमूचाणा) आदि में भी महत्वपूर्ण भूमिका

निभाई। यह उल्लेखनीय है कि ये महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्र से थीं। गांधीजी के प्रादुर्भाव से महिलाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। यद्यपि राजस्थानी महिलाओं का इस प्रकार की गतिविधियों में भाग लेना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। इन महिलाओं की इन सभी गतिविधियों की सराहना की जानी चाहिये। वस्तुतः इन विवेचनों से स्पष्ट होता है कि इन स्त्रियों के सहयोग के बिना रचनात्मक व राजनीतिक कार्यक्रम सफलतापूर्वक नहीं चल सकते थे। श्रीमती रतन शास्त्री पत्नी श्री हीरालाल शास्त्री, श्रीमती जानकी देवी बजाज, नारायणी देवी वर्मा, महिमा देवी किंकर, श्रीमती मणिबैन आदि महिलाओं ने पूरा सहयोग दिया अपितु राजनैतिक कार्यक्रमों का नेतृत्व किया।

इस प्रकार स्त्रियों ने न केवल रचनात्मक कार्यक्रमों में अपितु सक्रिय राजनीति में भी भाग लिया। तथा ये सभी स्त्रियाँ अपने नेतृत्व में सफल भी रहीं। इन राजस्थानी नारियों ने ऐसी पहल कर सभी स्त्रियों के लिए विकास एवं प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया।

शोध के उद्देश्य

किसी भी देश, समाज के कार्यों को समझने के लिये उस काल विशेष के वातावरण में पनपे विचारों का राजनीतिक एवं रचनात्मक अध्ययन अति आवश्यक है। प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत राजस्थान में गाँधीजी के रचनात्मक एवं राजनीतिक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी के विगत् इतिहास का क्रमबद्ध इस शोध–प्रबन्ध में किया गया है। आधुनिक भारत के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में यह अध्ययन अत्यन्त रोचक एवं तथ्यपरक विषय–वस्तु से परिपूर्ण है। राजस्थान में 1919 ई. से 1948 ई. के बीच गाँधीवादी राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में महिलाओं की भूमिका का विशेष तौर पर अध्ययन कर उनके कार्यों एवं तत्कालीन घटनाओं को परिष्कृत करने का इस शोध–प्रबन्ध में प्रयास किया गया है।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान में 1919 ई. से 1948 ई. के मध्य रियासती शासन व्यवस्था थी। गाँधीजी व्यक्तिगत तौर पर इस काल विशेष में राजस्थान में नहीं आये किन्तु उनके विचार अनेक प्रकार से संचार साधनों के माध्यम से राजस्थान में हुये जन आन्दोलनों एवं समाज सुधार कार्यों की पृष्ठभूमि में बने हुये थे। अतः गाँधीवादी कार्यों में उन महिलाओं की भूमिका का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अध्ययन एवं घटनावार इतिहास का विश्लेषण प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में किया गया है।

गाँधीजी राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी राजस्थान के विशेष संदर्भ में जो कार्य हुये है वे अपूर्ण तथा असंकलित हैं। अतः उन सभी को अध्ययन कर राजस्थान में हुये गाँधीवादी जन आंदोलनों एवं जन कार्यों में महिलाओं की भागीदारी स्थापित करने का कार्य प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में किया गया है।

शोध कार्य का महत्त्व

आधुनिक भारत के इतिहास में 1916 ई. से 1948 ई. के समय अन्तराल को गाँधीवादी काल के नाम से जाना जाता है क्योंकि इस काल विशेष में गाँधीजी ने जो जन आंदोलन किये वे राजनीतिक कार्यों में समायोजित किये जाते हैं। उन्होंने सामाजिक–आर्थिक जागृति हेतु जो अवधारणाऐं प्रस्तुत की यथा – शराब बंदी, खादी उत्पादन, चरखा बुनना, वर्धा शिक्षा योजना (व्यावसायिक शिक्षा नीति), महिला शिक्षा को प्रोत्साहन एवं विकास, विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ जैस पर्दा प्रथा, कन्या वध, बहु विवाह के उपर चोट करना एवं विधवा विवाह को प्रोत्साहन आदि कार्यों में राजस्थान में महिलाओं द्वारा किये गये सामाजिक, राजनैतिक कार्यों एवं घटनाओं को समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राजस्थान प्रदेश की इन महिलाओं के रियासती शासन व्यवस्था में जन जागृति हेतु राजपूताना में विभिन्न प्रजामण्डल आंदोलनों, सामाजिक और शैक्षणिक सुधार हेतु किये गये कार्य व्यापक एवं प्रभावी रहे। इस संदर्भ में उल्लेख है कि राजस्थान प्रदेश में गाँधीवादी राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में अनेक महिलाओं ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से बढ़–चढ़कर भाग लिया। इन महत्वपूर्ण महिलाओं में क्रमशः श्रीमती जानकी देवी बजाज, श्रीमती रतन शास्त्री, श्रीमती सावत्री देवी भाटी, श्रीमती गोकली बाई, श्रीमती रामप्यारी बाई, श्रीमती भगवती देवी, श्रीमती सविता देवी, श्रीमती रूकमणी देवी, श्रीमती महिमा देवी, श्रीमती लक्ष्मी देवी आचार्य, कुसुम बाई, उमंग कंवर, गीता बजाज व श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूंडावत आदि महिलाओं ने अपने–अपने क्षेत्र में गाँधीवादी विचारों की प्रासंगिकता हेतु व्यापक पैमाने पर कार्य किये जो राजस्थान प्रदेश की जन–जागृति हेतु महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए।

यहाँ यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि तत्कालीन रियासती काल में इन महिलाओं ने स्त्री शिक्षा का विस्तार करके आर्थिक पुननिर्माण और स्वदेशी विचारों के परिप्रेक्ष्य में चरखा कातना, खादी बुनना आदि कार्यक्रमों के माध्यम से राष्ट्र निर्माण का प्रयास किया। जबकि समाज सुधार आंदोलन के तत्वावधान में शराबबंदी व समाज में फैली विभिन्न प्रकार की कुरीतियों पर प्रहार किया एवं उन्हें भविष्य में नहीं दोहराने का संकल्प लिया। राजस्थान में इन तेजस्वी महिलाओं ने गाँधीजी की राजनीतिक पृष्ठभूमि में विभिन्न प्रजामण्डल आंदोलनों का विकास किया। जिससे राजस्थान की राजनीतिक जन जागृति को चेतना युक्त बनाया। इन महिलाओं ने ग्राम संघों एवं अनेक प्रकार के महिला संगठनों के माध्यम से राजनीतिक चेतना संबंधी एवं मानवाधिकार और कल्याणकारी संकल्पना पर बल दिया।

यद्यपि भारत में यह विचार 1919 ई. से 1948 ई. के मध्य अपने चर्मोत्कर्ष पर थे किन्तु यहां यह उल्लेखनीय है कि गाँधीजी जहाँ सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजी सत्ता के विरोध में जन जागरण कर रहे थे वहीं राजस्थान में महिलाएँ उन सामन्ती एवं मध्यकालीन व्यवस्था के खिलाफ जन जागरण कर रही थीं जो पुरातन समय से जड़े जमाये हुए था। अतः इन महिलाओं के राजस्थान में किये गये कार्य गरिमामयी एवं प्रभावी सिद्ध हुये।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध कार्य गाँधवादी राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी राजस्थान के विशेष संदर्भ में (1919 ई.–1948 ई.) के अन्तर्गत हम दो प्रकार के विधियों का प्रयोग किये हैं जिनमें मौलिक शोध सामग्री का उपयोग, गांधीजी एवं इन महिलाओं के आपसी पत्र व्यवहार से जुड़े पत्र, व्यक्तिगत पत्र, तत्कालीन समय की पत्र–पत्रिकाएं महिलाओं एवं गांधवादी कार्यों से संबंधित पुस्तकें आदि सम्मिलित किये गये है।

शोध साहित्य समीक्षा

वर्तमान में इससे पूर्व जो शोध कार्य सम्पन्न हुये हैं वह मुख्यतः राजस्थान में 1919 ई. से 1948 ई. के मध्य विभिन्न प्रकार की शासन शक्तियों की विवेचना पर आधारित रहे हैं। प्रस्तुत शोध साहित्य समीक्षा निम्न है –

कुमार, प्रभात ''**स्वतंत्रता संग्राम और गांधी का सत्याग्रह**'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1994।[1] प्रस्तुत पुस्तक में स्वतन्त्रता संग्राम और गांधी सत्याग्रह में लेखक ने गांधी के सत्याग्रह के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से व्याख्या की गई है। पुस्तक में सत्याग्रह के अर्थ, सिद्धान्त परिभाषा व साधनों को स्पष्ट किया गया है। साथ ही दक्षिण अफ्रीका में किये गए सत्याग्रह के सफल प्रयोग का भी उल्लेख किया गया है। गांधी द्वारा भारत

में चलाए गए प्रमुख अहिंसात्मक आन्दोलनों चम्पारन, अहमदाबाद, खेडा, असहयोग, सविनय अवज्ञा और भारत छोडो आन्दोलन का विस्तार से अध्ययन किया गया है। साथ ही लेखक ने वर्तमान में गांधी के सत्याग्रह की सार्थकता, सफलता और प्रासंगिकता का विश्लेषण करने का भी प्रयास किया है।

कुमार, हरीश ''**सामाजिक राजनैतिक परिवर्तन**'' अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस प्रकाशक, नई दिल्ली, 2006।[2] प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने गांधी के सत्य, अहिंसा व सत्याग्रह के माध्यम से समाज में सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन का उल्लेख किया है। लेखक ने समझाने का प्रयास किया है कि सत्य और अहिंसा अचुक अस्त्र है जिसके सहारे से हम शांतिपूर्ण विरोध की नीति सत्याग्रह को प्राप्त कर सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में सत्य का अर्थ, सत्य व ईश्वर का परस्पर सम्बन्ध अहिंसा का विभिन्न धर्मों में अर्थ व गांधीजी की अहिंसा, गांधीजी अहिंसा के लक्ष्य व अहिंसा के प्रकारों का भी उल्लेख किया गया है। साथ ही अहिंसक प्रतिरोध की नीति सत्याग्रह का भी विस्तार से उल्लेख किया गया है। गांधीजी सत्याग्रह के प्रमुख साधनों व रचनात्मक कार्यक्रमों को भी बताया गया है और यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान के इस परमाणू युग में गांधीजी अहिंसक प्रतिरोध की नीति सत्याग्रह ही सार्थक सिद्ध हो सकती है।

गांधी, महात्मा ''**मेरे सपनों का भारत**'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2008।[3] प्रस्तुत पुस्तक में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि महात्मा गांधी बीसवीं सदी के सबसे अधिक प्रभावशाली भारतीय व्यक्ति हैं। जिनकी अप्रत्यक्ष उपस्थिति उनकी मृत्यु के साठ वर्ष बाद भी पूरे देश पर देखी जा सकती है। उन्होंने जो स्वाधीन भारत की कल्पना की और उसके लिए जो कठिन संघर्ष किया, स्वाधीनता से उनका अर्थ केवल ब्रिटिश राज से मुक्ति का

नहीं था बल्कि वह गरीबी, निरक्षरता और अस्पृश्यता जैसी बुराईयों से भी मुक्ति का सपना देखते थे। वह चाहते थे कि देश के सारे नागरिक समान रूप से आजादी और समृद्धि का सुख पा सके। इस पुस्तक में गांधी के बहुत से परिवर्तनकारी विचार जिन्हें उस समय असंभव कहकर परे कर दिया गया था आज न केवल स्वीकार किये जा रहे है बल्कि अपनाएं भी जा रहे हैं, को स्पष्ट किया है। आज की पीढी के सामने यह स्पष्ट हो रहा है कि गांधी के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने उस समय थे। गांधी के विचार इक्कीसवीं सदी के लिए सार्थक और उपयोगी हैं। यह पुस्तक गांधी के मन और विचारों की एक विस्मयकारी झांकी प्रस्तुत करती है। इसमें आज के उन्नतशील भारत के बारे में उनके जीवन्त सपनों की झलक मिलती है।

कौशिक, आशा ''**गांधी नयी सदी के लिए**'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं दिल्ली, 2000।[4] प्रस्तुत पुस्तक में यह स्पष्ट किया है कि गांधी चिंतन मात्र दर्शन नहीं है न ही मात्र कर्म का आग्रह है यह दोनों का संश्लेषण है। पुस्तक में यह भी विवेचन किया है कि आज के परिवर्तित परिवेश में ही नहीं, नयी सदी में भी गांधीजी प्रत्ययों के गुणात्मक परिवर्तन में भी विशेष भूमिका हो सकती है। प्रस्तुत पुस्तक में व्यक्ति, समाज, राजनीति, कर्म, पुरूषार्थ, परम्परा, आधुनिकता, स्त्री गरिमा एवं प्रस्थिति, सत्याग्रह, स्वराज्य, स्वदेशी, राष्ट्रवाद, न्यायनीति, ग्रामधारिता, लोकतंत्र तथा सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन के विविध आयामों के संदर्भ में गांधीजी दृष्टि की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

सिंह, वी.एन. एवं सिंह, जनमेजय ''**भारत में सामाजिक आन्दोलन**'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं दिल्ली, 2005।[5] प्रस्तुत पुस्तक में भारत में प्रमुख सामाजिक आन्दोलन हुए हैं उनका आलोचनात्मक वर्णन किया गया व इन

सामाजिक आन्दोलनों का अध्ययन ऐतिहासिक और प्रादेशिक दोनों ही आधारों पर किया गया है। पुस्तक में यह स्पष्ट किया गया है कि हमारा प्रदेश और भाषाएँ चाहे जितनी भी अलग रही है, लेकिन हमारे दुःख, हमारी चिन्ताएँ और हमारे विचार एक ही होते हैं।

शर्मा, वीरेन्द्र ''**भारत के पुनः निर्माण में गाँधी का योगदान**'' श्री पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1984।[6] प्रस्तुत पुस्तक में गांधी द्वारा भारत में स्वाधीनता आन्दोलन में जो योगदान रहा है तथा भारत के पुनः निर्माण में क्या भूमिका रही उसका वर्णन किया है इसमें यह भी वर्णन किया है कि गांधी के अहिंसक सत्याग्रह पद्धति ही उनका प्रमुख अस्त्र है।

सिंह, रामजी ''**गांधी दर्शन मीमांसा**'' बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973।[7] प्रस्तुत पुस्तक में गांधी के सम्पूर्ण दर्शन पर प्रकाश डाला गया व लेखक के अनुसार गांधी बौद्धिक ही नहीं थे ज्ञानी बनने की उनमें चेष्टा नहीं रही असल में उनकी साधना गुण की थी ही नहीं। उन्होंने नितान्त निर्गुण बने रहना चाहा। अपनी भावना तत्व से हीन और सत्य में लीन उन्होंने दर्शन नहीं दिया, ज्ञान नहीं दिया, सर्वाशतः अपने को ही दिया। लेखक ने समकालीन भारतीय चिन्तन में गांधी का प्रासंगिकता पर सकारात्मक विचार प्रकट किये। इस पुस्तक में गांधी के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विचारों का गहराई से विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

शर्मा, ब्रह्मदत्त ''**गांधी एवं भारतीय राष्ट्रवाद**'' रचना प्रकाशन, जयपुर, 2007।[8] प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने यह समझाने का प्रयास किया है कि भारतीय इतिहास में राष्ट्रवाद की अवधारणा का अत्यन्त महत्व रहा है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास राष्ट्रवाद की अवधारणा का इतिहास रहा है। उपरोक्त पुस्तक गांधी एवं भारतीय राष्ट्रवाद में भारतीय राष्ट्रवाद के दौरान

हमारे सामने राष्ट्रवाद के विभिन्न स्वरूपों का गांधी के संदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसमें राष्ट्रवाद के उदय के विभिन्न कारणों, स्वरूपों एवं इसकें विकास की गति पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में लेखक ने गांधी के राष्ट्र, स्वराज, स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रवाद के आर्थिक स्वरूप सम्बन्धि विचारों का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। गांधी के द्वारा चलाये गए विभिन्न आन्दोलनों का विवेचन किया गया है। जिनमें खेडा, चम्पारन, अहमदाबाद, सत्याग्रह आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन (1920), सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930) एवं भारत छोडो आन्दोलन (1942) प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पुस्तक में गांधी के राष्ट्रवादी विचारों की अन्य समकालीन राष्ट्रवादी चिन्तकों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

रत्तू, कृष्ण कुमार एवं रत्तू, कमला ''**समग्र गांधी दर्शन, गांधी चिन्तन और वर्तमान प्रसंग**'' आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2009।[9] प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने गांधी दर्शन की प्रासंगिकता को आधुनिक प्रसंग में विभिन्न धारणाओं से देखा परखा जा रहा है। इस पुस्तक में गांधी दर्शन से जुडे अनेक प्रसंगों को प्रस्तुत किया गया है। गांधी के स्वतन्त्रता संग्राम का विस्तार से विश्लेषण किया गया है। साथ ही धर्म स्वतन्त्रता अहिंसा आदि का भी विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

कालेलकर, काकासाहब, **जमनालाल बजाज की डायरी**, जमनालाल बजाज सेवा ट्रस्ट, वर्धा, 1966।[10] प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थान में सर्वोदय द्वारा ही स्वशासन स्थापित किया जा सकता है। इसका अर्थ है जनता उठ खड़ी हो और सहयोगमूलक कार्यो में सजग और सक्रीय रूप से भाग ले। यदि चोटी के अधिकारी विकृत और भ्रष्ट हो सकते है, तो ग्राम स्तर के छोटे कार्यकर्ताओं के सम्बन्ध में भी यह डर हो सकता है। अतः आवश्यक है कि उन्हें हर प्रकार के

भ्रष्टाचार से बचाने के लिए प्रभावकारी उपाय किये जाये। सर्वोदय जनता का उथान करना चाहता है। जनता को राजनीतिक क्रिया कलाप का केन्द्र बनना चाहता है। न कि केन्द्रीय संसद अथवा मंत्रीमण्डल को। राजनीति के स्थान पर लोकनीति को स्थापित करने का यही महत्व है। विनोबा का कहना है कि ''स्वराज्य आ चुका है। किन्तु क्या जनता को उसके कल्याणकारी प्रभाव की अनुभूति होती है? स्वराज्य अथवा स्वशासन शब्द में ही विकेन्द्रीकरण का भाव निहित है। इसलिए इस सिद्धान्त को हर व्यवहारिक सीमा तक लागू करना है, जीवन के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक हर क्षेत्र में क्रियान्वित करना है। वास्तव में सर्वोदय आन्दोलन का आग्रह है जिन नीतियों और पद्धतियों में सच्चे अहिसांत्मक लोकतन्त्र की स्थापना हो सके उनको क्रियान्वीत करने के लिए तत्काल कदम उठाये जाये। कल्याणकारी राज्य में भी समग्रवादी बनने की प्रवृति होती है, क्योंकि उसके अन्तर्गत राज्य अधिकाधिक राज्यों के कार्यो को अपने हाथ में ले लेता है, और कार्यो की वृद्धि से शक्ति की वृद्धि होना अनिवार्य है। सर्वोदय के अनुसार दूसरों पर निर्भर रहने की बालकों की सी यह परोपजीवी प्रवृति स्वतन्त्रता की आदत तथा मूलप्रवृति को ही नष्ट कर देगी। इस स्वालम्बन और अनुशासन की कला को सीखना आवश्यक है।

राकेश, एम.ए., **श्री जवाहिर लाल जैन (जीवन झांकी),** प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2008।[11] प्रस्तुत पुस्तक में श्री जवाहिरलाल जी के सक्रिय जीवन की यह एक विशेषता के बारे में वर्णन किया गया है। श्री जवाहिर लाल जैन किसी भी पद पर लंबे समय तक नहीं रहे। 1959 में उन्हें नयी जिम्मेदारियां संभालनी पड़ी। आजादी के बाद केन्द्रीय नेताओं ने खादी के देश–व्यापी तंत्र को सरकारी जामा पहनाने की तैयारी की, क्योंकि खादी के विकास और विस्तार के लिए सरकार द्वारा बड़े पैमाने पर वित्तीय सहायता देना

चाहते थे। फलस्वरूप पहले अ.भा. खादी ग्रामोद्योग आयोग का गठन किया गया। खादी ग्राम उद्योग की संस्थाओं को अनुदान और खादी की प्रामाणिकता को देखने का दायित्व इसी संगठन को है। खादी ग्राम आयोग के राजस्थान प्रदेश की शाखा के निदेशक के लिए पहले श्री भूरेलाल बया मनोनीत किये गये। बाद में यह दायित्व श्री जवाहिरलाल जैन को 1960 में सौपा गया। उस समय श्री बैकुण्ठ भाई मेहता कमीशन के अध्यक्ष थे। 1951 में जब आचार्य विनोबा भावे ने देश में भूमिहीनों के लिए भू–पतियों से दान में भूमि प्राप्त करने और उसे बेजमीन परिवारों में वितरित करने के लक्ष्य से भूदान आन्दोलन शुरू किया तो श्री जवाहिरलाल जैन भी उनके साथ जुड़ गये। श्री जवाहिरलाल जैन का इस आन्दोलन में कार्य–क्षेत्र यद्यपि राजस्थान तक ही सीमित रहा, किन्तु सर्वोदय सम्मेलनों तथा आवश्यकता पड़ने पर आप देश के अन्य भागों में भी जाते रहे। इस आन्दोलन में शामिल होने के पीछे श्री जयप्रकाश नारायण की प्ररेणा भी रही। श्री जैन ने इस आन्दोलन के सिलसिले में मुख्य रूप से जयपुर जिले के चाकसू तथा दूदू प्रखण्डों में ही विशेष काम किया। राजस्थान में जैसलमेर, बीकानेर तथा बिहार के कुछ क्षेत्रों में भी आप इस आन्दोलन के प्रसंग में गये। राजस्थान में इस आन्दोलन के अन्तर्गत लगभग 200 ग्राम दान हुए, जिनमें उनकी सारी जमीनें ग्रामसभा के नाम कर दी गई। सारे देश के संदर्भ में देखें तो बीकानेर क्षेत्र में 1,42,392 बीघा जमीन मिली। उस जमीन पर आज भी किसान खेती कर रहे है।

विद्यार्थी, रामेश्वर, **सिद्धराज ढड्ढा (संस्मरण एवं पत्र व्यवहार)**, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2009।[12] इस पुस्तक में श्री सिद्धराजजी ढड्ढा के व्यक्तिगत व्यवहार में विनम्रता एवं सहृदयता विख्यात है, परन्तु सिद्धान्तों की अनुपालना में, उनका स्वयं अपने लिये और दूसरों के लिये व्यवहार बहुत

अनुशासित होता है। उनका जीवन समग्र क्रान्ति के लिये निष्ठापूर्वक समर्पण की गाथा है। सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी ढड्ढाजी अपनी वैचारिक निष्ठा एवं सिद्धान्तों के प्रति अविचल–अडिग हैं। जीवन के हर क्षेत्र में नैतिक मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं सामाजिक समता व आर्थिक न्याय पर आधारित शोषणमुक्त सामाजिक संरचना हेतु वे सदा कृत संकल्प रहे हैं। गाँधी दर्शन से प्रभावित उनके विचार ही नहीं, समूचा जीवन ही ओतप्रोत रहा है।

गांधी के राम राज्य, विनोबा के ग्रामस्वराज्य एवं जे.पी. के लोक राज्य की स्थापना के प्रति समर्पित ढड्ढाजी के सौम्य व्यवहार की छाप देश–प्रदेश में विद्यमान गाँधी–विचार परिवार पर स्पष्ट परिलक्षित है। जे.पी. के सान्निध्य में गुजारे अपने व्यक्तिगत जीवन के बारे में वे कहते हैं **''मेरे सार्वजनिक जीवन में सार्थक होता समय उतना ही था, जितना मैंने जे.पी. के साथ, तथा जे.पी. के आन्दोलन में लगाया।''** ढड्ढाजी के बहुआयामी व्यक्तित्व में सूझ–बूझ और क्रान्तिकारी भावना का दुर्लभ संयोग है। यद्यपि उन्होंने आग्रह करने पर हीरालाल शास्त्री मंत्री मंडल में मंत्री बनना स्वीकार किया, लेकिन मंत्रीपद उन्हें रास नहीं आया। सत्ता व्यवस्था से शीघ्र ही उनका मोह भंग हो गया और वे त्याग पत्र देकर लोक शक्ति के जागरण और नागरिक अधिकारों की रक्षा में अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ लग गये, आज भी उसी राह के पथिक हैं। आज की सत्तायुक्त व्यवस्था में यह त्याग का अतुलनीय उदाहरण है। किसी विषय की गहराई में जाना तथा उसकी प्रामाणिकता की जांच–परख कर उसके बारे में राय बनाना या टिप्पनी करना श्री सिद्धराज ढड्ढा के स्वभाव में निहित था।

शर्मा, श्री प्रकाश, **राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा**, राजस्थान स्वर्ण जयन्ती समारोह समिति, जयपुर, 2002।[13] महात्मा गांधी ने

हिन्द स्वराज्य की जो कल्पना की थी, उस कल्पना को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास उन्होंने अपने जीवनकाल में ही प्रारम्भ कर दिया था। स्वतन्त्रता आन्दोलन को स्वदेशी का माध्यम बनाया और उसे मूर्तरूप देने के लिए कई संस्थाओं की स्थापना की। इन संस्थाओं में अ. भा. चरखा संघ, अ. भा. ग्रामोद्योग संघ, तालीम संघ, गोसेवा संघ, अ. भा. हरिजन सेवक संघ, आदिम जाति सेवक संघ, आदि प्रमुख है। इनमें से अधिकांश संस्थाओं के अध्यक्ष गांधीजी स्वयं थे तथा उस विषय के विशेषज्ञ उसके मंत्री थे। चरखा संघ देश की प्रमुख संस्था थी और इसका महत्व एवं विस्तार भी अधिक था क्योंकि खादी आन्दोलन की धुरी थी। उन्होंने खादी को ग्रामीण विकास की धुरी कहा था। गांधी जी ने स्वराज्य को समग्र रूप में देखा और उपरोक्त संस्थाओं को उसका माध्यम बनाया। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान सभी संस्थाऐं अपने कार्य के साथ–साथ स्वतंत्रता आन्दोलन से सक्रिय रूप से जुड़ी थीं। सन् 1944 में गांधी जी ने संस्थाओं के नवसंस्करण का विचार रखा और आजाद भारत में उनके माध्यम से समग्र विकास करने का विचार प्रस्तुत किया। इस विचार के अन्तर्गत विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं को मिलकर समग्र सेवा की दृष्टि से काम करने की बात कही गयी थी। सर्वोदय केन्द्र खीमेल की गतिविधियों में विविधता आती गयी।

''**डॉ. पेमाराम, एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान,**[14] पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1986'' प्रस्तुत पुस्तक में अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रभाव में राजस्थान में किसान आन्दोलन 1920 के पश्चात् प्रभावी रूप से आरम्भ हुए। 1920 से 1942 की अवधि में राजस्थान सामन्तवाद व उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन का केन्द्र रहा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जब 1922–30 तथा 1931–42 के मध्य ब्रिटिश भारत में कोई आंदोलन

नहीं चल रहा था तब राजस्थान में किसान व आदिवासी आन्दोलन अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर थे तथा साम्राज्यवादी शक्ति के लिये चुनौती बने हुए थे। 1938 तक अनेक प्रयासों के उपरापन्त भी राष्ट्रीय नेतृत्व ने राजस्थान के किसान व आदिवासी तथा अन्य जन आंदोलनों को समर्थन प्रदान किया। 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति में परिवर्तन आया। इसके अनुसार कांग्रेस ने रियासतों के राजनीतिक कार्यकर्ताओं को अपने राज्य में प्रजा मण्डल संगठन बनाकर उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु संघर्ष की सलाह दी थी। 1938 के पूर्व के परिपक्व किसान एवं आदिवासी आंदोलनों ने प्रजा मण्डल आंदोलन को राजनीतिक आधार प्रदान किया। किसान व आदिवासी जो लम्बे समय से संघर्षरत थे, यह भली–भांति अनुभव कर चुके थे कि उत्तरदायी शासन की स्थापना ही उनके समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

''**कपिल, प्रो. एफ.के., राजपूताना : जन जागरण से एकीकरण,**[15] राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014'' प्रस्तुत पुस्तक में 19वीं सदी के प्रारम्भ में मराठा आक्रमण से भयभीत राजपूताना के नरेशों ने ब्रिटिश सरकार से संधियां कर ब्रिटिश शक्ति का संरक्षण प्राप्त किया तथा नरेशों को इससे आंतरिक विद्रोह और बाहय संकट से तो मुक्ति मिल गयी लेकिन इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि देशी राजाओं का अब अपनी प्रजा से सम्पर्क नहीं रहा और वे राज्य की आय को अपने मनोरंजन, शिकार और विलासी जीवन पर लुटाने लगे का वर्णन है। जागीरों में स्थिति और भी भयावह थी जहां की प्रजा जागीरदार, नरेश और ब्रिटिश सरकार, इन तीनों की दास थी। सदियों से नरेशों को जो सम्मान प्राप्त था वह स्वयं उनके कार्यों से समाप्त हो गया। 20वीं सदी के प्रारम्भ से विभिन्न राज्यों के प्रबुद्ध व्यक्तियों ने जन अधिकारों की प्राप्ति के

प्रयास किये। राज्यों में विरोध करने पर कठोर दमन होने से उन्हें ब्रिटिश प्रान्तों में शासन सुधारों के लिए प्रचार करना पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति तक देशी नरेश ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करते रहे लेकिन तेजी से चले घनाचक्र में निरंकुश राजतंत्रीय व्यवस्था समाप्त हो गयी।

सरकार की शोषणकारी आर्थिक नीतियों के विरूद्ध किसान आन्दोलन जारी रहा । लेकिन अब इस आन्दोलन ने प्रजामण्डल के नेतृत्व में जागीरों का मामला उठाया गया। प्रजामण्डल सम्मेलनों में माफी एवं जागीर क्षेत्रों के किसानों को अधिकार दिलाने तथा खालसा पद्धति के अनुरूप जागीर क्षेत्रों के उचित सर्वेक्षण व बन्दोबस्त के द्वारा वहां भी खालसा क्षेत्र के समान राजस्व व्यवस्था लागू करने व जागीरदारों द्वारा ली जाने वाली लाग व बेगार की समाप्ति की मांग की गई। लेकिन प्रजामण्डल के नेतृत्व वाले किसान आन्दोलन को कोई लाभ नहीं हुआ। इसके विपरीत जागीरदारों व माफीदारों ने अपने किसानों को जोतों से बेदखल कर दिया गया। उन्होने अपनी भूमि पर खेती का प्रबंध या तो स्वयं ने किया अथवा उसे खाली छोड दिया। इस पुस्तक में विभिन्न राज्यों में जन जागृति के लिए संघर्ष करने वाले प्रमुख व्यक्तियों की भूमिका का वर्णन किया गया है।

''**शर्मा, डॉ. बृजकिशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन,** [16] राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2011'' इस पुस्तक में सामान्यजन व दलित वर्ग के इतिहास लेखन के क्षेत्र में कृषक व आदिवासी आन्दोलन अत्यधिक महत्वपूर्ण विषय है का वर्णन किया गया है। राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन सामाजिक गतिशीलता व परिवर्तन के वाहक रहे हैं। वर्तमान पुस्तक में इन आन्दोलनों को ऐतिहासिक परिपेक्ष में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

राजस्थान में अंग्रेजी सर्वोच्चता की स्थापना के अन्तर्गत सामन्तवाद एवं उपनिवेशवाद के मध्य जो अपवित्र गठबंधन हुआ वह किसान एवं आदिवासी

समुदायों के कष्ट का कारण बना। यहां के शासक व जागीरदारों का ध्येय अंग्रेज स्वामियों की खुशामद करना मात्र रह गया था। वे अपने औपनिवेशिक स्वामियों के प्रति अपने दायित्व निर्वहन व अयाशी के लिये अपनी प्रजा को लूटने लगे थे। कृषक व आदिवासी इनकी लूट का प्राथमिक शिकार थे। अतः 1818 में ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना के साथ ही आदिवासी एवं किसान प्रतिरोध आरम्भ हो गया था जो निरन्तर किसी न किसी रूप में जारी रहा।

''**चौधरी, डॉ. सुरेश कुमार, राजस्थान में प्रतिनिधि संस्थाओं का इतिहास,**[17] राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014'' प्रस्तुत पुस्तक में जयपुर राज्य के राजनैतिक चेतना का विकास, प्रजामण्डल एवं उसकी गतिविधियों, केन्द्रीय सलाहकार मण्डल, 1944 के संवैधानिक सुधार, 1944 के बाद के सुधार, जयपुर नगरपालिका तथा ग्राम पंचायतों के विविध आयामों का विश्लेषण कर, जयपुर राज्य में प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास के इतिहास को समुचित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रजामण्डल के नेताओं के संघर्षपूर्ण प्रयासों के परिणामस्वरूप इन प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना का रास्ता निकला। इनस सभी का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

''**डॉ. पेमाराम, सांस्कृतिक राजस्थान : इतिहास के विविध आयाम,**[18] राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014'' प्रस्तुत पुस्तक में लेखक राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास बड़ा गौरवमय है। यह एक समुद्र की तरह है जिसमें विभिन्न विद्वानों ने समय–समय पर इसके विभिन्न पहलुओं पर कार्य किया है। अभी भी इस विषय पर काम करने की व्यापक संभावनाएं है। लेखक ने भी सांस्कृतिक इतिहास में विभिन्न अनछुए पहलुओं पर अनेक शोध–पत्रिकाओं व पुस्तकों में प्रकाशित हुए है। इस पुस्तक में अत्याचारी सामन्ती व्यवस्था एवं उसके संरक्षक निर्दय स्वेछाचारी राजतंत्र तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध सर्वप्रथम विद्रोह का झण्डा बुलन्द करने का श्रेय प्रकृति पुत्र भीलों को ही है। भील जनजाति अधिकतर मेवाड़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर एवं सिरोही रियासतों में रहती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भील भारत के प्रारम्भिक आदिवासियों में हैं।

नागरी सभ्यता से दूर प्रकृति की गोद में निवास एवं पालन–पोषण होने के कारण इन्हें प्रकृति–पुत्र कहा जा सकता है। **कर्नल जेम्स टॉड** ने ठीक ही भीलों को 'वन पुत्र' कहा है। आदिवासी भील जाति नागरी सभ्यता से अछूती रहकर शताब्दियों से पर्वत श्रेणियों एवं वनों में आश्रयस्थल बनाकर रहती आयी है। प्रकृति और वन सम्पदा पर आश्रित रहते हुए भील समुदाय अपने परम्परागत सामाजिक, सांस्कृतिक तथा पंचायती जीवन में जीता आया है। अशिक्षित होने के कारण भील बहुत अन्धविश्वासी हैं और भूत–प्रेतों से बचाव के लिए गंडे–ताबीज पहनते हैं। वे जादू–टोने में भी विश्वास रखते हैं। बहादुरी व वफादारी उनकी चारित्रिक विशेषता है। स्वभाव से वे सदैव स्वतंत्रताप्रिय, युद्धप्रिय, संकोची तथा अशान्त रहे हैं। कानून और व्यवस्था के प्रति अनादर उनका स्वभाव है। अपने ऊपर थोपे गए प्रतिबन्धों का उन्होंने सदा विरोध किया है। देशी या विदेशी शासकों द्वारा उनकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने पर वे उनके खिलाफ उठ खड़े हुए हैं। ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध उन्होंने इसी कारण विद्रोह किया। इस पुस्तक में किसान जन–जागृति से संबंधित भी कुछ आलेख छपे है जो इस शोध के लिए महत्वपूर्ण है।

''**पानगडिया, बी.एल, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम,**[19] राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1985'' इस पुस्तक में राजस्थान की रियासतों में हुए विभिन्न जन आन्दोलनों का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया गया है। बिजौलिया कृषक आंदोलन द्वारा राजस्थान में राजनीतिक जनजागृति लाने और समूचे देश का ध्यान आकृष्ट करने में भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। इस आंदोलन के प्रणेता विजय सिंह पथिक ने 'राजस्थान केसरी', 'नवीन राजस्थान' और 'तरूण राजस्थान' के माध्यम से इस आंदोलन का प्रचार–प्रसार कर सम्पूर्ण राष्ट्र का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। बिजौलिया आंदोलन के समाचार इन पत्रों के व्यापक माध्यम द्वारा राष्ट्रीय नेताओं–महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का ध्यान आकृष्ट कर सके। बिजौलिया किसान आंदोलन की ओर से पथिक ने कानपुर से निकलने वाले

साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' के संपादक श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को राखी भिजवाई तथा उनसे प्रचार एवं प्रकाशन की सहायता मांगी। इस पर उन्होंने 'प्रताप' के पृष्ठ बिजौलिया किसान आंदोलन के प्रचार के लिए खोल दिए। उन्होंने इसके लिए एक स्थायी स्तम्भ निर्धारित कर दिया जिसका संपादन स्वयं पथिक जी करते थे। राजस्थान में हुए अन्य आन्दोलन का भी वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

''**जोशी, सुमनरेश, राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी,**[20] जयपुर, 1973'' इस पुस्तक में राजस्थान के लोगों की स्थिति तत्कालीन ब्रिटिश भारत के अन्य प्रांतों से बदतर थी, क्योंकि यहाँ के लोग तीन स्तरों पर शोषण का शिकार हो रहे थे। प्रथम स्तर पर सामंत थे, द्वितीय स्तर पर राजा–महाराजा एवं तृतीय स्तर पर अंग्रेज। इसलिए राजस्थान के स्वाधीनता सेनानियों को दोहरी लड़ाई लडऩी पड़ी। एक ओर उन्हें राजाओं के अत्याचार, अनाचार, आर्थिक शोषण और कुशासन के विरुद्ध जिहाद छेड़ना पड़ा तो दूसरी ओर उन्हें अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध भी विद्रोह का उद्घोष करना पड़ा। तत्कालीन निरंकुश एवं शोषक व्यवस्था के प्रतिक्रिया स्वरूप जितने भी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुधार आन्दोलन हुए, उन आन्दोलनों के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने और उनके लिए राष्ट्रीय चेतना की भावना के विकास में तत्कालीन समय में प्रकाशित इस पुस्तक में विस्तृत वर्णन किया गया है।

''**ठाकुर, देशराज, रियासती भारत के जाट जन सेवक,**[21] भरतपुर, 1949'' इस पुस्तक में राजपूताना में अंग्रेजी सत्ता की सर्वोपरिता ने रियासत के आर्थिक जीवन को बुरी तरह से प्रभावित किया। कृषि जिस पर कुल जनसंख्या का 80 प्रतिशत भाग निर्भर करता था सबसे अधिक प्रभावित हुई। ब्रिटिश आर्थिक नीतियों से पूर्व अधिकांश किसानों को खालसा क्षेत्र में स्थाई भू–स्वामित्व के अधिकार प्राप्त थे। अधिकांश मामलों में किसानों का अपनी जोतों पर स्वामित्व सुरक्षित था। उनको भू–राजस्व चुकाते रहने तक बेदखल नहीं किया जा सकता था। भूमि बन्दोबस्त से पूर्व राज्य संरक्षित खालसा भूमि

के दो प्रकार थे कृषि भूमि और चरनौता। कृषि भूमि खेती योग्य भूमि थी चाहे सम्पूर्ण भूमि पर खेती न होती हो। चरनौता भूमि मवेशियों के चरने के लिए तथा चारा उगाने के लिए छोड़ी जाती थी, जो गाँव पंचायत के नियन्त्रण में होती थी। कृषक भी दो तरह के थे बापीदार और गैर बापीदार। इस पुस्तक में जन जागृति एवं किसान आंदोलन का विस्तृत वर्णन किया गया है।

''**शर्मा, डॉ. बृजकिशोर, सामन्तवाद एवं किसान संघर्ष,**[22] जयपुर, 1992'' राज्य की आर्थिक व्यवस्था का आधार मुख्यतः किसान और कृषि पैदावार थी, किन्तु खेती के पुराने तरीकों तथा सिंचाई के साधनों के अभाव के कारण कृषि की उपज सन्तोषजनक नहीं थी। राज्य की अन्यापूर्ण नीति, जागीरदारों के शोषण तथा राज्य के अधिकारियों की मनमानी तथा भू–लगान की दोषपूर्ण पद्धति कृषि की उन्नति में बाधक थी। किन्तु सरकार इस विषय में पूर्णतः उदासीन थी।राज्य में किसानों के हितों की पूर्णतः उपेक्षा कर समय–समय पर भूमि–बन्दोबस्त किए गए। 1905 ई. में पोलिटिकल एजेण्ट टी.होम के समय पहली बार दसवर्षीय भूमि–बन्दोबस्त नम्बरदारी प्रणाली से लागू किया गया जिससे लगान की मात्रा दुगुनी हो गई। दस वर्ष बाद 1915 ई. में दूसरा बन्दोबस्त रैयतवाड़ी प्रणाली से 20 वर्ष के लिए किया गया और उसमें खेती की पैदावार और किसानों की दशा का कोई खयाल रखे बिना भूमि का लगान दुगुना कर दिया गया। इसका किसानों द्वारा विरोध होने पर सरकार ने कुछ राहत देने का आश्वसन दिया, किन्तु पुनरू शोषण की नीति अपना ली। सन 1940 ई. में हुए तीसरे भूमि–बन्दोबस्त में भी एक आने से आठ आने बीघा तक लगान बढ़ा दिया गया। इस तरह पिछले 40 वर्षों में भूमि लगान की मात्रा १३ गुना अधिक बढ़ा दी गई। नए कुओं पर भी 2 से 5 रुपये तक वार्षिक कर लिया जाता था। महुआ कर बन्द कर दिए जाने के बाद भी वसूल किया जाता था। राजकीय करों के इस भारी बोझ से राज्य के किसान बर्बाद हो गए आदि किसान सम्बन्धी समस्याओं का उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है।

''**गहलोत, हर सुखवीरसिंह, राजस्थान स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास,**[23] जयपुर, 1992'' इस पुस्तक में मुगल सत्ता के पतनोन्मुख काल में राजपूत शासकों को मराठों की लूट–खसोट और अपने ही सामन्तों के विरोध का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप विवश होकर राजपूत शासकों ने ब्रिटिश संरक्षण स्वीकार कर लिया। ब्रिटिश सरकार ने शासकों एवं सामन्तों दोनों को कमजोर बनाकर राज्यों के आन्तरिक प्रशासन पर अपना नियंत्रण स्थापित कर राज्यों का आर्थिक शोषण करना शुरु कर दिया। इस समय यह प्रदेश उन्नीस छोटी–बड़ी देशी रियासतों व तीन खुद मुक्तार ठिकानों में विभाजित था तो साथ ही ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रशासित अजमेर–मेरवाड़ा का क्षेत्र भी इसमें सम्मिलित था। राजस्थान के लोगों की स्थिति तत्कालीन ब्रिटिश भारत के अन्य प्रान्तों से बदतर थी। न केवल राजनीतिक दृष्टि से अपितु सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से भी यह प्रदेश बहुत पिछड़ा हुआ था। यहाँ के लोग तीन स्तरों पर शोषण के शिकार हो रहे थे। प्रथम स्तर पर सामंत थे, द्वितीय स्तर पर राजा–महाराजा एवं तृतीय स्तर पर अंग्रेज।

''**व्यास, डॉ. रामप्रसाद आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास खण्ड–1,2,**[24] राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1998'' प्रस्तुत पुस्तक में 1818–1950 तक राजस्थान के निर्माण तक के इतिहास के विभिन्न पक्षों का भारतीय इतिहास के व्यापक सन्दर्भ में सरल व सुबोध भाषा में उजागर करने की महती भूमिका का निर्वाह करते हुए इतिहास की एक खलने वाली कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया गया है। पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी और 1857 के पश्चात् ब्रिटिश सरकार द्वारा राजस्थान के देशी राज्यों के प्रति अपनाई गई नीतियों के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक इतिहास का सर्वेक्षण किया गया है। ब्रिटिश विरोधी भावना 1857 के विप्लव में राजस्थान का योगदान, किसान व भील आन्दोलन, जनचेतना व स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की महती भूमिका की समीचीन समीक्षा अत्यन्त रोचक रूप से प्रस्तुत की गई। है।

''**पहरिहार, डॉ. विनीता, राजस्थान में प्रजामण्डल आन्दोलन,**[25] राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010'' प्रस्तुत पुस्तक में स्वतंत्रता से पूर्व देशी रियासतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना तथा नागरिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का विषय इतिहासकारों के लिये रोचक तथा प्रेरणादायक रहा है, का वर्णन किया गया है। राजपूतना की विभिन्न रियासतों में इस संघर्ष का संचालन प्रजामण्डलों द्वारा किया गया था। 1938 में देशी रियासतों के प्रति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति में हुए परिवर्तन ने देशी रियासतों के राजनीतिक संगठनों को राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से जोड़ दिया। जिसके परिणामस्वरूप राजपूताना की विभिन्न रियासतों में राजनीतिक गतिविधियां तीव्र हुई। प्रजामण्डल ने उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए संघर्ष किया तथा राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई।

''**टॉड, कर्नल जेम्स, एनाल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–1,2,**[26] राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2008'' प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थान के इतिहास लेखन में शिलालेखों का महत्वपूर्ण स्थान है, जो यहां की कई ऐतिहासिक घटनाओं तथा वंशक्रम का विवेचन करते है। शिलालेखों में वर्णित घटनाओं को अधिक विश्वसनीय नहीं माना जाता है, क्योंकि अधिकांश शिलालेख राजकीय आश्रय में लिखवाये जाते थे। इनमें अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन अधिक मिलता है, फिर भी इनमें प्रयुक्त तिथियों व घटनाओं पर हम निसंकोच विश्वास कर सकते है। राजस्थान के विविध क्षेत्रों से अब तक हजारों की संख्या में शिलालेख प्राप्त हो चुके हैं। इनमें से प्रचुर मात्रा में शिलालेख तालाबों, बावडिय़ों व कुओं पर पाये जाते हैं। कर्नल जेम्स टॉड के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज ऑफ राजस्थान' के प्रकाशित होने के बाद राजस्थान का इतिहास क्रमबद्ध रूप से हमारे समक्ष आया।

''**ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, राजपूताने का इतिहास,**[27] वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1937'' प्रस्तुत पुस्तक में राजपूताने का इतिहास में कछवाहों तथा चौहान राज्यों के इतिहास की ओर अपने लेखन में विशेष ध्यान नहीं दिया,

अपने वृहद् आकार के साथ ही उनके विद्वतापूर्ण विशद् गंभीर विवेचनों के कारण भी ओझा कृत 'राजपूताने का इतिहास' साधारण विद्वत समाज में भी विशेष लोकप्रिय या जन सुलभ नहीं हो पाया। ग्रन्थ के आरम्भ में राजपूताना प्रान्त का सामूहिक विवरण छः प्रकरणों में दिया है, जिससे एक दृष्टि में ही सारे राजपूताना का ज्ञान हो जाता है। प्रथम प्रकरण में राजपूताना की स्थिति और विस्तार (नाम, स्थान, क्षेत्रफल, और सीमा) दूसरे में राजपूताना के राजवंश, तीसरे में राजपूतानें से मुसलमानों का सम्बन्ध, चौथे में राजपूताना और मराठे, पांचवे में राजपूताने में अंग्रेज शीर्गाक से संक्षिप्त ब्यौरेवार वर्णन दिया है। अगले प्रकरण में मेवाड, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ और शाहपुरा के गुहिल सिसोदिया राज्यों का विवरण दिया गया है, साथ ही करौली और जैसलमेर के यादव भाटी राज्यों का क्रमबद्ध ब्यौरेवार इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ हिन्दी में राजपूताना के प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ की पूर्ति करता है। मासिक पत्र क्षात्र धर्म (अजमेर से प्रकाशित) में इस ग्रन्थ के सन्दर्भ में लिखा गया। इसमें प्रत्येक राज्य का भौगोलिक व ऐतिहासिक वर्णन, प्रजा की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शिक्षा सम्बन्धी स्थिति बड़े सुन्दर ढंग से समझायी गयी है। यह केवल इतिहास ग्रन्थ ही नही वरन् राजपूताने का खासा गजेटियर है।

''**नागोरी, डॉ. एस.एल. एवं नागोरी, कान्ता, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास : प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक,**[28] मलिक एण्ड कम्पनी,जयपुर, 2010'' प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थान के प्रागैतिहासिक कालीन संस्कृति, राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास के पुरातत्त्व संबंधी स्रोत तथा प्रदेश की आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत यहाँ के व्यापार–वाणिज्य, उद्योग–धन्धे एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का वर्णन किया गया है। यहाँ के सांस्कृतिक जीवन का उल्लेख करते हुए स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत एवं नृत्यकला और लोक गीत तथा संगीत पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। इस कृति से यह पता चलता है कि मध्यकालीन राजस्थान में स्थापत्य कला एवं चित्रकला का

मुगल कला से किस प्रकार समन्वय हुआ। इस पुस्तक में राजस्थान के स्वतन्त्रता के इतिहास में जनजाति की भूमिका का भी वर्णन किया गया है। इनकी अधिक संख्या दक्षिण–पश्चिमी, पूर्वी व उत्तर–पूर्वी राजस्थान में है। सिरोही, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और उदयपुर के पर्वतीय भाग में इनकी जसंख्या लगभग 45 प्रतिशत है। ढूंढार में मीणों की बस्तियाँ हैं। हाडौती में सहेरिया जनजाति की है। जब प्राचीन परम्परा या उनके अधिकारों पर यदि कभी प्रहार होता है तो उनके विरोध का कोई ठिकाना नहीं रहता। देवी, भैरव और तन्त्रादिक मान्यताओं में विश्वास होने से साहसी होते हैं। भूत, प्रेत, और इनकी आराधना के माध्यम होते हैं। साधारण जीवन बिताने के कारण जनजाति के लोग भिन्न भी होते है। अपने देश एवं देशरक्षकों के लिए वह हर क्षण बलिदान के लिए तैयार रहते हैं। राजस्थान के इतिहास से स्पष्ट है कि यहाँ की शौर्य की उपलब्धियों में भीलों व मीणों का अपूर्व योगदान रहा है। इनके शास्त्रों में तीर कमान मुख्य है, जिनके प्रयोग में वे दक्ष माने जाते हैं।

"रेऊ, पण्डित विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास भाग–1,2,[29] राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर" प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भिक सर्गों में मेवाड़ के विभिन्न महाराणाओं जैसे बापा, कुम्भा, सँागा, प्रताप आदि शासकों की उपलब्धियों तथा युद्धों का वर्णन किया गया है। महाराणा प्रताप व अकबर के मध्य संघर्ष व महाराणा अमरसिंह के समय 1615 ई. की मेवाड़–मुगल सन्धि का भी इसमें उल्लेख मिलता है। महाराणा जगतसिंह के समय के निमार्ण कार्यों और उपलब्धियों के वर्णन के अतिरिक्त इस प्रशस्ति में महाराणा राजसिंह की टोंक, लालसोट, शाहपुरा, जहाजपुर आदि स्थानों की विजय तथा राजसमुद्र झील की नौ चौकियों की सुन्दर तक्षण–कला का वर्णन मिलता है। औरंगजेब के साथ हुए युद्ध व संधि, चारूमति के साथ विवाह तथा अन्य राजाओं के साथ राजसिंह के सम्बन्धों की जानकारी इससे प्राप्त होती है। यह अन्य महाकाव्यों के समान कवि की कल्पना नहीं है। इसमें सम्वतों के साथ ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण है, जो इतिहास के लिए बड़े उपयोगी हैं। उनके अनुसार

महाराणा राजसिंह के शिल्प सम्बन्धी कामों में सबसे अधिक महत्व कार्य राजसमुद्र तालाब का निर्माण है। इसमें राजस्थान के जगजागरण में किसानों का योगदान का भी जिक्र किया गया है।

''**शर्मा, डॉ. गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास**,[30] शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 2008'' प्रस्तुत पुस्तक में राजनीतिक उथल–पुथल, राज्य विस्तार आदि क्रमों के वणर्न के साथ–साथ विचारों की गतिविधियों तथा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की झांकियां को इस प्रकार संजोया गया है कि एक दीर्घकाल का दृश्य पाठकों के नेत्रों के सामने स्पष्ट हो सके। इसमें राजस्थान में हुये किसान आंदोलन के कारणों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। लोक साहित्य, लोक नृत्य तथा प्राचीन साहित्य का समावेश भी किया गया है। मूर्तिकला, चित्रकला, लेखनकला का भी उल्लेख किया गया है क्योंकि ये कलाएँ राजस्थान के आध्यात्मिक और सौन्दर्यात्मक गुणों के मूर्त रूप है। कालक्रम और घटनाक्रम को समझने में सुविधा हो, इस विचार से ग्रन्थ में पाद–टिप्पणियाँ भी दी गई है।

''**गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताना का इतिहास भाग–1,2**,[31] जोधपुर, 1937'' प्रस्तुत पुस्तक में लेखन ने अपने सांस्कृतिक व साहित्यिक दायरे को विस्तृत किया तो सार्वभौमिक लेखन की प्रवृति का प्रादुर्भाव हुआ । लेकिन अंग्रेज भारतीय इतिहास का वहीं पक्ष उजागर करते जिससे उनके साम्राज्य को लाभ हो, अतः ऐसे इतिहास से जनता प्रायः अनुपस्थित ही रहती थी और आम लोगों के तौर–तरीकों, जीवन–व्यवहार, रहन–सहन, घर–द्वार, तीज–त्यौहार, तथा सोच–विचार से पाठक अनभिज्ञ ही रह जाता हैं। इस तरह सामान्य जन जीवन से रिक्त इतिहास को अपूर्ण ही होगा, और इसी धरातल पर इतिहास लिखने की तीसरी प्रवृत्ति उदित होती हैं। ज्यों–ज्यों भारतीय इतिहासकार खोज की सीमा पार कर चिंतन विश्लेषण की ओर बढ़ रहा है, ऐसी स्थिति में मानव सभ्यता की विकास प्रक्रिया के लिए जिम्मेदार तत्वों की तलाश में मध्यमवर्गीय चेतना का इतिहासकार भी उत्पादन और वर्ग संघर्ष के महत्व को समझता जा रहा है और सहीं प्रवृति–द्वन्द्वात्मक व्याख्या प्रकृति से मानव समाज

तक हर क्षेत्र में वैज्ञानिक सिद्ध हो चुकी है। इसी लेखन प्रवृति में आम इतिहास को आदमी, उसके सामाजिक–आर्थिक अस्तीत्व और संघर्ष से जोड़कर देखने की उत्साहवर्धक परम्परा शुरु हो चुकी हैं।

इस प्रकार शोध विषय पर उपलब्ध साहित्यिक ग्रन्थों का अध्ययन मनन करने से स्पष्ट होता है कि गाँधीजी के राजनीतिक एवं रचनात्मक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी–राजस्थान के विशेष संदर्भ में (1919 ई.–1948 ई.) राजनैतिक जनजागृति और महिलाओं के भागीदारी के फलस्वरूप महिला जागरण में महात्मा गांधी के विचारों ने उत्प्रेरक का काम किया। गांधी जी चाहते थे कि महिला शक्ति का उपयोग देश सेवा के लिए हो। उनके आगमन से भारतीय महिलाओं में नव–जीवन का संचार हो गया। उन्होंने सोई हुई महिला शक्ति को न केवल जगाया बल्कि उनके गौरव और महत्व को समझा और समझाया। गांधी जी ने उनकी आत्मा को सच्चे अर्थों में पहचाना। वे महिलाओं को त्याग, सहनशीलता, विनम्रता, श्रद्धा और विवेक की प्रतिमूर्ति मानते थे। उन्होंने जगह–जगह घूमकर महिलाओं तक स्वतंत्रता, समानता और नवजागृति का संदेश पहुँचाया। साथ ही उनका भारतीय स्वरूप भी अक्षुण्ण रखा। उन्होंने महिलाओं को उनके अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया तथा उनके आत्मविश्वास को प्रबल किया।

संदर्भ

1 कुमार, प्रभात ''स्वतंत्रता संग्राम और गांधी का सत्याग्रह'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1994
2 कुमार, हरीश ''सामाजिक राजनैतिक परिवर्तन'' अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस प्रकाशक, नई दिल्ली, 2006
3 गांधी, महात्मा ''मेरे सपनों का भारत'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2008
4 कौशिक, आशा ''गांधी नयी सदी के लिए'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं दिल्ली, 2000
5 सिंह, वी.एन. एवं सिंह, जनमेजय ''भारत में सामाजिक आन्दोलन'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं दिल्ली, 2005
6 शर्मा, वीरेन्द्र ''भारत के पुनः निर्माण में भारत का योगदान'' श्री पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1984
7 सिंह, रामजी, ''गांधी दर्शन मीमांसा'' बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973
8 शर्मा, ब्रह्मदत्त, ''गांधी एवं भारतीय राष्ट्रवाद'' रचना प्रकाशन, जयपुर, 2007
9 रत्तू, कृष्ण कुमार एवं रत्तू, कमला ''समग्र गांधी दर्शन, गांधी चिन्तन और वर्तमान प्रसंग'' आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2009
10 कालेलकर, काकासाहब, जमनालाल बजाज की डायरी, जमनालाल बजाज सेवा ट्रस्ट, वर्धा, 1966
11 राकेश, एम.ए., श्री जवाहिर लाल जैन (जीवन झांकी), प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2008
12 विद्यार्थी, रामेश्वर, सिद्धराज ढड्ढा (संस्मरण एवं पत्र व्यवहार), प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2009
13 शर्मा, श्री प्रकाश, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा, राजस्थान स्वर्ण जयन्ती समारोह समिति, जयपुर, 2002
14. डॉ. पेमाराम, एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1986
15. कपिल, प्रो. एफ.के., राजपूताना : जन जागरण से एकीकरण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014
16. कपिल, प्रो. एफ.के., राजपूताना : जन जागरण से एकीकरण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014
17. चौधरी, डॉ. सुरेश कुमार, राजस्थान में प्रतिनिधि संस्थाओं का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014
18. डॉ. पेमाराम, सांस्कृतिक राजस्थान : इतिहास के विविध आयाम, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014
19. पानगडिया, बी.एल, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1985
20. जोशी, सुमनरेश, राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, जयपुर, 1973
21. ठाकुर, देशराज, रियासती भारत के जाट जन सेवक, भरतपुर, 1949
22. शर्मा, डॉ. बृजकिशोर, सामन्तवाद एवं किसान संघर्ष, जयपुर, 1992
23. गहलोत, हर सुखवीरसिंह, राजस्थान स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, जयपुर, 1992
24. व्यास, डॉ. रामप्रसाद आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास खण्ड–1,2, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1998
25. पहरिहार, डॉ. विनीता, राजस्थान में प्रजामण्डल आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010

26. टॉड, कर्नल जेम्स, एनाल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–1,2, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2008
27. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, राजपूताने का इतिहास, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1937
28. नागोरी, डॉ. एस.एल. एवं नागोरी, कान्ता, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास : प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक, मलिक एण्ड कम्पनी,जयपुर, 2010
29. रेऊ, पण्डित विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास भाग–1,2, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
30. शर्मा, डॉ. गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 2008
31. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताना का इतिहास भाग–1,2, जोधपुर, 1937

द्वितीय अध्याय
स्त्रियों की स्थिति के विषय में गाँधीजी के विचार

19वीं शताब्दी में समाज सुधार आंदोलन का प्रादुर्भाव हुआ। यह आंदोलन सामाजिक स्थिति में सुधार, सामाजिक जन–जागृति, महिला उत्थान, शिक्षा का प्रसार, सामाजिक समानता एवं महिला का सम्पूर्ण विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। 19वीं शताब्दी में हुये समाज सुधार आन्दोलन के अनेक प्रणेता रहे थे। सर्वप्रथम भारतीय जनजीवन एवं परिस्थितियों में विद्यमान विषमकारी वातावरण की ओर राजाराम मोहनराय का ध्यान गया। इन्होंने 1828 में ब्रह्म–समाज की स्थापना की जिसके द्वारा समाज सुधार के क्षेत्र में सतीप्रथा के लिए कानून बनवाया एवं महिलाओं के सामाजिक समानता एवं शैक्षिक अधिकारों का समर्थन किया।

समाज सुधार आंदोलन में आर्य समाज आन्दोलन केवल रूप में ही पुनः उत्थान था न कि तत्त्वों में, 1875 में इन्होंने बम्बई में आर्य समाज एवं 1877 में लाहौर आर्य समाज संगठन की स्थापना की। आर्य समाज आन्दोलन का सबसे अधिक प्रभाव शिक्षा एवं सामाजिक सुधार क्षेत्र में देखने को मिला। आर्य समाज के सामाजिक विचारों में अन्य बातों के अतिरिक्त जिन कार्यों पर अत्यधिक बल दिया। वे भी स्त्री–पुरुषों की समानता, समाज में सामाजिक समानता एवं मानवतावादी मूल्यों से सम्बन्धित रहा।

गाँधीजी स्त्रियों के अधिकार के बारे में लिखते हैं कि ''पुरूष नारी जाति पर जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें देख देखकर व्यग्र होने के लिए मेरा लड़की होना आवश्यक नहीं है। अत्याचारों की सूची में विरासत सम्बंधी कानून को मैं सबसे आखिरी दर्जे की चीज मानता हूं। शारदा बिल जिस बुराई को दूर करने का प्रयत्न करता है, वह विरासत– सम्बन्धी कानून से व्यंजित होने वाली बुराई से कहीं अधिक भयंकर और गंभीर है। लेकिन स्त्रियों के अधिकार के बारे में मैं जरा भी झुकने को तैयार नहीं हूं। मेरी राय में स्त्री

पर ऐसी किसी कानूनी निर्योग्यता का बोझ नहीं होना चाहिए जिससे पुरूष मुक्त है। मैं लड़के और लड़की के प्रति हर तरह से भेदभाव रहित समान व्यवहार करना चाहूंगा। जैसे–जैसे स्त्री जाति को शिक्षा द्वारा अपनी शक्ति का भान होता जायेगा, जैसा कि होना भी चाहिए, वैसे–वैसे उसके साथ जो असमान व्यवहार आज किया जाता है, उसका वह स्वभावतः अधिकाधिक उग्र विरोध करेगी। यद्यपि मैं इस बात का हमेशा समर्थन करूंगा कि स्त्री जाति पर से सभी कानूनी निर्योग्यताएं हटा दी जानी चाहिए। मैं यह भी चाहूंगा कि भारत की पढ़ी–लिखी, सुशिक्षित बहने इस व्याधि के मूल कारण को मिटाने के लिए प्रयत्न करें। स्त्री त्याग और तपस्या की साक्षात् मूर्ति है और सार्वजनिक जीवन में उसके प्रवेश में उसमें पवित्रता आनी चाहिए। युगों से चली आ रही पुरानी बुराईयों को खोज निकालना और उन्हें नष्ट करना जागरूक स्त्रियों का ही विशेषाधिकार होना चाहिए।''[1]

आधुनिक भारत में गाँधीजी के पहले ही कुछ सुधारकों के व्यक्तिगत प्रयासों तथा कई सुधार संगठनों द्वारा किये गए कार्यों के परिणामस्वरूप स्त्रियों के उद्धार की समस्या के प्रति पर्याप्त जनचेतना उत्पन्न हो चुकी थी। गाँधीजी ने इसे नयी स्फूर्ति एवं उत्साह प्रदान किया। स्त्रियों के संबंध में गाधींजी के दृष्टिकोण को उनके सामान्य जीवन दर्शन के संदर्भ में रख कर ही ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। अहिंसा और सत्य पर आधारित इस जीवन दर्शन में किसी प्रकार के भेदभाव अथवा ऊँच–नीच की भावना के लिए स्थान नहीं है।[2]

गांधीजी महिलाओं के पुनरूत्थान के बहुत बड़े हिमायती थे। उनके चरखा, नशाबन्दी, ग्रामोत्थान, तथा हरिजनों और महिलाओं के उत्थान के कार्यक्रमों ने राजनीतिक दासता के विरूद्ध संघर्ष के लिये एक मजबूत आधार तैयार किया। इस संघर्ष में उन्होंने महिलाओं को पुरूषों के बराबर का हिस्सेदार बनाया। किसी भी रूढ़िवादी समाज में महिलाओं के उद्धार का काम

कोई सरल नहीं हुआ करता। महात्मा गांधी ने बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा तथा विधवाओं के प्रति होने वाले क्रूर अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाई।[3]

नारी की दयनीय स्थिति गाँधीजी को बुरी तरह खली। उन्होंने देखा की नारी में आत्मबलिदान की, त्याग की, सहिष्णुता की, कष्ट–सहन की क्षमता थी, परंतु पुरूषों ने उसे दासी बनाकर उसकी उपेक्षा और अवहेलना की हद कर दी। साहस, शूरता और वीरता की तो बात ही क्या बेचारी आत्मरक्षा में भी समर्थ नहीं थी। उनका मानना था कि नारी पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए जो पुरूषों पर ना लगाया हो। लड़का और लड़की में कोई भेद नहीं होना चाहिए। उनके अनुसार जब तक नारी इस शोचनीय स्थिति में पड़ी रहेगी तब तक न तो नारी का उद्धार होगा और न कल्याण होगा और सारे समाज की स्थिति सुधरेगी न देश या राष्ट्र की।[4]

वे यह विश्वास करते थे कि व्यक्ति अपने स्वधर्म का पालन पर परमपद प्राप्त कर सकता था। इसलिए जहां भी जिस वृत्ति में रहे हमें अपना स्वधर्म निभाना चाहिए। प्रकृति ने परिवार के पालन एवं रक्षण के लिए पुरूष को समर्थ बनाया। स्त्री प्रकृति से ही परिवार की माता के रूप में बच्चों का लालन– पालन करने तथा गृहस्थी का गुरूत्तर भार उठाने के योग्य बनी है। अतः स्त्री और पुरूष एक दूसरे के पूरक है। दोनों के परस्पर सक्रिय सहयोग के बिना दोनों का अस्तित्व असंभव है। मानव–सृष्टि एवं विकास के लिए दोनों का महत्व बिलकुल बराबर है।[5]

अपने पत्र यंग इंडिया में उन्होंने लिखा, 'पुरूषों द्वारा स्वनिर्मित सम्पूर्ण बुराईयों में सबसे घृणित, विभत्स व विकृत बुराई है। उसके द्वारा मानवता के आधे हिस्से (जो कि मेरे लिए स्त्री जाति है न कि कमजोर व पिछड़ी जाति) को उसके न्यायसंगत अधिकार से वंचित करना। यदि मैं स्त्री रूप में पैदा होता तो मैं पुरूषों द्वारा थोपें गए किसी भी अन्याय का जमकर विरोध करता तथा उनके खिलाफ विद्रोह का झण्डा बुलंद करता।'[6]

गाँधीजी ने विवेकहीन परम्पराओं और अन्धविश्वासों पर प्रहार करते हुए दृढ़तापूर्वक यह घोषणा की कि जब तक भारतीय समाज में इन कुरीतियों का विरोध कर समानता को स्वीकार नहीं किया जाएगा तब तक भारत का उत्थान सम्भव नहीं है। गाँधीजी ने घोषित किया कि व्यक्ति को आत्मोन्नति के प्रयत्न करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये अपितु सबकी उन्नति को ही अपनी उन्नति समझना चाहिये।

19वीं शताब्दी में भारत में गाँधीजी ने अनेक सामाजिक सुधार कार्यक्रम किये। उन्होंने भारतीय समाज के इस पक्ष से कि मुझे मत छुओ की बहुत भर्त्सना की। उनके अनुसार भारतीय समाज समानता के सिद्धान्त से अपरिचित है। गाँधीजी ने अपने लेखों द्वारा तथा अपने भाषणों से नई पीढ़ी में एक नव उत्थान की भावना का विकास किया। भारतीय मुस्लिम समाज में 18वीं शताब्दी में हुये ''बहावी आन्दोलन'' एक सामाजिक सुधार आन्दोलन एवं पुर्नजागरणवादी आन्दोलन था। वली अल्लाह 18वीं शताब्दी के प्रथम मुस्लिम नेता थे जिन्होंने भारतीय मुसलमानों में हुये सामाजिक संकुचन और सामाजिक दरिद्रता पर चिन्ता जताई। उन्होंने मुसलमानों के रीति–रिवाजों तथा मान्यताओं में आई कुरीतियों की ओर ध्यान दिलाया एवं उनमें व्यापक सुधार के प्रयास किया।

स्त्रियों की दुरावस्था का प्रमुख कारण उनमें व्याप्त अज्ञान तथा शिक्षा का अभाव था। इसकी जड़ में पर्दा प्रथा थी जो महिलाओं को घर की चार दीवारी के अंदर बांधे रखती थी। गाँधीजी इसे बड़ा लचर तर्क मानते थे कि पर्दा स्त्रियों की चारित्रिक पवित्रता बनाये रखने में सहायक है।[7] पर्दे की कुप्रथा पर अपने विचार रखते हुए वे लिखते हैं कि ''कोई बात प्राचीन है इसलिए वह अच्छी है ऐसा मानना बहुत गलत है। यदि प्राचीन सब अच्छा ही होता तो पाप कम प्राचीन नहीं है। परन्तु चाहे जितना भी प्राचीन हो पाप त्याज्य ही रहेगा। उसी तरह पर्दा कितना ही प्राचीन हो आज बुद्धि उसको

कबुल नहीं कर सकती। पर्दे से होने वाली हानि स्वयं सिद्ध है। जैसा की बहुत सी बातों का किया जाता है, उसी प्रकार पर्दे का कोई आदर्श अर्थ करके उसका समर्थन नहीं करना चाहिए। आज पर्दा–प्रथा जिस हालत में है, वर्तमान उसका समर्थन करना असम्भव है।''[8] आगे वे कहते हैंः– ''सच्ची बात तो यह है कि पर्दा कोई बाह्य वस्तु नहीं है, वह एक आन्तरिक वस्तु है। बाह्य पर्दा करने वाली कितनी ही स्त्रियां निर्लज्ज पाई जाती है। जो बाह्य रूप से पर्दा नहीं करती, परन्तु जिसने आन्तरिक लज्जा कभी नहीं छोड़ी है, वह स्त्री पूजनीय है। ऐसी स्त्रियां आज जगत में मौजूद हैं। जड़ता के वशीभूत होकर हम सभी प्राचीन कुप्रथाओं का समर्थन करने को तत्पर हो जाते हैं। हमारी यह जड़ता हमारी उन्नति को रोकती है। यही जड़ता स्वराज्य की दिशा में हमारी प्रगति में रूकावट डालती है।[9]

जीवन के प्रति आधुनिक शिक्षा, विवेक, दया और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने के फलस्वरूप भारत में सामाजिक सुधार आन्दोलन आरम्भ हुआ। समाज सुधार का दूसरा प्रथम केन्द्र भारतीय समाज में जाति व्यवस्था थी। जिसमें शूद्रों और विशेषकर अछूतों के प्रति बुरा व्यवहार किया जाता था। इसी प्रकार एक अन्य प्रथा शिशुवध (बालिका–वध) जो विशेषतः राजपूतों एवं बंगालियों में अधिक प्रचलित थी। इस प्रथा में बालिकाओं को आर्थिक भार मानकर उसकी शैशवकाल में ही हत्या कर दी जाती थी। भारतीय और अंग्रेज प्रबुद्धवादियों ने इस घृणित प्रथा की बहुत आलोचना तथा निन्दा की और अन्त में 1795 में बंगाल नियम 21 और 1804 में नियम 3 से शिशु हत्या को भी साधारण हत्या के बराबर मान लिया गया। इसके पश्चात् 1870 में कुछ और कानून भी इन्हीं नियमों के पालन के लिए बनाए गये।

गाँधीजी ने समाज और देश को रसातल में पहुंचाने वाले बाल विवाह को विवाह मानने से इंकार किया। बाल विवाह के समर्थन में 'यंग इंडिया' के एक पाठक द्वारा लिखे गये पत्र का जवाब देते हुए गाँधीजी ने लिखा है कि 'लड़कियों के बाल विवाह की कम उम्र के विवाह की नहीं, क्योंकि इसमें तो

25 वर्ष के पूर्व किया गया हर विवाह आता है। आज्ञा देने वाले ग्रन्थ भी प्रामाणिक पाये जायें, तो हमें चाहिए कि हम प्रत्यक्ष अनुभव और वैज्ञानिक ज्ञान को दृष्टि में रखकर उनका त्याग कर दें। मैं लेखक के इस कथन की सच्चाई पर सन्देह प्रकट करता हूं कि लड़कियों के बाल विवाह की प्रथा हिन्दू समाज में सर्वत्र प्रचलित है। अगर यह बात सच है कि लाखों बालिकाएं बचपन में ही विवाहिता हो जाती है यानि पत्नियों की तरह रहने लगती है तो मुझे बहुत दुख होगा। यदि हिन्दू समाज में लाखों कन्याएं ग्यारह वर्ष की अवस्था में पति–समागम करतीं होती तो हिन्दू जाति कभी की नष्ट हो गई होती।''[10]

भारतीय नारी का जीवन जिन विविध विकारों से संकटग्रस्त था, उसमें सर्वाधिक गम्भीर विकार विधवाओं की स्थिति से सम्बन्धित था। यह समस्या कन्याओं की अल्प आयु में विवाह कर दिये जाने की परिपाटी से जुड़ी थी। कच्ची उम्र में ही लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था। जबकि वह विवाह का अर्थ तक समझने में असमर्थ थी। सदियों से विधवाएं नारकीय जीवन जी रही थीं, जिसमें अपमान और पीड़ा के अतिरिक्त कुछ नहीं था। यह समस्या इतनी विकट थी कि सभी समाज सुधारकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने विधवाओं के पुनर्विवाह का प्रतिपादन किया तथा जनचेतना के परिष्कार द्वारा इस स्थिति को सुधारने का प्रयास किया।[11]

गाँधीजी का सामान्य रूप में विधवाओं के पुनर्विवाह पर आग्रह नहीं था, प्रत्युत उन्होंने बाल विधवाओं की समस्या अपना ध्यान केन्द्रित किया। इन्हें वे ''दमित मानवता'' का जीता जागता प्रतीक कहते थे। उनके विचार में केवल उसी विवाह को पवित्र कहा जा सकता है जिसमें विवाह के समय कन्या पूर्ण विकसित हो। उन्होंने कहा कि ''मुझे बाल विवाह से घोर घृणा है। बाल विधवा को देखकर मैं कांप उठता हूं और उस समय क्रोध से अभिभूत हो जाता हूं जब कोई व्यक्ति पत्नी की मृत्यु होते ही सर्वदा उदासीन भाव से दूसरा विवाह कर लेता है। मुझे उन माता–पिताओं पर क्षोभ होता है जो उन्हें

केवल किसी कमाऊ व्यक्ति से विवाह कर देने के लिए पालते हैं। लडकी के विधवा हो जाने पर इन माता–पिताओं को उसका पुनर्विवाह कर अपने पाप का प्रायश्चित करना चाहिए।

सती प्रथा और शिशु हत्या को बन्द करने से ही स्त्रियों की अवस्था नहीं सुधरी अपितु उनके लिए विधवा–विवाह की अनुमति एवं विवाह की आयु बढ़ाने के लिए भी कार्य किया। इस क्षेत्र में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 से विधवा विवाह को वैध मान लिया गया और उस विधवा से उत्पन्न बालक को भी वैध मान लिया गया। 1899 में एक विधवा आश्रम की स्थापना की गई। 1906 में बम्बई में भारतीय स्त्री विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। यद्यपि 1872 में एक कानून जिसे प्रायः सिविल मैरिज एक्ट कहते हैं की व्यवस्था की गई। 14 वर्ष से कम आयु की कन्याओं तथा 18 वर्ष से कम आयु की लड़कों का विवाह वर्जित कर दिया गया और बहुपत्नि प्रथा भी समाप्त कर दी गई।

19वीं शताब्दी में हिन्दुओं में एक मनगढ़न्त जनश्रुति प्रचलित थी कि हिन्दूशास्त्रों में स्त्रियों को शिक्षा की अनुमति नहीं है और शिक्षित स्त्रियों को देवता लोग विधवा का दण्ड देते हैं। ईसाई धर्म प्रचारक उनका उद्देश्य चाहे कुछ भी हो, वे पहले लोग थे जिन्होंने स्त्रियों की शिक्षा के लिए 1819 में एक कलकत्ता तरूण स्त्री सभा की स्थापना की। गाँधीजी ने स्त्री शिक्षा को एक सही कदम ठहराया, उनके अनुसार समाज का विकास तभी संभव है जब सभी स्त्रियाँ शिक्षित हों। बम्बई में एलफिस्टन संस्थान के छात्रों ने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक कार्य किये। 1854 के चार्ल्स वुड डिस्पैच में स्त्रियों की शिक्षा के प्रति ध्यान देने पर बल दिया गया।

इस प्रकार 18–19वीं शताब्दी से ही स्त्रियों की शिक्षा, सामाजिक समानता मानववादी मूल्यों आदि पर निरन्तर प्रयास होते रहे।

स्त्रियों के विषय में गाँधीजी का सामान्य दृष्टिकोण

स्त्रियों के सम्बन्ध में गाँधीजी के दृष्टिकोण को उनके सामान्य जीवन दर्शन के सम्बन्ध में रखकर ही ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। अहिंसा और सत्य पर आधारित इस जीवन दर्शन में किसी प्रकार के भेदभाव की भावना के लिए स्थान नहीं है। गाँधीजी की दृष्टि में प्रत्येक सामाजिक स्थिति का समान महत्त्व है। केवल स्त्री होना मात्र हीनता का द्योतक नहीं। ''बॉम्बे भागिनी समाज'' की वार्षिक गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए गाँधीजी ने कहा कि ''स्त्री पुरुष की सहभागिनी है और वह समान बौद्धिक क्षमताओं से सम्पन्न है उसको मनुष्य के सभी कार्य–व्यापारों में भाग लेने का अधिकार है तथा वह भी उस स्वतन्त्रता एवं समानता की अधिकारणी है जो पुरुषों से प्राप्त हैं।'' उनका कहना था कि यदि हिन्दू शास्त्रों में कन्या की तुलना में पुत्र जन्म को अधिक श्रेयस्कर माना गया तो यह ऐतिहासिक कारणों के नाते है। अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अपनी धारणा को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए गाँधीजी ने कहा कि मैं पुत्र एवं पुत्री में कोई भेद नहीं करता मेरी दृष्टि में इस प्रकार का भेद करना द्वेष बुद्धि का परिचायक है और गलत है। पुत्र तथा कन्या के जन्म का समान रूपेण स्वागत किया जाना चाहिए। सही अर्थों में अद्वैतवादी भावना का संप्रकाशन करते हुए उन्होंने कहा कि दोनों में उसी आत्मा का वास है, दोनों एक ही जीवन को जीते हैं और दोनों की भावनाऐं समान हैं। वे स्त्री एवं पुरुष को एक–दूसरे का पूरक मानते थे उनके विचारों से दोनों ही एक–दूसरे की सक्रिय सहायता की अपेक्षा रखते हैं।

विधवा–विवाह के विषय में गाँधीजी के दृष्टिकोण को इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि गाँधीजी स्वयं आवश्यक रूप से विधवाओं के विवाह के समर्थक नहीं थे। उनका संघर्ष उस व्यवस्था के विरूद्ध था जिसमें बाल विधवाओं का जन्म होता था, जिन्हें वे हिन्दू धर्म का कलंक मानते थे। वस्तुतः उनका संघर्ष विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रति अभिप्रेत न होकर बाल विवाह के उन्मूलन के प्रति केन्द्रित था।[12]

दहेज प्रथा भी गाँधीजी के आक्रमण का निशाना थी। उनके अनुसार लड़कियों के लिए यह बेहतर है कि वे आजीवन अविवाहित रह जाएं, न की एक ऐसे व्यक्ति से शादी कर लें जो दहेज मांग कर उनका अपमान करता हो। जिन शादियों में दहेज मांगा जाए उनमें प्यार हो ही नहीं सकता।[13] उनका कथन था कि इस प्रथा का जाति प्रथा से घनिष्ठ संबन्ध है जब तक चयन का क्षेत्र किसी जाति–विशेष के कुछ सौ युवा लड़के अथवा लड़कियों तक सीमित रहेगा, दहेज प्रथा कायम रहेगी, भले ही उसके विरोध में कितनी ही आवाज उठाइ जाए। अगर इस बुराई का उन्मूलन करना है तो लड़के–लड़कियों या उनके माता–पिताओं को जाति के बंधन तोड़ने होंगे। इसके लिए हमारी शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो राष्ट्र की युवा पीढ़ी की मानसिकता में क्रांति ला दें।[14]

दहेज की प्रथा के सम्बन्ध में गाँधीजी लिखते हैं कि, ''इसमें सन्देह नहीं कि यह एक हृदयहीन रिवाज है। मगर जहां तक मैं जानता हूं, जन–साधारण में दहेज का प्रचलन नहीं है। मध्यम वर्ग के लोगों में ही यह रिवाज पाया जाता है, जो भारत के विशाल जन–समुद्र में बिन्दु मात्र है। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं कि चुंकि दहेज की प्रथा अपेक्षाकृत बहुत थोड़े से लोगों तक सीमित है इसलिए हम उस पर कोई ध्यान न दें। यह प्रथा तो नष्ट होनी ही चाहिए।

विवाह खरीद–फरोख्त की चीज तो रहनी ही नहीं चाहिए। इसलिये इस बुराई को कम करने के लिए जो भी किया जा सके वह जरूर किया जाये। पर यह साफ है कि यह तथा दूसरी अनेक बुराईयां मेरी समझ में, तभी दूर की जा सकती है, जब देश की हालतों के मुताबिक, जो तेजी से बदलती जा रही है, लड़कों और लड़कियों को शिक्षा दी जाये। मूल्य या महत्व तो उसी शिक्षा का है जो विद्यार्थी के मस्तिष्क को इस तरह विकसित कर दे कि वह मानव–जीवन की हर तरह की समस्याओं को ठीक–ठीक हल कर सकने में सक्षम हो सके।''[15]

इस प्रसंग में हिन्दू शास्त्रों को लेकर उस दुविधा एवं असमंजस की स्थिति का परीक्षण रोचक होगा जो गाँधीजी के समक्ष था। शास्त्रों के प्रति गाँधीजी के मन में अटूट सम्मान था और वे सामान्यतः उनका अतिक्रमण नहीं चाहते थे। किन्तु उनमें से कुछ स्त्रियों के प्रति निन्दापूर्ण कथन एवं हेयभाव का प्रदर्शन मिलता है। यद्यपि गाँधीजी को इन शास्त्रों में अन्तर व्याप्त विवेक में पूरी आस्था थी किन्तु इसके साथ ही उनकी यह मान्यता थी कि किसी विचार एवं कार्य को तर्क व बुद्धि की कसौटी पर खरा उतरने पर ही स्वीकार करना चाहिए। वे चाहते थे कि शास्त्रों को उनकी मौलिक भावना को ध्यान में रखकर पढ़ा जाये और उनमें विरोधी कथन मिलने पर विवेक के आधार पर अभिप्रेत सिद्धान्त को ग्रहण किया जाए। उन्होंने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि स्मृतियों में कई अभिकथन स्त्रियों के प्रति सम्मान भावना का संप्रकाशन करते हैं। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि शास्त्रों के नाम पर जो कुछ छपा है उसको ईश्वरीय वाक्य के रूप में स्वीकार करना आवश्यक नहीं है।

गाँधीजी एक ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे जिसकी नींव न्याय, समानता व शान्ति पर आधारित हो। इस महती उद्देश्य की प्राप्ति हेतु यह परमावश्यक था कि समाज के दो आधारभूत अंगों–पुरूष व स्त्री के बीच समानता के सभी अंग सुनिश्चित व सुनिर्धारित हो। गाँधीजी केवल ऐसे विचार प्रकट करके ही नहीं रह गये। उन्होंने उसे अमलीजामा देने का निश्चय किया।[16]

गाँधीजी की स्वराज की सबसे महत्वपूर्ण व्याख्याओं में से एक का संबंध महिला व महिला मुक्ति से है। वेश्यावृत्ति को 'एक सामाजिक बीमारी', बताते हुए उन्होंने जोर देते हुए कहा कि यदि कोई इन महिलाओं की सहायता के लिए आगे नहीं आता तो इन्हें खुद परिवर्तन का वाहक बनना चाहिए तथा पुरूषों के हाथों अपने शोषण के खिलाफ संघर्ष करना चाहिए। इसी प्रकार 'देवदासी' प्रथा के खिलाफ अपना रोष प्रकट करते हुए। उन्होंने

इस प्रथा को 'नैतिक कोढ़' तथा 'ईश्वर की अवमानना' के रूप में चिहिन्त किया।[17]

इसी तरह तलाक प्रथा को भी सामाजिक बुराई मानते हुए गाँधीजी कहते हैं, ''जो स्त्री नरम मिजाज की है और विरोध नहीं कर सकती या विरोध करने को तैयार भी नहीं होती, तलाक की सुविधा अन्यायी पति से उसका कोई बचाव नहीं करती। इस तरह की ज्यादतियों का ईलाज, कानून नहीं, बल्कि स्त्रियों की सच्ची शिक्षा है और पतियों की तरफ से होने वाले इस तरह के अमानुषिक बरताव के खिलाफ लोकमत तैयार करना है। इसलिये पत्नी चाहे तो विवाह बंधन तोड़े बिना पति के घर से अलग रह सकती है और यह समझ सकती है कि मेरा विवाह ही नहीं हुआ। अलबत्ता, हिन्दू पत्नी को तलाक तो नहीं मिल सकता, मगर दो और कानूनी उपाय हैं। एक है मामूली मारपीट के अपराध में पति को सजा दिलाना और दूसरा है उससे जीविका का खर्च वसूल करना। अनुभव मुझे बताता है कि सब मामलों में नहीं तो ज्यादातर यह ईलाज बिलकुल बेकार है। इससे सदाचारिणी स्त्री को कोई राहत नहीं मिलती और पति के सुधार का सवाल असंभव नहीं तो कठिन जरूर बन जाता है। क्योंकि अन्त में तो समाज का और उससे भी ज्यादा पत्नी का लक्ष्य पति का सुधार करना ही होना चाहिए।''[18]

प्राचीनकालीन समाज की आदर्श व्यवस्था से चमत्कृत दयानन्द ने गाँधीजी से पूर्व ''वेदों की ओर लौटने'' का नाम दिया था। दयानन्द ने स्त्रियों को भी वेदाध्ययन तथा यज्ञ सम्पादन का अधिकारी बताया। यही नहीं वेदों की पूर्ण प्रामाणिकता में विश्वास रखने के कारण उन्होंने नियोग प्रथा को भी उचित ठहराया। इसके विपरीत अन्य समाज सुधारकों ने भारतीय परम्परा के पूर्ण अनुपालन पर आग्रह नहीं था। लेकिन फिर भी गाँधीजी उन सुधारकों की श्रेणी में आते हैं जिनके प्रतिमान पाश्चात्य न होकर विशुद्ध रूपेण भारतीय है। गाँधीजी के मन में भारतीय आदर्शों के प्रति बड़ा आदर भाव था और वे भारतीय समाज में इन आदर्शों के अनुरूप ही परिवर्तन लाने के पक्षधर थे।

उन्होंने कई अवसरों पर यह कहा कि वे सीता व द्रौपदी को स्त्रीत्व का आदर्श निरूपित करते हैं। भारतीय नारी के लिए वे पश्चिम के अन्धानुकरण के सर्वथा विरोधी थे। किन्त इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे भारतीय कन्याओं द्वारा आधुनिक शिक्षा प्राप्त किए जाने के विरोध में थे। अथवा उनके मन में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त स्त्रियों के प्रति कोई भी दुर्भावना नहीं थी। वस्तुतः इस प्रसंग में उनका संकल्पना के अन्तर्गत आग्रह नारी जाति के सार्वभौमिक एवं वांछनीय गुणों पर थी न कि केवल उनके अधिकारों को सूचीबद्ध करने वाले किसी प्रपत्र की प्रस्तुति पर। वे उन लड़कियों के आलोचक थे जो बिना किसी उद्देश्य के साहसिकता प्रदर्शित करने में विश्वास करती थी। वे केवल पुरुषों का ध्यान आकर्षित करने के लिए उत्तेजक वस्त्र–परिधान धारण करती है। किन्तु उन्होंने स्पष्ट किया कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त सभी लड़कियाँ ऐसी नहीं हैं।

यह स्पष्ट है कि समाज सुधारकों में गाँधीजी की स्थिति विशिष्ट प्रकार की थी और उन्हें किसी अन्य सुधारक के साथ श्रेणीबद्ध नहीं किया जा सकता। उनके विचारों की जड़े भारतीय परम्परा में गहरी जमी हुई थी। वे हिन्दू शास्त्रों में आस्था रखते थे तथापि वे सांस्कृतिक, पुनरूत्थानवाद के अनुयायी भी नहीं थे उन्होंने भारतीय नारी को हीन एवं दुःखपूर्ण स्थिति से उभरकर पुरुषों के साथ समानता की स्थिति प्राप्त करने, किन्तु साथ ही वह यह भी नहीं चाहते थे कि भारतीय नारी पाश्चात्य नारी की प्रतिरूप मात्र बनकर रह जाऐं। इस स्थिति में सुधार तथा परिष्कार के लिए उन्होंने शास्त्रों में समर्थन खोजा एवं उन्हें उनमें यह प्राप्त भी हुआ। लेकिन किसी सन्दर्भ में उनमें परम्परा विरोधी बातें मिलने पर दुविधा की स्थिति उत्पन्न होने पर उन्होंने तर्क बुद्धि को अपनी अन्तःचेतना का प्रहरी नियुक्त किया। उनके अनुसार शास्त्रीय कथन की प्रामाणिकता इस तथ्य विशेष पर निर्भर करती है कि वह धर्म तथा नैतिकता की मूल भावना से संगत है अथवा नहीं।

भारतीय नारी का जीवन जिन विविध विकारों से संकट ग्रस्त था उनमें सर्वाधिक गम्भीर विकार भारतीय समाज का विधवाओं के प्रगति दृष्टिकोण से संबंध था। यह समस्या कन्याओं के अल्प आयु में विवाह कर दिए जाने की परिपाटी से गहरी जुड़ी थी। कच्ची उम्र में ही लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था, जबकि वे विवाह का अर्थ ही समझ सकने में असमर्थ थीं। सदियों से विधवाऐं नारकीय जीवन जी रही थीं जिसमें अपमान और पीड़ा के अतिरिक्त कुछ नहीं था। यह समस्या इतनी विकट और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए इतनी दूषित हो चली थी कि सभी समाज सुधारकों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने उनके पुनर्विवाह के प्रतिपादन तथा जनचेतना के परिष्कार द्वारा इस स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। गाँधीजी का सामान्य रूप में विधवाओं के पुनर्विवाह पर आग्रह नहीं था। प्रत्युत उन्होंने बाल–विधवाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इन्हें वे 'दम्भित मानवता' का जीता जागता रूप प्रतीक मानते थे। उनके विचार में केवल उसी विवाह को पवित्र कहा जा सकता है जिसमें विवाह के समय कन्या पूर्ण विकसित हो। उन्होंने कहा कि दो बच्चों को विवाह के बन्धन में बाँध देना फिर लड़की को तथा कथित पति की मृत्यु होने पर विधवापन के गर्त्त में धकेल देना ईश्वर तथा मनुष्य दोनों के प्रति अपराध है। एक अवसर पर उन्होंने कहा "मुझे बाल–विवाहों से घोर घृणा है।" बाल विवाह को देखकर मैं काँप उठता हूँ। इस समय और भी अधिक क्रोध से मैं अभिभूत हो जाता हूँ जब कोई पत्नी की मृत्यु होते ही सर्वथा उदासीन भाव से दूसरा विवाह कर लेता है। मुझे उन माता–पिताओं पर क्षोभ होता है जो उन्हें केवल किसी कमाऊ व्यक्ति से विवाह कर देने भर के लिए पालते हैं। उनका मानना था कि लड़की के विधवा हो जाने पर इन माता–पिताओं को उनका पुनर्विवाह कर अपने पाप का प्रायश्चित करना चाहिए। जब एक पत्रकार संवाददाता ने उनका ध्यान उनके एक लेख की ओर आकर्षित किया जिसमें उन्होंने एक ओर विवाह को पवित्र तथा दो शरीरों का नहीं अपितु दो आत्माओं का सम्मिलन बताया।

जिसे स्त्री या पुरुष में से किसी एक की भी मृत्यु होने पर तोड़ा नहीं जा सकता तथा दूसरी ओर उसी लेख में उन्होंने कुमारी विधवाओं के विवाह का प्रतिपादन किया था। जब उनसे यह पूछा या कि इन दोनों बातों में वे किस प्रकार मेल बैठाते हैं जो ''यंग इण्डिया'' में गाँधीजी ने इसके उत्तर में लिखा कि इन दोनों विचारों में संगति बिठाने में मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती। अज्ञानी एवं निर्भय अभिभावकों द्वारा उनके कल्याण की चिन्ता किए बिना छोटी सी बच्ची को विवाह के बन्धन में बाँध देने को मैं विवाह नहीं मानता। इस प्रकार का विवाह निश्चित ही पवित्र नहीं है और इस कारण ऐसी लड़की का पुनः विवाह करना एक कर्त्तव्य है। वस्तुतः ऐसे दृष्टान्तों में पुनर्विवाह शब्द एक अशुद्ध प्रयोग है।

किन्तु जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि गाँधीजी सामूहिक रूप से विधवा–विवाह के समर्थक नहीं थे। वस्तुतः उनके अनुसार सामान्यत विधवा स्त्री व विधुर पुरुष दोनों को ही पुनः विवाह नहीं करना चाहिए। उनका कहना था कि मैं तो हिन्दू विवाह नियम में यह सुधार प्रस्तावित करना चाहता हूँ कि किसी भी विधवा अथवा विधुर द्वारा फिर से विवाह करना पाप समझा जाऐ, यदि उन्होंने प्रथम विवाह परिपक्व आयु में किया हो। वे विधवाओं को आत्मसंयम और कष्ट सहन करने को प्रशंसा की दृष्टि से देखते थे और हिन्दू विधवा का महिमागान करते थे। साथ ही यह भी कहते थे कि मानवता हिन्दू धर्म का वरदान है। इस प्रकार गाँधीजी का संघर्ष उस व्यवस्था के विरुद्ध था जिसमें बाल विधवाओं का जन्म होता था जिसे वे हिन्दू धर्म का कलंक मानते थे। एक प्रकार से उनका संघर्ष विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रति उदि्ष्ट न होकर बाल विवाह के प्रति उदि्ष्ट कहा जा सकता है।

बाल विवाह को रोकने के उपायों में गाँधीजी विवाह की आयु को बढ़ाने के लिए अधिनियम बनाये जाने के पक्ष में थे। उनके अनुसार बाल विवाह एक अनैतिक एवं अमानवीय कृत्य है। जिसमें भोली–भाली लड़कियाँ पुरुष की विषय–वासना की तृप्ति का साधन मात्र बनती है, कम उम्र में

विवाह और फिर माँ बनी इन लड़कियों का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। इन सबसे बढ़कर किशोरी कन्याऐं विधवाओं की दुर्गति को प्राप्त होती है। गाँधीजी की दृष्टि से बाल विवाह केवल नैतिक एवं सामाजिक कुरीति ही नहीं अपितु स्वराज्य की प्राप्ति में भी बाधक है। उन्होंने इस समस्या को देश के स्वतंत्रता संग्राम से जोड़ा और जनसाधारण की राष्ट्रीय भावनाओं को उद्बोधित करते हुए इस पर प्रहार किया कि वे नारी जाति के कल्याण के लिए कार्य करें। उनकी मान्यता थी कि स्त्रियों की बुरी स्थिति के लिए केवल पुरुषों को ही दोषी ठहराना अर्थहीन है। साथ ही उन्हें गृहणियों एवं विधवाओं के बीच जाकर काम करना चाहिए और बाल विवाह को ही सर्वथा असम्भव बना देना चाहिए।

गाँधीजी ने कई अवसरों पर विवाह संस्कारों से संबंध बुराईयों पर तथा विवाह के आदर्श पर अपने विचार अभिव्यक्त किये। वे विवाह के समय होने वाले अनुष्ठानों के सरलीकरण के पक्ष में थे। उनके अनुसार विवाह संस्कार पर दस रूपये से अधिक नहीं खर्च होना चाहिए। उन्होंने समाज के धनिकों से कहा कि वे आत्म नियन्त्रण का परिचय देते हुए इस क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान करें और विवाह के अवसर पर होने वाली राष्ट्रीय सम्पत्ति की क्षति रोकने में सहायका करें। उनके अनुसार विवाह का उद्देश्य केवल शारीरिक वासना की तृप्ति नहीं है, अपितु एक अध्यात्मिक एवं विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति भी है। आदर्श विवाह में सन्निहित अपेक्षाओं की व्याख्या करते हुये उन्होंने कहा कि इसमें सर्वप्रथम आध्यात्मिक विकास का स्थान है। उसके उपरान्त पारिवारिक अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु सेवा कार्य और उसके बाद समाज के हितों की रक्षा आती है और अन्त में दोनों के पारस्परिक आकर्षक अथवा ''प्रेम'' का स्थान है। उनके विचार से प्रथम तीन शर्तों के पूरा होने पर केवल प्रेम को विवाह का आधार नहीं माना जा सकता, किन्तु साथ ही यदि प्रेम नहीं है तो इन तीनों शर्तों के पूरा होने पर भी विवाह का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। केवल एन्द्रिक सुख की प्राप्ति हेतु किए जाने वाले विवाह को

गाँधीजी ''व्यभिचार'' की संज्ञा देते हैं। पत्नी और पति के आदर्श के विषय में गाँधीजी ने लिखा है कि ''पत्नी का मेरा आदर्श, सीता एवं पति का मेरा आदर्श राम का है'' किन्तु सीता–राम की दासी नहीं थी अथवा दोनों ही एक–दूसरे के दास थे। राम को सीता का बहुत अधिक ध्यान रहता था। वास्तविक प्रेम न रहने पर वैवाहिक बंधन का कोई अर्थ नहीं है। जहाँ तक जनसंख्या वृद्धि रोकने के उपायों का प्रश्न है गाँधी कृत्रिम उपायों के विरोधी प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत वे अनुशासन एवं आत्म नियंत्रण का प्रतिपादन करते हुए दस नियमों के माध्यम से परिवार को सीमित बनाये रखने के पक्ष में सुझाव देते हैं।

गाँधीजी विवाह की संस्था के शूद्र स्वरूप को दूषित करने वाली दहेज प्रथा के एकदम विरुद्ध थे। इस प्रथा का तात्कालिक प्रभाव उन माता–पिताओं के लिए एक भयानक स्वप्न के रूप में सामने आता था जिनके विवाह योग्य लड़कियाँ होती थी किन्तु इसका एक दूरगामी दुष्प्रभाव यह था कि इससे समाज में लड़के और लड़की के बीच भेदभाव की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता था। दहेज के धन की व्यवस्था न कर पाने पर माता–पिता लड़कियों को बेचने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उच्च पदों पर काम करने वाले युवकों द्वारा दहेज की मांग के संबंध में उनकी मान्यता थी कि यह देश के सम्पूर्ण युवा वर्ग का चरित्र भ्रष्ट कर देगी और साथ ही यह सुझाव रखा कि दहेज के रूपयों से अपना हाथ गन्दा करने वाले युवकों को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाना चाहिए। अभिभावकों को सलाह देते हुये उन्होंने कहा दूसरे समुदाय तथा जाति में योग्य सुपात्र लड़कों के मिलने पर उन्हें बिना किसी हिचकिचाहट के अपनी लड़की का विवाह उनसे कर देना चाहिये। स्त्रियों की दयनीय अवस्था का प्रमुख कारण उनमें व्याप्त अज्ञान तथा शिक्षा का अभाव था इसकी जड़ में पदा–प्रथा थी जो महिलाओं को घर की चार दीवारी में बांधकर रखती है। गाँधीजी इसे बड़ा लाचर तर्क मानते थे कि पर्दा स्त्रियों की चारित्रिक पवित्रता बनाए रखने में सहायक है। इस संबंध में उन्होंने कहा

कि परित्रता इस प्रकार के कृत्रिम उपायों से नहीं पैदा की जा सकती जिस प्रकार की कृत्रिम शीशे के मकाने में पौधे नहीं उगाए जा सकते। पर्दे के चार–दीवारी में बांधकर इसकी रक्षा नहीं की जा सकती, स्त्री–पुरुष दोनों को एक दूसरे पर विश्वास करना होगा। उनकी मान्यता थी कि पर्दा–प्रथा देश में बाद में आई और इसका प्रसार हिन्दू समाज के पतन के काल में व्यापक हुआ। उनका विश्वास था कि पर्दा–प्रथा के उन्मूलन से स्त्रियों और पुरुषों दोनों में शिक्षा का स्तरीय प्रसार होगा।

हम यह देख चुके हैं कि विविध सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए गाँधी की जनचेतना जागृत करना चाहते थे। बाल–विवाह आदि को रोकने के लिए कुछ सुधारक निरन्तर आंदोलन कर रहे थे। वे सरकार से इन कुरीतियों के लिए कानून बनवाना चाहते थे, किन्तु गाँधीजी कानूनी तरीकों की सीमाओं से भी परिचित थे और केवल उन पर निर्भर रहना पसंद नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि नारी जगत में प्रभावी सामाजिक परिवर्तन के लिए स्वयं स्त्रियों को कार्य करना चाहिए। उन्हें अपने अंदर अन्यास का प्रतिकार करने के लिए संघर्ष एवं आत्मविश्वास जगाना चाहिए। किसी पति द्वारा पत्नी के ऊपर अत्याचार करने के लिए विशिष्ट उदाहरण पर उन्होंने कहा कि इस प्रकार के अन्याय–कर्मों की दवा कानून में नहीं अपितु स्त्रियों को जागृत एवं शिक्षित करने में है, ऐसी स्त्री के पिता तथा भाई को असहाय होकर आँसू बहाने की अपेक्षा उसे शरण एवं सहायता प्रदान करनी चाहिए। एक पापी पति का अत्याचार सहना, उनके सहाचर्य की कामना करना उसका कर्त्तव्य नहीं है। लड़कियों को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा कि वे अपने में आत्मविश्वास जगावें और मनुष्य द्वारा पशु के समान आचरण किये जाने पर उसका प्रतिकार करने के लिए मृत्यु का वरण करने के लिए साहस रखें। प्रबुद्ध महिलाओं का यह नैतिक दायित्व है कि वे अन्य स्त्रियों के कल्याण के लिए कार्य करें एवं इसके लिए वे बाल गृहणियों तथा बाल–विधवाओं के बीच जाकर काम करने के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्होंने सलाह दी कि वे

पुरुषों के लिए मात्र भोग सामग्री बनने से मना कर दें और इसलिए अपने शरीर को सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों से ना सजावें क्योंकि यह पुरुषों को अच्छा लगता है। यदि उनके साथ किसी प्रकार की असमानता का व्यवहार किया जाता है तो उन्हें विद्रोह करना चाहिए।

वस्तुतः स्त्रियों और पुरुषों की समानता से उनका आशय यह है कि वे एक–दूसरे के पूरक है। परिवार तथा समाज व्यवस्था में दोनों को ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। गाँधीजी का मानना था कि स्त्री और पुरुष में कुछ मूलभूत भिन्नताऐं हैं, इस कारण वे दोनों के बीच अपनी विशिष्टताओं के अनुरूप श्रम–विभाजन के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। उनका ये कहना था कि स्त्रियों एवं पुरुषों को इस प्रकार श्रम विभाजन आदिकाल से ही रहा है। इसलिए स्त्री आत्म–बलिदान एवं अहिंसा का मूर्तिमान रूप होती है, इस कारण इसके कार्य का चयन इन विशिष्ट गुणों के कारण किया जाना चाहिये। गाँधीजी ने कहा कि स्त्री पुरुष की समानता का अर्थ यह नहीं है कि इनके पेशे भी समान हो। स्त्री द्वारा शस्त्र धारण किये जाने पर कानूनी रोक नहीं हो सकती। किन्तु उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ऐसे काम न करने की होगी जो कि पुरुषों की शोभा है। प्रकृति ने दोनों को एक–दूसरे के पूरक के रूप में सृजित किया है। उनकी शारीरिक संरचना के समान ही उसके कार्य की सर्वथा परिभाषित है। मातृत्व से संबंधित दायित्वों का निर्वाह तथा घर की देखभाल करना स्त्री के प्रमुख कर्त्तव्य हैं और ये कार्य किसी भी प्रकार पुरुष द्वारा किए जाने वाले कार्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। स्त्रियों को घुड़सवारी करने अथवा बंदूक थामने के लिए कहने में उन्हें कोई बुद्धिमानी नहीं दिखाई देती है। पृथक–पृथक कार्यों को करते हुए स्त्री पुरुष किसी प्रकार की हीनभावना से ग्रस्त होने का कोई औचित्य नहीं है।

इस प्रकार गाँधीजी नारी सुधार की उस असंतुलित नीति के पक्ष में नहीं थे जिसमें स्त्रियों को पुरुषों द्वारा किये जाने वाले कार्य को करने के लिए कहा जाए।

महात्मा गाँधी एक ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे जिसकी नींव न्याय, समानता व शांति पर आधारित हो। इस महती उद्देश्यय की प्राप्ति हेतु यह परमावश्यक था कि समाज के दो आधारभूत अंगों – पुरुष व स्त्री के बीच समानता के सभी तत्व सुनिश्चित व सुनिर्धारित हों। देश के समन्वित व शांतिपूर्ण विकास के लिए यह लैंगिक समानता पूर्व निर्धारित शर्त है। गाँधी ने उत्कृष्ट शब्दों में स्त्री को गौरवान्वित करते हुए कहा– ''स्त्री ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है, वह अहिंसा की अवतार है तथा अपने धार्मिक आग्रहों के परिप्रेक्ष्य में वह पुरुष जाति से कोसो आगे है।'' अब प्रश्न यह उठता है कि स्त्री के संबंध में गाँधी के समन्वित सोच व सम्मानपूर्ण भाव का आधार क्या था। अर्थात् इस पवित्र भाव का पल्लवन, पुष्पन व विकास उनमें कब व किन परिस्थितियों में हुआ था। इस प्रश्न के समाधान के लिए हमें गाँधी के व्यक्तित्व निर्माण के उन प्रारंभिक अवस्थाओं को भी खंगालना होगा, जिनमें विभिन्न स्त्रियों ने विभिन्न रूपों में उनके जीवन दर्शन को निर्णायक रूप से प्रभावित किया। जिन स्त्रियों ने उन पर गहरी छाप छोड़ी, उनमें उनकी माँ व बहन का पहला व महत्त्वपूर्ण स्थान है। गाँधीजी ने अपनी रचनाओं व उदाहरणों में अपनी माँ का सर्वाधिक जिक्र किया है। सत्याग्रह का पहला अध्याय उन्होंने अपनी माँ से ही सीखा। विवाहोपरान्त कस्तूरबा उनके जीवन में आईं, जिन्होंने उनके भावी व्यक्तित्व को गढ़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी तरह आश्रमवासी स्त्रियों में मीराबेन व अमृत कौर की सजगता व प्रतिबद्धता से वे काफी प्रभावित हुए। सन् 1921 में गाँधी ने ''यंग इंडिया'' में लिखा– ''पुरुषों द्वारा स्वनिर्मित सम्पूर्ण बुराइयों में सबसे घृणित, वीभत्स व विकृत बुराई है उसके द्वारा मानवता के आधे (बेहतर) हिस्से (जो कि मेरे लिए स्त्री जाति है न कि कमजोर व पिछड़ी जाति) को उसके न्यायसंगत अधिकार से वंचित करना। महिलाओं के प्रति असमानता व असम्मान, अन्याय का बोध करते हुए गाँधी ने इस बात को दृढ़ता से कहा– ''यदि मैं स्त्री के रूप में

पैदा होता, तो मैं पुरुषों द्वारा थोपे गये किसी अन्याय का जमकर विरोध करता तथा उनके खिलाफ विद्रोह का झंडा बुलंद करता।''

गाँधीजी की स्त्रीवादी सोच में दो तत्त्वों की सर्वाधिक भूमिका है– पहला, हर स्तर पर तथा हर मायने में स्त्री–पुरुष समानता तथा दूसरा, दोनों के विशिष्ट लैंगिक भिन्नता के मद्देनजर उनके सामाजिक दायित्वों में भिन्नता के मद्देनजर उनके सामाजिक दायित्वों में भिन्नता। गाँधीजी ने एक बार कहा, ''पुरुषों को भी पारिवारिक देखभाल की जिम्मेदारी निभानी चाहिए तथा स्त्रियों को घरेलू प्रबंध में अपनी भूमिका तय करनी चाहिए और इस तरह दोनों को एक–दूसरे के पूरक की भूमिका अदा करनी चाहिए। गाँधीवाद के लैंगिक संबंध दर्शन में इस बात को रेखांकित किया गया है कि चूंकि पुरुष व स्त्री की सामाजिक अपेक्षाओं में विशिष्टगत भिन्नता परिलक्षित होती है इसलिए उनकी सार्वजनिक व निजी भूमिकाओं में भी भिन्नता की मौजूदगी एक सहज, स्वाभाविक चीज है। उन्होंने हिन्दू शास्त्रों का उद्धरण देते हुए बल इस बात पर दिया कि यदि प्रत्येक चीज की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है तो फिर पुरुष व स्त्री के बीच में भिन्नता कहाँ है। उन्होंने इस बात को रेखांकित किया कि लिंग के बजाय वैयक्तिक आत्मा की भूमिका अधिक प्रबल होती है। धर्मग्रन्थों पर टिप्पणी करते हुए गाँधी ने कहा– ''स्मृतियों में लिखी सारी चीजें दैव वाणी नहीं है तथा उनमें भटकाव व त्रुटियों का होना सहज संभाव्य है।'' यदि धर्म व धर्मशास्त्र अनैतिक चीजों को हमारे सामने परोसते हैं या थोपने की कोशिश करते हैं तो हमें उसे अस्वीकार कर देना चाहिए। गाँधी ने कहा– ''हिन्दुत्व प्रत्येक प्रणाली को इस बात के लिए खुली छूट प्रदान करता है कि वह अपने आत्मानुभूति की उपलब्धि के लिए अपना मार्ग खुद तय करे।'' गाँधीजी का विचार था कि स्त्रियों की शोचनीय दशा ऐतिहासिक परिस्थितियों की वजह से हुई है अन्यथा दोनों में एक ही आत्मा का वास है और दोनों मूलतः एक हैं। प्रत्येक की भूमिका एक–दूसरे के पूरक के रूप में होती है, लेकिन परिस्थितिजन्य पुरुषों ने हजारों वर्ष पूर्व से ही स्त्रियों पर आधिपत्य

करना शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप स्त्रियों की मनोदशा हीनभावना से ग्रस्त हो गई है और वह उसके (पुरुषों के) श्रेष्ठता को ही सत्य मानने की समान भूमिका में है। पुरुष व स्त्री के मानसिक बनावट में मूलतः कोई भेद नहीं है तथा वह आजादी, समानता व स्वतन्त्रता की समान हकदार है।

जहाँ तक पुरुष व स्त्री के कार्यगत क्षेत्रों का सवाल है, तो गाँधी कार्यगत विशिष्टता में विश्वास करते थे। एक ओर पुरुष का कार्य है कि वह परिवार के लिए रोटी का अर्जगन करे, वहीं स्त्रियों का यह दायित्व है कि वह घर व बच्चों के पालन–पोषण में अपनी श्रेष्ठतम भूमिका अदा करे। गाँधी के दृष्टिकोण में स्त्रियों की भूमिका एक पालनकर्त्ता की थी। उनका मानना था– ''महिलाएँ मुख्य रूप से घर गृहणी होती हैं, वे रोटी रखने व बाँटने वाली होती है, नौनिहालों की उत्तम परवरिश महिलाओं की मुख्य व एकाधिकारपूर्ण जिम्मेदारी होती है। बिना उसके लालन–पालन के मानवता का अस्तित्व कदापि संभव नहीं है। उन्होंने विवाह को महिलाओं के लिए अवश्यंभावी चीज मानने से इंकार कर दिया। यद्यपि गाँधीजी सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियों की भूमिका के प्रबल पैरोकार नहीं थे फिर भी जब 1921 में महिला मताधिकार का मुद्दा उठा तो उन्होंने इसका पुरजोर समर्थन किया तथा इस बात को रेखांकित किया कि सत्याग्रह आंदोलन व दांडी मार्च की सफलता में स्त्रियों की उत्साहपूर्ण व सक्रिय भागीदारी की निर्णायक भूमिका थी। बड़े स्तर पर शराब की दुकानों तथा विदेशी वस्त्रों के विक्रेताओं के घेराव का कार्य मुख्यतः स्त्रियों द्वारा ही किया गया। 1939 तक आते–आते गाँधी को इस बात का पक्का विश्वास हो गया था कि यदि राष्ट्रीय आंदोलन की धार को तीव्र कर उसे जन–आंदोलन में बदलता है, तो उसमें स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी अनिवार्य है। उन्होंने कहा– ''मैं इस बात से खुश होऊँगा तथा इस बात को चाहूँगा कि भविष्य की मेरी सेवा में स्त्रियों की प्रावल्यता सुनिश्चित हो। ऐसे किसी भी संघर्ष का मैं अधिक साहस व जोश से मुकाबला कर सकूँगा जिसमें पुरुषों की भूमिका कमतर व स्त्रियों की महत्तर हो। मुझे पुरुष प्रधान संघर्ष में

हिंसा के तांडव की गंध आती है और मैं उससे भयभीत होता हूँ। ऐसी परिस्थितियों में महिलाऐं मेरे लिए ढाल का काम करेगी। साउथर्ड के अनुसार, गाँधी अहिंसक संघर्षों में महिलाओं की भूमिका को अपनी मूल अवधारणा के विपरीत नहीं मानते थे। वरन् इसके उलट उनका ख्याल था कि सत्याग्रह में अपनी सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित कर महिलाऐं सम्पूर्ण मानवता के पालन–पोषण की अपनी जिम्मेदारी को और अधिक सुविस्तृत व सुव्यापक करती है।

गाँधी ने एक ओर महिलाओं को सामाजिक व सांस्कृतिक शोषण का शिकार पाया। वहीं दूसरी ओर उसे निचले स्तर से सामाजिक परिवर्तन का निर्णायक वाहक व उत्प्रेरण भी माना। यह चीज तब मुखर होकर, हमारे सामने आती है, जब हम महिलाओं को माँ, पत्नियों, शिक्षकों तथा कार्यकर्त्ताओं के रूप में शराब की दुकानों का घेराव करते हुए तथा विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देते हुए देखते हैं। जाहिर है कि गाँधी परिवार व समाज में महिलाओं की प्रभावी सामाजिक भूमिका के प्रबल पैरोकार थे। आश्चर्यजनक रूप से गाँधीजी ने महिलाओं की इन दो अभिन्न गुणों की पहचान कर उसे सामाजिक व पारिवारिक गतिविधियों से राष्ट्रीय गतिविधियों में समाजित, संपूरित व एकीकृत कर दिया जिसके परिणामस्वरूप एक जन–आधारित ठोस राष्ट्रवादी संघर्ष की नींव पुख्ता व परिणामोत्पादक हुई। गाँधीजी उनमें समाज व राष्ट्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की महती जिम्मेदारी निहित करना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने महिलाओं को हस्तनिर्मित सूत उत्पादक के रूप में जो कि विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का सर्वाधिक निर्णायक हथियार था, स्वदेशी आंदोलन के केन्द्र में स्थापित किया। स्वदेशी व असहयोग आंदोलन के उनके कार्यक्रम महिलाओं की पारंपरिक भूमिकाओं व विचारों से प्रेरित थे। ऐतिहासिक रूप से कहा जाए तो महिलाएं घरेलू उपयोग हेतु प्रयुक्तम वस्त्रों की कताई व बुनाई के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी रही हैं तथा यह एक वैश्विक–प्रवृत्ति रही है। इस प्रकार से सुख व आधिपत्य वाले इस संसार में

उसका संघर्ष मौन और अहिंसक रहा है। महिलाओं की दृढ़ता व साहस के आगे ब्रिटिश साम्राज्य को भी नत–मस्तक होना पड़ा। यह अपने आप में एक बहुत बड़ी सफलता थी और इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्होंने प्रायः उपेक्षित नजर–अन्दाज कर दिये गए तथाकथित ''महिला कार्य व श्रम'' की महत्ता को स्थापित किया तथा उसे 'भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन' की सफलता का पर्याय बनाया।

तत्कालीन समय में महिलाओं की स्थिति

तत्कालीन समय में गाँधीजी ने स्त्री शिक्षा को अनिवार्य रूप से जोड़ने वाली अवधारणा माना है। इसका एक रूप शिक्षा में स्त्री का पुरुषों की ही तरह शामिल करने से संबंधित है। दूसरे रूप में यह स्त्री के लिए बनाई गई विशेष शिक्षा पद्धति को संदर्भित करता है। भारत में मध्य और पुनर्जागरण काल के दौरान स्त्री को पुरुषों से अलग तरह की शिक्षा देने की धारणा विकसित हुई थी। वर्तमान दौर में यह बात सर्वमान्य है कि स्त्री को भी उतना शिक्षित होना चाहिये जितना पुरुष को। यह सिद्ध सत्य है कि यदि माता शिक्षित नहीं होगी तो देश की सन्तानों का कदापि कल्याण नहीं हो सकता। शिक्षा व्यस्क जीवन के प्रति स्त्रियों के विकास के लिए एक आधार के रूप में विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षा अन्य अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए लड़कियों और महिलाओं को सक्षम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बहुत सी समस्याओं को पुरुषों से नहीं कह सकने के कारण महिलाऐं कठिनाई का सामना करती रहती हैं। अगर महिलाऐं शिक्षित हैं तो वे अपने घरों की सभी समस्याओं का समाधान कर सकती हैं। स्त्री शिक्षा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विकास में मदद करता है। आर्थिक विकास और एक राष्ट्र के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में मदद करता है। महिला शिक्षा एक अच्छे समाज के निर्माण में मदद करती है। रूढ़िवादी सांस्कृतिक नजरिए के कारण लड़कियों को अक्सर पाठशाला जाने की अनुमति नहीं दी जाती है।

महात्मा गाँधी एक ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे जिसकी नींव न्याय, समानता व शांति पर आधारित हो। इस महती उद्देश्य की प्राप्ति हेतु यह परमावश्यक था कि समाज के दो आधारभूत अंगों – पुरुष व स्त्री के बीच समानता के सभी तत्व सुनिश्चित व सुनिर्धारित हो। देश के समन्वित व शांतिपूर्ण विकास के लिए यह एक लैंगिक समानता पूर्व निर्धारित शर्त है। गाँधी ने उत्कृष्ट शब्दों में स्त्री को गौरवान्वित करते हुए कहा– ''स्त्री ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है, वह अहिंसा की अवतार है तथा अपने धार्मिक आग्रहों के परिप्रेक्ष्य में वह पुरुष जाति से कोसों आगे है।'' यद्यपि गाँधी सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियों की सक्रिय भूमिका के प्रबल पैरोकार नहीं थे, फिर भी जब 1921 में महिला मताधिकार का मुद्दा उठाया तो उन्होंने इसका पुरजोर समर्थन किया तथा इस बात को रेखांकित किया कि दांडी मार्च व सत्याग्रह आंदोलन की सफलता में स्त्रियों की उत्साहपूर्ण व सक्रिय भागीदारी की निर्णायक भूमिका थी। गाँधीजी ने कहा– ''मैं इस बात से खुश होऊँगा तथा इस बात को चाहूँगा कि भविष्य की मेरी सेवा में स्त्रियों की प्रावल्यता सुनिश्चित हो। ऐसे किसी भी संघर्ष का मैं अधिक साहस व जोश से मुकाबला कर सकूँगा जिसमें पुरुषों की भूमिका कमतर व स्त्रियों की महत्तर हो। गाँधी अहिंसक संघर्षों में महिलाओं की भूमिका को अपनी मूल धारणा के विपरीत नहीं मानते थे। वरन् इसके उलट उनका ख्याल था कि सत्याग्रह में अपनी जिम्मेदार/भागीदारी को सुनिश्चित कर महिलाऐं सम्पूर्ण मानवता के पालन–पोषण की अपनी जिम्मेदारी को और अधिक सुविस्तृत व सुव्यापक करती है।

गाँधीजी धर्म को जीवन–मार्ग मानते थे। उनकी नजर में धर्म व्यक्ति के वास्तविक चरित्र का सूचक था। उन्होंने इस बात का बार–बार उल्लेख किया कि धर्म की मूल भावना की सुरक्षा एकमात्र स्त्रियाँ ही कर सकती है, पुरुष या धार्मिक ब्राह्मण नहीं। कैथल में स्त्रियों की एक सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा– ''समाज की बुनियाद घर के अस्तित्व पर टिकी होती है तथा

धर्म के विकास का श्रेष्ठतम स्थान घर होता है। घर के अन्दर से विकसित व सुव्यवस्थित होकर धर्म की खुशबू सम्पूर्ण समाज को अपने आगोश में ले लेती है।'' वे भारतीय स्त्रियों के वस्त्र चयन व वैचारिक सागी से काफी प्रभावित थे। उन्होंने इस बात पर बार–बार अपने लेखन में उल्लेख किया कि वह मदुरई की सफेद साड़ी, बंगाल की लाल किनारी वाली साड़ी तथा पंजाबी स्त्रियों की सादगीपूर्ण वस्त्र–विन्यास से काफी प्रभावित थे। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि **स्त्रियों के वास्तविक आभूषण उनके उत्कृष्ट गुण–धर्म हैं, उनके हुनर हैं, उनकी सुचिता है तथा उनका सतीत्व है** सो आत्मा की पवित्रता अधिक महत्त्वपूर्ण है न कि बाह्य सौन्दर्य जो कि क्षणभंगुर व मात्र चमड़ी की सुंदरता होती है।

गाँधी ने कहा कि देश के लिए स्वस्थ, बुद्धिमान व सुविकसित बच्चों का लालन–पालन ही अपने आप में स्त्रियों का उत्कृष्टतम योगदान है। उनका यह भी विचार था कि उत्तराधिकार संबंधी हिन्दू कानूनों में परिवर्तन व सुधार की जरूरत है। स्त्रियों को भी पारिवारिक सम्पत्ति में समान हिस्सा मिलना चाहिए, क्योंकि पारिवारिक सम्पत्ति में स्त्रियों के अनाधिकार से ही पुरुष आधिपत्य व स्त्री–दमन का श्रीगणेश होता है। गाँधी का मत था कि स्त्रियों को किसी भी तरह वैधानिक अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा– ना हमें बेटियों व बेटों को दोनों को पूर्ण समानता के भाव के साथ समान रूप से अपनाना चाहिए। गाँधी की प्रेरणा से 1931 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पारित किया– **''इस सम्मेलन का यह मत है उत्तराधिकार व सम्पत्ति में संबंधी मामलों में स्त्रियों व पुरुषों दोनों का समान अधिकार सुनिश्चित होना चाहिए।''**

गाँधी ने पर्दा प्रथा नामक बुराई, जिसकी उपस्थिति अभी समाज के कुछ हिस्सों में दृष्टिगोचर होती है, की भी ऐतिहासिक उदाहरणों व तथ्यों से परिप्रेक्ष्य में निंदा की। प्राचीन भारतीय इतिहास का संदर्भ देते हुए उन्होंने लिखा कि प्राचीनकाल में स्त्रियों की स्थिति अधिक न्यायपूर्ण तथा भागीदारी

वाली थी। वे सार्वजनिक बहसों व सभाओं में खुलकर भाग लेती थी तथा निःसंकोच अपने विचारों को प्रकट करती थी। उनका जीवन अधिक पूर्ण तथा बंधनरहित तथा और उस समय पर्दे का अस्तित्व नहीं था। उन्होंने यह न्यायोचित सवाल उठाया– ''क्यों हमारी महिलाएँ पुरुषों के समान अधिकारों का उपयोग नहीं करती हैं? क्यों वह खुले माहौल में स्वतन्त्र रूप से विचरण नहीं कर सकती हैं? महिला संगठनों ने भी इस मुद्दे को उठाया तथा इसके खिलाफ अपना उग्र प्रतिरोध दर्ज कराया। **मृणालिनी सेन** ने यहाँ तक कहा कि आधुनिक भारत की महिलाएँ उस स्वतंत्रता की मांग करती हैं जो उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। गाँधी ने 'पर्दा' को बर्बरतापूर्ण प्रथा समाज का अपूरणीय क्षति करने वाला बताकर उसे सिरे से खारिज कर दिया। 1928 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने कलकत्ते की अपनी बैठक में 'पर्दा' के खिलाफ एक प्रस्ताव पारित किया। अन्य सामाजिक सुधारकों की तरह ही गाँधी भी लड़के या लड़की की सहमति के बगैर विवाह थोपने के खिलाफ थे। वह बाल–विवाह के भी विरोधी थे और जब 'बाल सुरक्षा कानून' बना तो उन्होंने इसका स्वागत किया। साथ ही उन्होंने विधवा पुनर्विवाह का भी समर्थन किया। उन्होंने लिखा– ''मैंने इस बात को बार–बार कहा है कि पुनर्विवाह का जितना अधिकार विधुरों को है उतना ही विधवाओं को भी है। विभिन्न समुदायों को संबंधित अपने संदेश में उन्होंने लिखा, ''**यदि कोई बाल विधवा पुनर्विवाह की इच्छुक हो, तो उसे जातिच्युत या बहिष्कृत नहीं करें।**''

गाँधी की **स्वराज** के सबसे महत्त्वपूर्ण व्याख्याओं में एक का संबंध महिला व महिला मुक्ति से है। वेश्यावृत्ति, स्त्रियों की बदतरीन स्थिति का ज्वलंत उदाहरण और गाँधी के शब्दों में एक सामाजिक बीमारी, इस पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा कि स्त्रियाँ यौन व आर्थिक शोषण के कारण अपने शरीर को बेचने के लिए बाध्य होती है। तथा पुरुषों के कारण यह समस्या अनवरत बनी रहेगी। उन्होंने जोर देते हुए कहा कि कोई इन स्त्रियों

की मदद के लिए आगे नहीं आता है तो उन्हें खुद परिवर्तन का वाहक बनना चाहिए तथा पुरुषों के हाथों अपने शोषण के खिलाफ संघर्ष करना चाहिए।

इसी प्रकार देवदासी–प्रथा के खिलाफ अपना रोष प्रकट करते हुए गाँधी ने कहा, यद्यपि परम्परा के सागर में गोते लगाना तो अच्छा है, लेकिन उसमें डूब जाना आत्महत्या है। देवदासी प्रथा को नैतिक कोढ़ तथा ईश्वर की अवमानना के रूप में चिन्हित करते हुए गाँधी उन सड़ी–गली सामाजिक–सांस्कृतिक प्रथाओं को तोड़ना चाह रहे थे जिन्होंने सदियों से स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक या वस्तु बना रखा है। दहेज–प्रथा भी इसी तरह एक अन्य सामाजिक बुराई है, जिसने भारतीय स्त्रियों के जीवन को विकृत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। गाँधी इसे घृणित व्यापार मानते थे तथा दहेज आधारित विवाह को खरीद–बिक्रकी का कारोबार मानते थे। उन्होंने लिखा कि जिन विवाहों में वधुओं को खरीदा जाता है वहाँ सौहार्दपूर्ण संबंधों की अपेक्षा कभी नहीं की जा सकती है। 1929 में गाँधी ने अपने समकालीन समाज को अचंभित करते हुए कहा कि, ''यदि मेरे पास मेरी देख–रेख में कोई लड़की होती तो मैं उसे जीवन भर कुँवारी रखना पसंद करता, बजाय इसके कि उसे किसी ऐसे व्यक्ति को सौंपता, जो उसे अपनी पत्नी बनाने के एवज में एक पाई जाने की भी अपेक्षा रखता। गाँधी ने लोगों से दहेज लोभी युवाओं के बहिष्कार की अपील की। वह अर्न्तजातीय व अर्न्तसामुदायिक विवाह को इस सामाजिक बीमारी की एक कारगर औषधि मानते थे। गाँधीजी ने युवाओं से दहेजरूपी विकृत प्रथा की समाप्ति की अपील कर वस्तुतः एक बड़े व व्यापक युवा आंदोलन की नींव डाल दी।

आज हम जनसंख्या विस्फोट से उत्पन्न तमाम तरह की परेशानियों से दो–चार हो रहे हैं, लेकिन इस समस्या की पहचान 1932–33 में ही कर ली गई थी। अखिल भारतीय सम्मेलन ने इस आशय का प्रस्ताव पारित किया कि म्युनिसिपैलिटी व स्थानीय प्रशासन को जनसंख्या नियंत्रित करने के साधनों की जानकारी देने वाले केन्द्रों को व्यापक पैमाने पर खोलना चाहिए। इस

प्रस्ताव के पक्ष में 99 मत पड़े जबकि विरोध में मात्र 7 वोट पड़े। यद्यपि गाँधी ने इस प्रस्ताव के प्रति प्रशंसा के भाव व्यक्त किऐ, लेकिन अपने इस दृढ़ मत पर कायम रहे कि आत्म–नियंत्रण इस समस्या का सर्वाधिक उपयुक्त व नैतिक समाधान है। गाँधीजी ने जनसंख्या नियंत्रण के लिए गर्भ निरोधकों या कृत्रिम साधनों के उपयोग को कभी पसंद नहीं किया। उनके अनुसार– ''यद्यपि यह सत्य है कि गर्भ निरोधक इस समस्या को कुछ हद तक नियंत्रित कर पाने में सक्षम है तथा इसके माध्यम से सीमित आय वाले व्यक्ति अपने आपको संकट से बचा सकते हैं लेकिन इससे व्यक्ति व समाज की जो नैतिक क्षति होती है, वह अपूरणीय है। इस तरह से अपनी यौन भूख की तृप्ति की तलाश करने वाले व्यक्तियों के लिए विवाह एक माध्यम बन जाता है। गाँधीजी इस बात में विश्वास करते थे कि स्त्रियाँ अधिक आत्मसंयमी होती है और इसलिए उन्होंने ब्रह्मचर्य के माध्यम से संतति–निग्रह का दायित्व स्त्रियों के दृढ़ कंधों को सौंपा।

गाँधी ने लड़कों व लड़कियों के लिए समान शिक्षा का समर्थन किया। 1937 में अपने 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा स्कीम' के अंतर्गत गाँधी ने 7 से 14 तक लड़के व लड़कियों दोनों के लिए मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव किया। साथ ही स्त्रियों के लिए पाठ्यक्रम में ऐसे तत्वों को शामिलन करने का प्रस्ताव किया जो उन्हें उनकी भावी भूमिका तथा मातृत्व व गृहिणी के लिए तैयार करने में मददगार हो सके। लेकिन 1937 तक आते–आते उन्होंने अपने विचारों में परिवर्तन करते हुए इस बात का प्रस्ताव रखा कि चौथी या पांचवीं कक्षा तक तो लड़के या लड़कियों दोनों का पाठ्यक्रम समान हो तथा छठी कक्षा के बाद लड़कियों के पाठ्यक्रम में गृह–विज्ञान को भी शामिल किया जाए। यह रोचक है कि लड़कियों की उच्च शिक्षा के उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' के प्रयासों से सन् 1932 में लेडी इर्विन साइंस कॉलेज की स्थापना हुई। गाँधी ने महिलाओं को शिक्षक के रूप में प्राथमिकता प्रदान की और इस सम्मेलन में इस आशय का प्रस्ताव पास

किया कि जहाँ तक संभव हो प्रारंभिक अवस्था में लड़के व लड़कियों दोनों के लिए महिला शिक्षकों की नियुक्ति को प्राथमिकता प्रदान की जाए। गाँधी को इस बात का पूरा यकीन था कि आर्थिक आजादी महिला–सशक्तिकरण में अहम् भूमिका अदा कर सकती है। वह महिलाओं को चरखा, कताई व बुनाई के लिए निरंतर प्रोत्साहित एवं प्रेरित करते रहते थे। 1919 में गाँधीजी ने महिलाओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा– आपके पास 2 या 3 घंटे ऐसे होते हैं, जब आपके पास करने के लिए कुछ नहीं होता है। आप उसे मंदिरों में पूजा–अर्चना में बिताते हैं, मंदिरों में माला–जाप 'धर्म' है परन्तु वर्तमान समय में भक्ति का असली मर्म कपड़े के इस कार्य में निहित है। धनी परिवार की स्त्रियों को प्रतिदिन कम से कम 2 से 3 घंटे चरखा कताई व बुनाई का काम करना चाहिए तथा उसे भंडारगृहों में जमा करा देना चाहिए या उसे उपहार दे देना चाहिए। जो भी पैसे को ध्यान से रखकर कताई कार्य करेगा उसे प्रति पाउण्ड (सूत) 3 आना मिलेगा और पैसे की एक–एक पाई उपयोगी और हितकारी है। अपने द्वारा अर्जित पैसों से आप अपनी जरूरत की सामग्री खरीद सकती है जितना अधिक आप कताई करेंगी उतनी ही अधिक आपकी कमाई होगी। कमाई का यह एक श्रेष्ठ जरिया है। वास्तव में गाँधी ने यह महसूस किया कि स्वदेशी आंदोलन की सफलता तभी संभव है जब महिलाऐं व्यापक स्तर पर तथा बड़े पैमाने पर कताई व बुनाई का काम अपने हाथों में लेंगी। साथ ही वह इसके द्वारा महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त व स्वतंत्र करने का प्रयास भी कर रहे हैं। उन्होंने यंग इंडिया में लिखा कि चरखा कताई जहाँ मध्यम वर्ग की आय में इजाफा कर सकती है, वहीं यह निम्नवर्गीय परिवारों की आय का बड़ा हिस्सा या कभी–कभी एकमात्र हिस्सा भी बन सकती है।

गाँधी ने एक ओर महिलाओं को सामाजिक व सांस्कृतिक शोषण का शिकार पाया। वहीं दूसरी ओर उसे निचले स्तर से सामाजिक परिवर्तन का निर्णायक वाहक व उत्प्रेरक भी माना। यह चीज तब मुखर होकर हमारे सामने

आती है जब हम महिलाओं को माँ, पत्नियों, शिक्षकों तथा कार्यकर्त्ताओं के रूप में शराब की दुकानों का घेराव करते हुए तथा विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देते हुए देखते हैं। जाहिर है कि गाँधी परिवार व समाज में महिलाओं की प्रभावी सामाजिक भूमिका के प्रबल पैरोकार थे। वे उनमें समाज व राष्ट्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की महती जिम्मेदारी निहित करना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने महिलाओं को हस्तनिर्मित सूत उत्पादक के रूप में जो कि विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का सर्वाधिक निर्णायक हथियार था, स्वदेशी आंदोलन के केन्द्र में स्थापित किया। स्वदेशी व असहयोग आंदोलन के उनके कार्यक्रम महिलाओं की पारंपरिक भूमिकाओं व विचारों से प्रेरित थे। ऐतिहासिक रूप से कहा जाए तो महिलाएं घरेलू उपयोग हेतु प्रयुक्तम वस्त्रों की कताई व बुनाई के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी रही हैं तथा यह एक वैश्विक–प्रवृत्ति रही है। इस प्रकार से सुख व आधिपत्य वाले इस संसार में उसका संघर्ष मौन और अहिंसक रहा है। आश्चर्यजनक रूप से गाँधी ने महिलाओं की इन दो अभिन्न गुणों की पहचान कर उसे पारिवारिक गतिविधियों से राष्ट्रीय गतिविधियों में समाहित, संपूरित व एकीकृत कर दिया जिसके परिणामस्वरूप एक जनआधारित ठोस राष्ट्रवादी संघर्ष की नींव पुख्ता व परिणामोत्पादक हुई। महिलाओं की दृढ़ता व साहस के आगे ब्रिटिश साम्राज्य को भी नतमस्तक होना पड़ा। यह अपने आप में एक बहुत बड़ी सफलता थी और इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्होंने प्रायः उपेक्षित व नजरअन्दाज कर दिये गये तथाकथित 'महिला कार्य व श्रम' की महत्ता को स्थापित किया गया तथा उसे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता का पर्याय बनाया।

गाँधीजी ने अतीतकाल में स्त्रियों के सम्मान की तो प्रशंसा की लेकिन तत्कालीन समाज में मौजूद बुराइयों को भी रेखांकित किया। उन्होंने स्त्री–मुक्ति हेतु परंपराओं के प्रति अंधविश्वास और आधुनिकताओं के अंधानुकरण से बचते हुए एक व्यावहारिक एवं मानवीय मार्ग सुझाया। उनके

स्त्रीवादी चिन्तन के दो मुख्य तत्त्व हैं– पहला हर स्तर पर तथा हर मायने में स्त्री–पुरुष समानता और दूसरा, दोनों के विशिष्ट लैंगिक समानता या भिन्न के मद्देनजर उनके सामाजिक दायित्वों में भिन्नता। गाँधीजी का कहना है कि स्त्री जननी है और करूणा, प्रेम एवं त्याग की अधिष्ठात्री है। वह ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति और अहिंसा की अवतार है। अहिंसा का अर्थ है– असीमित प्रेम, जिसका आगे अर्थ है कष्ट सहने की असीमित क्षमता। मनुष्य की माँ अर्थात् स्त्री को छोड़कर वह कौन है जो इस क्षमता को अधिकतम मात्रा में प्रदर्शित कर सके। जब वह शिशु को गर्भ में धारण करती है तथा नौ महिनों तक कोख में पालती–पोसती है और इसी में निहित कष्टमय सुख प्राप्त करती है। वह प्रतिदिन कष्ट सहती है ताकि उसका बच्चा हर दिन विकसित हो। गाँधीजी कहते हैं कि उसे प्रेम को पूरी मानवता तक विकसित कर देना चाहिए। उसे भूल जाना चाहिए कि वह पुरुष की वासना का लक्ष्य थी अथवा हो सकती है। इस प्रकार वह पुरुष की माँ, उसकी निर्मात्री और निःशब्द नेता के रूप में उसके बराबर अपना गौरवपूर्ण स्थान ग्रहण करेगी। युद्धों में उलझी दुनिया को प्रेम एवं शांति की कला सिखाना उसी से संभव है। पुरुषों ने एक साजिश के तहत स्त्रियों को दबाकर दुनिया को नफरत एवं युद्ध में झोंक दिया है। हजारों वर्ष पूर्व से ही स्त्रियों पर आधिपत्य शुरु हो गया है। गाँधीजी कहते हैं कि दुनिया में शोषण की शुरुआत पुरुष द्वारा स्त्रियों के शोषण से हुई है। गाँधीजी कहते हैं कि समस्त रूढ़ियाँ और सामाजिक नियम केवल पुरुषों द्वारा बनाए गए हैं और वे सभी स्त्रियों के विरुद्ध हैं। मगर लम्बी गुलामी एवं प्रताड़ना की वजह से स्त्रियाँ हीन भावना से ग्रस्त हो गई हैं। उसने भी पुरुषों को अपने से श्रेष्ठ एवं प्रताड़ना की वजह से स्वामी मान लिया है और अपने आपको उसके रहमोकरम पर छोड़ दिया है। वे कहते हैं कि पुरुषों द्वारा स्वनिर्मित सभी बुराईयों में सबसे घृणित, वीभत्स एवं विकृत बुराई है। उसके द्वारा मानवता के आधे हिस्से (जो कि उनके लिए स्त्री जाति है न कि कमजोर एवं पिछड़ी जाति) को उनके

न्यायसंगत अधिकारों से वंचित करना। अतः स्त्रियों को इस अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध करना चाहिए और अपने अधिकार पाने हेतु आगे आना चाहिए। उन्होंने लिखा है– स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं लगाना चाहिए जो पुरुषों पर न लगाया गया हो। पुत्रों और पुत्रियों में किसी तरह का भेदभाव नहीं होना चाहिए। स्त्री–पुरुष दोनों के साथ समानता का व्यवहार किया जाना चाहिए।

गाँधीजी के अनुसार समानता का अर्थ वैसा नहीं है जैसा आजकल के स्त्रीवादी लोग मानते हैं। गाँधी यह नहीं चाहते हैं कि स्त्रियाँ पुरुष जैसी हो जाऐं या पुरुषों में 'कन्वर्ट' हो जाऐं अथवा पुरुषों की तरह शारीरिक शक्ति के प्रदर्शन को ही जीवन का अभीष्ट मान लें। उन्होंने स्वयं कहा है कि स्त्री–पुरुष समानता का अर्थ यह नहीं है कि दोनों समान काम–धंधे करें। वैसे स्त्रियाँ चाहे तो शस्त्र धारण कर सकती हैं लेकिन जो काम खासतौर से पुरुषों के लिए है उनसे स्त्रियों को विरत ही रहना चाहिए। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को एक–दूसरे का पूरक बनाया है। जिस तरह उनके आकार–प्रकार में भेद है, भिन्नता है उसी तरह उनके कार्य भी मर्यादित हैं। अर्थात् जिस तरह स्त्री को अंधेरे में और हीनदशा में रखना बुरा होता है, उसी तरह उसे पुरुष का काम सौंपना भी उस पर जुल्म करने के बराबर ही है। गाँधीजी मानते थे कि स्त्रियों को अपने शारीरिक बल एवं सौंदर्य बढ़ाने की बजाय अपने आत्मबल एवं चारित्रिक शक्ति के विकास पर ध्यान देना चाहिए। उनके शब्दों में– ''स्त्री शारीरिक बल में पुरुषों की बराबरी नहीं कर सकती है, परन्तु आध्यात्मिक बल उनमें पुरुषों से कहीं अधिक भरा है। पुरुष भले ही अपने पाश्विक बल पर गर्व किया करें, पर स्त्री अपनी शारीरिक निर्बलता की चिंता में ना पड़े। इतनी ही बात है न कि शरीर से कमजोर स्त्रियाँ आधी रात को बाहर कहीं अकेली न निकल सकेंगी। मगर यदि सीता के समान उनके अंदर सतीत्व की ज्वाला जल रही होगी तो वे मध्यरात्रि में

भी निर्भय होकर चाहे जहाँ अकेली जा सकती हैं। स्त्रियाँ शरीर को शक्तिशाली बनाने की अपेक्षा अपनी आत्मा व अपने मन को बहुत बलवान बनाऐं। कटार या तमंचा चलाने का अभ्यास करने की अपेक्षा साहस एवं आत्मबल बढ़ाने का प्रयास करें। गाँधी चाहते हैं कि पुरुष परिवार के लिए भरण पोषण के साधन जुटाऐं और स्त्रियाँ बच्चों के लालन–पालन एवं घरेलू प्रबंधन की अपनी जिम्मेदारी निभाऐं। उनके शब्दों में पुरुषों की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह परिवार के लिए 'रोटी' का अर्जन करे और स्त्रियों का यह दायित्व है कि वह परिवार एवं अपने बच्चों के पालन–पोषण में अपनी श्रेष्ठ भूमिका अदा करे। स्त्रियाँ मुख्य रूप से घर की गृहिणी होती हैं। अपने नौनिहालों की उत्तम परवरिश व देखभाल करना उनकी मुख्य जिम्मेदारी है। बिना उसके लालन–पालन के मानवता का अस्तित्व कदापि संभव नहीं है। इस तरह देश के लिए स्वस्थ, सुविकसित एवं संबुद्ध बच्चे तैयार करना अपने आप में स्त्रियों का उत्कृष्टतम व श्रेष्ठतम योगदान है।

गाँधीजी का कहना है कि स्त्रियों का वास्तविक आभूषण उनके उत्कृष्ट गुण हैं, उनके हुनर हैं, उनकी शुचिता है और उनका सतीत्व है। इसलिए आत्मा की पवित्रता अधिक महत्त्वपूर्ण है। बाह्य सौन्दर्य तो मात्र चमड़ी की सुन्दरता होती है जो कि क्षण–भंगुर है। गाँधीजी ने स्त्रियों से कहा– ''अपने शौक और मन की वासना का गुलाम न बनें। पुरुषों की दासी बनने की भी कोई जरूरत नहीं है। अपने इत्र–फुलेल, क्रीम–पाउडर और अन्य सौन्दर्य प्रसाधनों को धता बताओ आप अपनी सुगंध फैलाना चाहती हैं तो वह आपके हृदय–कुसुम से ही निकालनी चाहिए। आपका हृदय–कुसुम खिलेगा तो आप किसी खास पुरुष का मन मोहने की बजाय पूरी की पूरी मानव–जाति को ही अपने सुगंध से मुग्ध कर देंगी। गाँधीजी पुरुष और स्त्री दोनों को एक–दूसरे का अर्द्धांग या पूरक मानते थे। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है– गाँधीजी प्रत्येक नर 'अर्द्धनारीश्वर' और प्रत्येक नारी को 'अर्द्धनारेश्वर' बनाना चाहते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि स्त्रियाँ पुरुषों से अलग होकर स्वायत्त

स्त्री–समाज बना लें या समलैंगिक संबंधों को स्वीकारे। वे तो स्त्री–पुरुष के साथ–साथ होते हुए पुरुषों के दृष्टिकोण में गुणात्मक बदलाव चाहते थे। गाँधीजी ने एक सभा में स्वयं कहा था– मैं आशा करता हूँ कि आप लोगों का यह इरादा नहीं होगा कि पश्चिमी देशों की तरह भारत की स्त्रियाँ भी पुरुषों से बिल्कुल ही स्वतन्त्र हैं। यह चीज भी भारतीय संस्कृति की नहीं है। यदि यूरोप की उच्छृंखलता हमारे भारत में लायी गयी तो निश्चय ही इससे बेहिसाब हानि पहुँचेगी। जाहिर है कि वे यौन उच्छृंखलता और स्वतन्त्रता के नाम पर रोज–रोज सेक्स पार्टनर बदलने के खिलाफ थे। मगर वे विवाह को स्त्रियों के लिए अनिवार्य एवं अवश्यंभावी बंधन के रूप में नहीं स्वीकार करते थे। वे चाहते थे कि दोनों अपना–अपना व्यक्तित्व विकसित करें। वे तो ऐसे आदर्श स्थिति की वकालत करते थे जिसमें पुरुष एवं स्त्री दोनों ब्रह्मचर्य का पालन करें। यदि संभव हो तो वे विवाह करें ही नहीं अथवा करना पड़े तो दोनों का मिलन बौद्धिक एवं आध्यात्मिक मिलन हो। दोनों एक–दूसरे की ''मुक्ति'' में एक दूसरे के सहयोगी बनें। उनके ब्रह्मचर्य के प्रयोग को इसी दिशा में उठाया गया एक कदम मानना चाहिए।

सभी कुरीतियों का अंत हो– गाँधीजी स्त्रियों के समग्र–मुक्ति के उद्‌घोषक थे। उन्होंने दहेज प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा, वैधत्य के अभिशाप, पर्दा प्रथा आदि तमाम कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई। गाँधीजी के अनुसार दहेज आधारित विवाह खरीद–बिक्री का घृणित कारोबार है। इसलिए उन्होंने लिखा– ''यदि मेरे पास मेरे देखरेख में कोई लड़की होती तो उसे जीवनभर कुँवारी रखना पसंद करता बजाय इसके कि उसे किसी ऐसे व्यक्ति को सौंपता जो उसे अपनी पत्नी बनाने के एवज में एक पाई भी पाने की अपेक्षा रखता। उन्होंने दहेज प्रथा के साथ–साथ जाति प्रथा के उन्मूलन के लिए भी अंतर्जातीय विवाह की वकालत की। वे लड़के या लड़की की सहमति के बगैर विवाह थोपने के विरुद्ध थे। उन्होंने बाल–विवाह का भी विरोध किया। वे मानते थे कि पुनर्विवाह का जितना अधिकार विधुरों को है उतना

ही विधवाओं को भी है। अनैच्छिक वैधव्य अभिशाप है। उन्होंने लिखा है कि यदि कोई बाल विधवा पुनर्विवाह को इच्छुक हो तो उसे जातिच्युत या बहिष्कृत नहीं किया जाना चाहिए। मगर वे बढ़ी उम्र की विधवाओं के भोग–विलास हेतु पुनर्विवाह के पक्षधर नहीं थे। उन्होंने लिखा है– ''बाल विवाह में आत्मिक विवाह के लिए अवकाश नहीं है इसलिए बाल विधवाओं का पुनर्विवाह होना चाहिए। आत्मिक बाल–विवाह तो सावित्री ने किया, सीता ने किया, दमयंती ने किया। उनके विषय में हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि वैधव्य प्राप्त होने पर पुनर्विवाह करती।'' गाँधीजी ने पर्दा प्रथा को बर्बरतापूर्ण और समाज के लिए अहितकारी बताया। उन्होंने इस स्त्री–पवित्रता का रक्षक मानने से इंकार किया। उनके शब्दों में– ''पवित्रता स्त्रियों को बाहरी व अन्य मर्यादाओं में जकड़कर रखने से उत्पन्न होने वाली चीज नहीं है, उसकी रक्षा उन्हें पर्दे की दीवार से घेरकर नहीं की जा सकती। उसकी उत्पत्ति और विकास भीतर से होना चाहिए।'' उन्होंने वेश्यावृत्ति को स्त्रियों के बदतरीन स्थिति का शर्मनाक उदाहरण माना और इसे मिटाने के लिए काफी प्रयास किया। उन्होंने यहाँ तक कहा कि स्वराज्य का अर्थ है पतितों (वेश्याओं) का उद्धार। उन्होंने 'देवदासी–प्रथा' को नैतिक कोढ़ एवं ईश्वर की अवमानना के रूप में चिन्हित किया। वे किसी भी परम्परा के अंधानुकरण के खिलाफ थे। उन्होंने कहा कि यद्यपि परम्पराओं के सागर में गोते लगाना अच्छा है लेकिन उसमें डूब जाना आत्महत्या है।

गाँधीजी कहते हैं– ''यद्यपि यह सत्य है कि गर्भ निरोधक जनसंख्या नियंत्रण की समस्या को कुछ हद तक नियंत्रित कर पाने में सक्षम हैं। इसके माध्यम से सीमित आय वाले व्यक्ति अपने परिवार को आसान संकट से बचा सकते हैं। लेकिन इस माध्यम से व्यक्ति एवं समाज की जो नैतिक क्षति होती है वह अपूरणीय है। इस तरह से अपनी यौन भूख की तृप्ति की तलाश करने वालों के लिए विवाह एक कुत्सित माध्यम बन जाता है। अतः वे जनसंख्या नियंत्रण के लिए ब्रह्मचर्य (अविवाहित एवं विवाहित दोनों ही अवस्थाओं में) पर

जोर देते थे और महिलाओं को अधिक आत्मसंयमी मानते हुए उससे इस जिम्मेदारी को निभाने की अपेक्षा रखते थे। इस संबंध में एस.के.जौली का कहना है– जनसंख्या वृद्धि के लिए पुरुष अधिक जिम्मेदार हैं। इसके बावजूद स्त्रियों की महानता के अपने खोज के क्रम में गाँधी ने कई बार असंगत एवं अन्यायपूर्ण तरीके से महिलाओं पर आवश्यकता से अधिक बोझ डाल दिया। लेकिन यहाँ यह समझने की जरूरत है कि गाँधीजी चाहते थे कि स्त्रियाँ स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आगे जाऐं। गाँधीजी का मानना था कि जब तक स्त्रियों को आवश्यक शिक्षा नहीं मिलती तब तक भारत में स्त्रियों की हालत सुधर नहीं सकती है। स्त्री–पुरुष की अर्द्धांगिनी मानी जाती है। यदि हमारा आधा शरीर मुर्दा हो जाए तो हम जानते हैं कि हमें लकवा मार गया है और हम बहुत से कामों के लिए अयोग्य हो जाते हैं। इसी प्रकार स्त्री का जो उपयोग होना चाहिए यदि वह न हो तो सारे भारत को लकवा मार गया है, यही मानना पड़ेगा और ऐसी हालत में यदि भारत दूसरे देशों के आगे टिक न सके तो उसमें आश्चर्य की बात कौनसी है। इस तरह का विचार हर माता–पिता को अपनी लड़की के बारे में और सारे भारतवासियों को स्त्री–समाज के बारे में करना चाहिए। हमें ऐसी हजारों–लाखों वीर स्त्रियों की जरूरत है जो मीरा बाई और राबिया की बराबरी करे। गाँधीजी यह मानते थे कि आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री सशक्तिकरण के लिए जरूरी है। अतः उन्होंने कहा कि उत्तराधिकार एवं सम्पत्ति से संबंधित मामलों में भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार सुनिश्चित हों। उनमें स्त्रियों को राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक आजादी के साथ–साथ आर्थिक आजादी देने की भी वकालत की। उन्होंने स्त्रियों से कहा कि मंदिरों में मालाजाप करने की बजाय चरखा रखकर व कातकर देश के स्वराज एवं स्वावलंबन के यज्ञ में योगदान दें। उन्होंने सार्वजनिक जीवन में भी महिलाओं की व्यापक भागीदारी की अपील की। सत्याग्रह आंदोलन दांडी मार्च और अन्य संघर्षों के साथ–साथ रचनात्मक कार्यक्रमों में महिलाओं के योगदान की उन्होंने मुक्त

कंठ से सराहना की। उन्होंने यह भी लिखा है कि शराब की दुकानों और विदेशी वस्त्र प्रतिष्ठानों के घेराव का कार्य भी मुख्यतः स्त्रियों ने ही किया। गाँधीजी द्वारा अहिंसक जनसंघर्षों में स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी की वकालना करना उनकी इस मूल अवधारणा के विपरीत नहीं है कि स्त्रियाँ घर की पालन–पोषक हैं। वरन् उनका यह भी एक ख्याल था कि सत्याग्रह एवं अहिंसक संघर्ष में भागीदारी सुनिश्चित कर महिलाऐं संपूर्ण मानवता के पालन–पोषण की अपनी जिम्मेदारी को और अधिक सुविस्तृत एवं सुव्यापक करती है। संक्षेप में– गाँधीजी यह मानते थे कि स्त्रियों को अपना निर्णय स्वयं करने की भी स्वतंत्रता होना चाहिए, क्योंकि चयन की स्वतंत्रता के बगैर सभी तरह की स्वतंत्रता एवं नैतिकता की बातें बेईमानी है।

अंत में यह भी उल्लेखनीय है कि गाँधीजी के स्त्री संबंधी विचारों की जहाँ भी चर्चा होती है वहाँ गाँधीजी का वह फोटो जरूर छपता है जिसमें वे लड़कियों के कंधे पर हाथ रखकर घूमने निकलते हैं या प्रार्थना करने जाते हैं। इसे पश्चिम के रंग में रंगे विचारक के साथ–साथ भारतीय संस्कृति के ठेकेदार भी इस रूप में प्रचारित करते हैं मानो गाँधीजी बुढ़ापे के साथ रास–रंग में डूबे हैं। ऐसे लोग यह भी सवाल उठाते हैं कि गाँधीजी लड़कियों के कंधे पर हाथ रखकर क्यों निकलते हैं, लड़कों के कंधों पर क्यों नहीं? ऐसे लोगों को यह समझना चाहिए कि गाँधीजी को लड़के और लड़कियों में कोई भेद नहीं दिखायी देता। इस संबंध में श्रीभगवान सिंह लिखते हैं– ''भारत में बेटे को ही बुढ़ापे का सहारा माना जाता रहा है। लेकिन गाँधीजी ने जीवन के अंतिम दिनों में चलने के लिए आत्मा एवं मनु के कंधों का सहारा लेकर इस स्त्री–विरोधी समाज को यह संदेश दिया कि लड़कियाँ भी लड़कों की तरह बुढ़ापे का सशक्त सहारा हो सकती है तथा बन सकती है। फिर जो राष्ट्रपिता को सहारा दे सके, ऐसी शक्ति भला राष्ट्र के निर्माण में कैसे उपेक्षित की जा सकती है। गाँधीजी ने कहा था कि उनका जीवन ही विचार है। अतएव स्त्रियों के साथ उन्होंने जो जीवन जिया, उसे समग्रता के साथ

ध्यान में रखते हुए यही कहा जा सकता है कि स्त्री सशक्तिकरण के संदर्भ में गाँधीजी के विचार आज भी अनुकरणीय एवं वरेण्य हैं। जाहिर है कि इसके लिए ''भोग–विलास'' के चश्मों से हमें मुक्त होना ही पड़ेगा।

गाँधीजी के विचार महिलाओं के विशेष संदर्भ में

20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में जिस व्यक्ति ने भारतीय समाज में स्त्रियों के उत्थान के लिए सबसे अधिक कार्य किया वह थे 'मोहनदास कर्मचन्द गाँधी'। गाँधीजी ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के उदाहरण स्वरूप कहा था कि जब जैविकीय दृष्टि से स्त्री पुरुष समान हैं फिर स्त्रियों के साथ भेदभाव क्यों? इसके पीछे गाँधीजी का मानना था कि भारत में स्त्रियों की जो पद दलित स्थिति है, उसके पीछे विचारधारा और सामाजिक संरचना बहुत बड़े कारण रहे हैं। उनका मानना था कि किसी भी समाज के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है कि उसमें स्त्रियों की सामान्य स्थिति क्या है तथा समाज की विविध समस्याओं के प्रति उनमें कितनी जागृति है। भारतीय जन–जीवन के सभी पक्षों के परिष्कार के इच्छुक गाँधीजी जैसे क्रांतिदर्शी विचारक एवं कर्मशील व्यक्ति के लिए भारतीय समाज के इस पक्ष के सम्बन्ध में व्यापक वैचारिक एवं सुधारक आंदोलन शुरू किया। गाँधीजी से पूर्व भी अनेक सुधारकों ने इस पक्ष पर व्यापक संगठित प्रयास किया। स्त्रियों के सन्दर्भ में गाँधीजी के विचारों एवं कार्यों को निम्न दो भागों में भी बाँट सकते हैं, ये भाग हैं–

1. स्त्रियों के प्रति उनका सामान्य दृष्टिकोण तथा बाल–विवाह, विधवाओं की स्थिति तथा उनका पुनर्विवाह, पर्दा–प्रथा, वेश्याओं एवं देवदासियों आदि से सम्बन्ध परम्परागत समस्याओं के सम्बन्ध में उनके विचार तथा स्त्री–पुरूष समानता के प्रश्न पर गाँधीजी का विचार है कि 'जहां तक स्त्रियों के अधिकारों का सवाल है मैं कोई समझौता नहीं करूंगा। मेरी राय में, उन्हें ऐसी किसी कानूनी निर्योग्यता का शिकार नहीं बनाया जाना चाहिए

जो पुरूष पर लागू नहीं होती। मैं बेटे और बेटियों के साथ बिलकुल एक जैसा व्यवहार करना चाहूंगा।''[19]

स्त्री पुरूष समानता का अर्थ समझाते हुए वे कहते हैं– ''यह सही है कि स्त्री के आखेट करने अथवा भाला लेकर चलने पर कोई कानूनी बंदिश नहीं होनी चाहिए। लेकिन जो काम पुरूष का है, उसे करने से वह स्वभावतया झिझकती है। प्रकृति ने स्त्री और पुरूष को एक दूसरे का पूरक बनाया है। जिस प्रकार उनके शरीर का आकार परिभाषित हैं उसी प्रकार उनके काम भी परिभाषित है।[20]

उनका विचार था कि कानून बनाने का ज्यादातर काम पुरूषों के हाथ में रहा और इस स्वनिर्धारित काम को करते समय पुरूष ने सदा औचित्य और विवेक से काम नहीं लिया। स्त्रियों के पुनरूद्धार का सबसे बड़ा काम यह है कि उन कलंकों को मिटा दें जिन्हें शास्त्रों ने स्त्रियों के अनिवार्य और स्वःभावगत लक्षण बनाया है। स्त्रियों को अधिकार सम्पन्न बनाने के लिए सीता, दमयन्ती और द्रौपदी जैसी पवित्रता, दृढ़ता और संयम वाली नारियां यदि आएगी तो हिंदू समाज इन आधुनिक बहनों को वही आदर देगा जो वह बीते युग की महान देवियों को देता आया है। उनके शब्द भी शास्त्र के समान प्रमाणिक मानें जाएॅगे। हिंदू समाज में ऐसी क्रान्तियां हुई हैं और भविष्य में भी होंगी। वस्तुतः इससे धर्म को स्थिरता प्राप्त होगी।[21]

स्त्रियों की समानता को आगे स्पष्ट करते हुए गाँधीजी कहते हैं कि स्त्री पुरूष की सहचरी है। उसकी मानसिक शक्तियां पुरूष से जरा भी कम नहीं है। उसे पुरूष के छोटे से छोटे कामों में हाथ बंटाने का अधिकार है और आजादी का उसे उतना ही अधिकार है जितना पुरूष को। अपने क्षेत्र में उसकी सर्वोच्चता उसी प्रकार स्वीकार की जानी चाहिए, जिस प्रकार पुरूष की उसके क्षेत्र में। स्त्रियों की दुर्दशा के कारण बहुत से आन्दोलन अधूरे रह गये हैं। इसलिये लोगों का यह फर्ज है कि वे स्त्रियों को उनकी मौलिक

स्थिति का पूरा बोध करावें और उन्हें इस तरह की तालीम दें, जिससे वे जीवन में पुरूषों के साथ बराबरी के दरवाजे से हाथ बंटाने लायक बनें।[22]

वास्तव में गाँधीजी ने स्त्रियों को पुरूषों से किसी भी मामले में कम नहीं माना। उन्होंने स्त्रियों को समानता का अधिकार प्रदान करने की जोरदार वकालत की। उन्होंने ने स्त्री व पुरूष को समाज रूपी गाड़ी के दो पहिये माना, जिसमें एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व ही नहीं रह सकता। समाज रूपी गाड़ी विकास रूपी गन्तव्य की ओर तभी चलायमान हो सकती है जबकि स्त्री और पुरूष रूपी दोनों पहिए साथ–साथ तालमेल के साथ चलें। कुछ मामलों में तो स्त्रियां ही पुरूषों की संचालक शक्ति होती है और वो ही पुरूषों को किसी कार्य के लिए प्रेरित करती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में निःसंदेह नारियों का स्थान ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है।[23]

गाँधीजी ने नारियों को किसी भी अर्थ में अबला नहीं माना है, भले ही वे पुरूष समाज की नीतियों एवं परिस्थितियों के कारण एक लम्बे समय से शोषित होती रही हो। जो लोग नारी जाति को अबला मानकर उनके प्रति अपनी सांत्वना व्यक्त करना चाहते हैं, उनका वे खुलकर विरोध करते हैं। उनका मानना है कि ''नारी को अबला कहना उसकी मानहानि करना है। यह पुरूष का नारी के प्रति घोर अन्याय है। यदि बल का अर्थ पशुबल है, तो बेशक स्त्री पुरूष से कमजोर है, क्योंकि उसमें पशुता कम है। और यदि बल का अर्थ नैतिक बल है, तो स्त्री पुरूष से अन्नत गुनी श्रेष्ठ है। क्या उसमें पुरूष की अपेक्षा अधिक अंतः प्रज्ञा, अधिक आत्मत्याग, अधिक सहिष्णुता और अधिक साहस नहीं है? उसके बिना पुरूष का अस्तित्व सम्भव नहीं है। अगर अहिंसा हमारे जीवन का धर्म है तो भविष्य नारी जाति के हाथ में है... हृदय को आकर्षित करने का गुण स्त्री से ज्यादा और किसमें हो सकता है।''[24]

गाँधीजी के विचार में स्त्री आत्मत्याग की मूर्ति है, लेकिन दुर्भाग्य से वह यह महसूस नहीं करती कि उसे इस क्षेत्र में पुरूष से कितनी बड़ी अनुकूलता है। जैसा टॉल्सटॉय कहा करते थे, स्त्रियां पुरूष के जादुई प्रभाव

में फंसकर दुःख भोग रही है। यदि वे अहिंसा की शक्ति को पहचान लें, तो वे अबला कहलाना कभी पसन्द नहीं करेंगी।[25]

नारी जागरण को सार्थक बनाने के उद्देश्य से भारत के विभिन्न स्थानों में गाँधीजी ने महिलाओं की सभाएं लीं। 7 जुलाई 1920 को मुंबई में महिलाओं को संबोधित करते हुए उन्होंने आव्हान किया कि महिलाओं को अपने पति, भाईयों और लड़कों के कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होना चाहिए और उनसे पुरूषों के इन अन्यायों का निराकरण कराने का आग्रह करना चाहिए।[26] नारी के कर्तव्य के संबंध में उन्होंने कहा था–''स्त्रियां स्वयं को अबला मानकर ऐसे कार्यों के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकती हैं। निर्बलता तो शरीर के बारे में कही जा सकती है। जिस स्त्री को अपने अस्तित्व का भान हो गया है उसका स्त्रीत्व उसके आत्मबल से सुशोभित है। हमारे शास्त्र हमें बताते हैं कि सीता, द्रौपदी आदि स्त्रियों ने अपने तेज से दुष्टों को भयभीत कर दिया था। मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान की स्त्रियॉ अपने को अबला मानकर अपने राष्ट्र की रक्षा करने के अधिकार को न तजे। हिन्दुस्तान की स्त्रियों को जब आत्मविश्वास की प्रतीति हो जायेगी तभी वह सबल बनेगी। उसके बाद वहां जनरल डायर नहीं रह पायेंगे। ईश्वर पर विश्वास करके हमें किसी के शरीर बल से नहीं डरना चाहिए। शरीर बल के धनी अधिक से अधिक हमारे प्राण ले सकते हैं। इस शरीर के प्रति जब हम निडर हो जाते हैं तभी हम सिद्ध बनते हैं। इसलिए वास्तविक बल राक्षसी शरीर प्राप्त करने में नहीं वह तो मानसिक दृढ़ता, आत्मा की पहचान तथा मौत के प्रति निडर भाव रखने में है।''[27]

गाँधीजी का विश्वास था कि अहिंसा के उच्चतम और सर्वोत्कृष्ट स्वरूप का प्रदर्शन करना स्त्री का जीवन लक्ष्य होना चाहिए। क्योंकि अहिंसा के क्षेत्र में खोज करने और साहसिक कदम उठाने के लिए स्त्री अधिक उपयुक्त है। ... आत्म त्याग का साहस पुरुष की अपेक्षा स्त्री में निश्चित रूप से कहीं

ज्यादा होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि पशुता का साहस पुरूष में स्त्री की अपेक्षा ज्यादा होता है।[28]

गांधी की यह निश्चित धारणा थी कि नारी अहिंसा की मूर्ति है। अहिंसा का अर्थ है– अनन्त प्रेम और उसका अर्थ है– कष्ट सहन करने की असीम शक्ति। पुरूष की माता, स्त्री से बढ़कर इस शक्ति का परिचय अधिक से अधिक मात्रा में और किससे मिलता है? युद्ध में फंसी हुई दुनिया आज शान्ति का अमृत पान करने के लिए तड़प रही है। यह शान्ति–कला सिखाने का काम भगवान ने नारी को ही दिया है।[29]

स्त्री शिक्षा को भी गाँधीजी ने एक नया आयाम प्रदान किया। उनका मानना था कि ''पढ़ने लिखने से बुद्धि विकसित और तीव्र होती है एवं हमारी परोपकार करने की क्षमता बहुत बढ़ जाती है। शिक्षा के बिना लाखों लोगों को तो शुद्ध आत्मज्ञान भी प्राप्त नहीं हो सकता। अनेक लेखों में ऐसा अटूट ज्ञान–भण्डार भरा है जिससे हमें निर्दोष आनंद प्राप्त हो सकता है। यह आनंद भी विद्या के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। विद्या के बिना मनुष्य पशुवत है, इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। बल्कि यह यथार्थ है। इसलिए पुरूषों की भांति स्त्रियों के लिये भी शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। मेरा ख्याल यही नहीं है कि जैसे पुरूषों को शिक्षा दी जाती है वैसे ही स्त्रिों को भी दी जानी चाहिए। प्रथम तो जैसा मैंने कहीं–कहीं कहा है, हमारी सरकारी शिक्षा, प्रायः भ्रमपूर्ण और हानिकारक है और यह दोनों वर्गों के लिए पूर्णतः त्याज्य है। यदि उसके दोष दूर भी कर दिये जाये तो भी मैं नहीं मानता की वह स्त्रियों के लिए सर्वथा उपयुक्त ही है।''[30]

गाँधीजी के अनुसार स्त्री शिक्षा की कोई भी योजना बनाने में यह बुनियादी सत्य हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि किसी विवाहित जोड़ी की बाह्य प्रवृत्तियों में पुरूष अधिक सर्वोपरि है और इसलिये यह उचित ही है कि उसे उन बातों का अधिक ज्ञान होना चाहिए। दूसरी तरफ, घरेलू जीवन सर्वथा स्त्री का क्षेत्र है और इसलिये घरेलू मामलों का, बच्चों के

लालन–पालन और शिक्षा का स्त्रियों को अधिक ज्ञान होना चाहिये। बात यह नहीं है कि ज्ञान का कठोर विभागों में बंटवारा कर दिया जाय अथवा ज्ञान के कुछ विभागों का द्वार किसी के लिये बन्द कर दिया जाय, परंतु अगर शिक्षा क्रम का निर्माण इन बुनियादी सिद्धांतों के आधार पर उन्हें विवेकपूर्वक समझकर–नहीं किया जायेगा, तो स्त्री और पुरूष के सम्पूर्ण जीवन का विकास नहीं किया जा सकता।[31]

स्त्रियों की अंग्रेजी शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधीजी का विचार था कि यह आवश्यक नहीं कि स्त्रियां अजीविका के लिये काम करें अथवा व्यापारिक धन्धों की जिम्मेदारी उठाये। जिन थोड़ी स्त्रियों को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता या इच्छा हो, वे पुरूषों की पाठशालाओं में भर्ती हो जाये। यह कहना कि अंग्रेजी साहित्य का भण्डार पुरूष और स्त्री दोनों के लिए समान रूप से खोल देना चाहिए एक गलतफहमी थी। यदि स्त्रियों को साहित्य का शौक है तो उन्हें सारे संसार के साहित्य का अध्ययन करने दीजिए। परंतु जब शिक्षाक्रम सारे समाज की जरूरतों को ध्यान में रखकर तैयार किये जायें, तब उन मुठ्ठी भर लोगों की आवश्यकतायें पूरी नहीं कर सकते जिनमें साहित्यिक रूचि है।[32]

सह शिक्षा के बारे में गाँधीजी का कहना था कि पश्चिम में यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। यह प्रयोग पहले परिवार से शुरू करना चाहिए। परिवार में लड़के और लड़कियों को एक साथ स्वतंत्र और स्वाभाविक रूप से बढ़ना चाहिए। तब सह शिक्षा अपने आप आ जायेगी।[33]

गाँधीजी को इस बात का पूरा विश्वास था कि आर्थिक आजादी महिला सशक्तिकरण में अहम भूमिका अदा कर सकती है। वह महिलाओं को चरखा कताई व बुनाई के लिए निरंतर प्रोत्साहित व प्रेरित करते रहते थे। 1919 में नाडियाड में महिलाओं को संबोधित करते हुए उन्होंने जोर देते हुए कहा, ' आपके पास 2 या 3 घंटे ऐसे होते हैं जब आपके पास करने के लिए कुछ नहीं होता है। आप उसे मंदिरों में पूजा–अर्चना में बिताते हैं। मंदिरों में

मालाजाप 'धर्म' है परंतु वर्तमान समय में भक्ति का असली मर्म कपड़े के इस कार्य में निहित है... धनी परिवार की स्त्रियों को प्रतिदिन कम से कम 2 से 3 घंटे चरखा कताई व बुनाई का काम करना चाहिए। तथा उसे भंडारगृहों में जमा करा देना चाहिए या उसे उपहार दे देना चाहिए। जो भी पैसे को ध्यान में रखकर कताई कार्य करेगा उसे प्रति पाउण्ड 3 आना मिलेगा और पैसे की एक–एक पाई उपयोगी और हितकारी है। अपने द्वारा अर्जित पैसों से आप अपनी जरूरत की सामग्री खरीद सकती हैं जितना अधिक आप कताई करेंगी उतनी ही अधिक आपकी कमाई होगी। कमाई का यह एक श्रेष्ठ जरिया है।''[34]

राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी के सन्दर्भ में

स्त्रियों के संदर्भ में गाँधीजी द्वारा किये गये सभी प्रयासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण था उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय करना। वे प्रायः कहा करते थे कि स्त्री प्रेम और आत्मपीड़ा का मूर्त रूप है और उनके द्वारा चलाये गए अहिंसात्मक आंदोलन में जिसमें किताबी ज्ञान के स्थान पर पीड़ा एवं श्रद्धा से उद्भूत दृढ़ एवं अडिग हृदय अपेक्षित है। वे बड़ी सरलता से नेतृत्व का निर्वाह कर सकती हैं। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान गाँधीजी ने महिलाओं से दो मुद्दों पर सहयोग की अपेक्षा की मद्य–निषेध तथा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के विशेष संदर्भ में, उन्होंने कहा कि विदेशी शासन के विरुद्ध अनेक अहिंसात्मक आंदोलनों में स्त्रियों का योगदान पुरुषों की अपेक्षा अधिक रहा क्योंकि वे अधिक कष्ट सहन कर सकती है तथा उनमें अधिक साहस है। अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर जब पुरुष धरनों पर बैठे तो गाँधीजी ने कहा कि इस कार्य के लिए स्त्रियाँ अधिक उपर्युक्त हैं। उन्होंने कहा कि 1931 में जब पुरुषों ने शराब तथा विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना दिया था कि इसमें एक सीमा तक आशातीत व आशापूर्ण सफलता मिली, किन्तु इसमें हिंसा का समावेश हो जाने के कारण यह असफल रहा। जनचेतना जगाने के लिए धरना देने की योजना पुनः क्रियान्वित की जानी

चाहिए, किन्तु इसका अंतिम समय तक अहिंसात्मक बना रहना आवश्यक है। गाँधीजी ने कहा कि पुरुषों पर सर्वाधिक प्रभावी अपील स्त्रियों की हो सकती है। उनका अभ्यर्थना विदेशी वस्त्रों के दुकानदारों तथा खरीददारों एवं शराब की दुकान वालों और मधसेवियों का हृदय द्रवित कर देगी। गाँधीजी का यह भी मत था कि इस प्रकार के शांतिपूर्ण तथा अहिंसात्मक आंदोलन के संदर्भ में सरकार चुप होकर नहीं बैठ सकती। कालान्तर में गाँधीजी ने इस कार्य में स्त्रियों द्वारा किये गये आन्दोलन में योगदान की सराहना की। किन्तु इस बात पर खेद प्रकट किया कि सविनय अवस्था आंदोलन के वापस लिए जाने के बाद उनके कार्य में शिथिलता आ गई। उन्होंने उन्हें याद दिलाया कि महानिषेध की योजना किसी कार्यकाल विशेष तक सीमित नहीं है वरन् उन्हें शराबबंदी के लिए तब तक अपना आंदोलन जारी रखना है जब तक कि पूरे देश में यह क्रियान्वित नहीं हो जाती।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में जन सामान्य की राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने के लिए गाँधीजी ने खादी और चरखे को दो अत्यन्त प्रभावी प्रतीकों के रूप में प्रयोग किया। खादी और चरखा आत्म निर्भरता का प्रतीक है। उन्होंने महिलाओं से आह्वान किया कि अपने तन से विदेशी वस्त्र उतार फेंके तथा खादी की साड़ी धारण करें। जो स्त्रियों की अभियांत्रिक पवित्रता का द्योतक करती है। वे चाहते थे कि स्त्रियाँ न केवल खादी पहने वरन् अपने अवकाश के क्षणों में चरखा चलाकर खादी तैयार भी करें। उन्होंने कहा कि चरखा एक जीविकोपार्जन का साधन नहीं है बल्कि एक राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। राष्ट्रीय आंदोलन में नारी को सक्रिय करने में गाँधीजी को महत्ती सफलता प्राप्त हुई। सविनय अवज्ञा आंदोलन में जितनी बड़ी संख्या में समाज के विविध वर्गों की स्त्रियों ने भाग लिया उससे इसका अनुमान लगाया जा सकता है कि गाँधीजी के आंदोलन में विशेषतः सविनय अवज्ञा आंदोलन में स्त्रियों का भाग लेना एक क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन का द्योतक है। इस संबंध में गाँधीजी ने कहा कि आंदोलन काल में जेल में जब स्त्रियों की भूमिका की खबर मिली

तो सभी बंदी सत्याग्रही रोमांचित हो उठे और उनका हृदय भारतीय स्त्रियों से गर्व से भर उठा। नमक सत्याग्रह के दौरान स्त्रियों ने अपने साड़ी के पल्लों में नमक उठाया। वरिष्ठ महिलाओं के नेतृत्व में शराब की दुकानों पर धरना दिया गया। केसरिया साड़ियों में महिलाओं ने शराब की दुकानों के सामने धरना दिया और लोगों से विदेशी वस्त्रों को न खरीदने की अभ्यर्थना की। आंदोलन के दौरान स्त्रियों का बिना किसी हिचकिचाहट के जेल जाना सामान्य बात हो गई। इसके अतिरिक्त गाँधीजी स्त्रियों की अस्पृश्ता निवारण के लिए भी काम करने को कहा था। उनकी यह विशेष इच्छा थी कि स्त्रियाँ हरिजनों को मंदिर प्रवेश के कार्य से संबंधित हो। 1931 में कराची में सम्पन्न हुये अखिल भारतीय कांग्रेस सम्मेलन में प्रस्ताव से गाँधीजी को प्रसन्नता हुई थी। उन्होंने कहा कि विविध महत्त्वपूर्ण नौकरियों और पदों के द्वारा समान रूपेण स्त्रियों के लिए भी खोल देना चाहिए। इससे उन्हें उन विविध अत्याचारों से मुक्ति मिल सकेगी जो अब तक उन्हें भोगना पड़ा है। उन्हें इस बात का बड़ा गर्व है कि एनीबीसेन्ट एवं सरोजिनी नायडू जैसी महान नारियों ने कांग्रेस के उच्चतम पदों को सुशोभित किया है।

यह निर्विवाद है कि भारतीय राष्ट्रीय संग्राम में इतने बड़े पैमाने पर महिलाओं का सक्रिय सहयोग देना देश के इतिहास में एक अनोखी और नई बात थी। गाँधीजी ने एक नई परम्परा का श्री गणेश किया। जिससे देश में सामाजिक और राजनीतिक जीवन में स्त्रियों को समुचित भूमिका के निर्वाह के योग्य बनाया जा सके। उनके सरल व्यक्तित्व एवं चारित्रिक पवित्रता ने स्त्रियों को आकर्षित किया और राष्ट्रीय आंदोलन में उनके साथ महिलाओं ने पूरा तारतम्य स्थापित किया। पुरुषों को विश्वास था कि गाँधीजी के नेतृत्व में चल रहे अहिंसात्मक आंदोलन में उनके घर की स्त्रियाँ सुरक्षित हैं। इस कारण स्वतंत्रता संग्राम में उन्हें भाग लेने देने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। गाँधीजी के मन में स्त्रियों के प्रति बड़ा आदर था और स्त्रियाँ भी उन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देखती थी। इस पारस्परिक विश्वास तथा समान भाव के

द्वारा ही स्वतन्त्रता संग्राम के राष्ट्रीय स्तर पर स्त्रियों को सक्रिय सहयोग बना रहा। यद्यपि गाँधीजी के चिन्तन का आधार बिन्दू सत्य एवं अहिंसा थे। गाँधीजी का सामाजिक दर्शन भी इन्हीं विचारों से प्रभावित था। गाँधीजी ने अहिंसा को सामाजिक जीवन का सद्गुण स्वीकारा है। गाँधीजी के शब्दों में मेरे राय में अहिंसा को बल पर व्यक्तित्व सद्गुण नहीं है। अपितु वह एक सामाजिक सद्गुण भी है। जिसका विकास अन्य सद्गुणों की भाँति किया जाना चाहिए। गाँधीजी के अनुसार समाज रूपी रथ के दो पहियों के रूप में नारी और पुरुष की कल्पना करते हैं। गाँधीजी यह विश्वास करते थे कि व्यक्ति अपने स्वधर्म का पालन कर परमपद को प्राप्त कर सकता है इसलिए जहाँ भी जिस वृत्ति में रहें हमें अपना निभाना चाहिये।

गाँधीजी के अनुसार महिलाओं के पुनरोत्थान का काल ब्रिटिश काल से शुरु होता है। ब्रिटिश काल की अवधि में हमारे समाज की सामाजिक व आर्थिक संरचनाओं में अनेक परिवर्तन किये गये। ब्रिटिश शासन के 200 वर्षों की अवधि में स्त्रियों के जीवन में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अनेक सुधार आए। औद्योगीकरण, शिक्षा का प्रसार, सामाजिक आंदोलन व महिला संगठनों का उदय व सामाजिक विधानों ने स्त्रियों की दशा में बड़ी सीमा तक सुधार की ठोस शुरुआत की। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक स्त्रियों की निम्न दशा के प्रमुख कारण अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, धार्मिक निषेध, जाति–बन्धन, स्त्री नेतृत्व का अभाव तथा पुरुषों का उनके प्रति अनुचित दृष्टिकोण आदि थे। गाँधीजी ने हिन्दू संस्कृति में स्त्रियों की एकान्तता तथा उनके निम्न स्तर के लिए पाँच कारणों को उत्तरदायी ठहराया है, ये हैं– हिन्दू धर्म, जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार, इस्लामी शासन तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद। हिन्दूवाद के आदर्शों के अनुसार पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ होते हैं और स्त्रियों व पुरुषों को भिन्न–भिन्न भूमिकाऐं निभानी चाहिए। स्त्रियों से माता व गृहिणी की भूमिकाओं की और पुरुषों से राजनीतिक व आर्थिक भूमिकाओं की आशा की जाती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार द्वारा उनकी आर्थिक, सामाजिक,

शैक्षणिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार लाने तथा उन्हें विकास की मुख्य धारा में समाहित करने हेतु उनके कल्याणकारी योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया गया है। महिलाओं को विकास की अखिल धारा में प्रवाहित करने, शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति सजग करते हुए उनकी सोच में मूलभूत परिवर्तन लाने, आर्थिक गतिविधियों में उनकी अभिरूचि उत्पन्न कर उन्हें आर्थिक–सामाजिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की ओर अग्रेसित करने जैसे अहम उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पिछले कुछ दशकों में विशेष प्रयास किये गये हैं। 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध और अब 21वीं सदी के प्रारम्भ में बराबरी व्यवहार वाले जोड़े बनने लगे हैं। नौकरी वाली नारी के साथ पुरुष की मानसिकता में बदलाव आया है। आर्थिक दृष्टि से नारी अर्थ–चक्र के केन्द्र की ओर बढ़ रही है।

अतः गांधीजी का मानना था कि मानव जाति को विकास करना है तो महिलाओं का उत्थान करना होगा। महिलाओं का विकास होने पर समाज का विकास स्वतः हो जायेगा। महिलाओं को शिक्षा देने तथा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए जो सुधार आंदोलन प्रारम्भ हुआ उससे समाज में एक नयी जागरूकता उत्पन्न हुई है। बाल–विवाह, भ्रूण–हत्या पर सरकार द्वारा रोक लगाने का अथक प्रयास हुआ है। शैक्षणिक गतिशीलता से पारिवारिक जीवन में परिवर्तन हुआ है। गाँधीजी ने कहा था कि एक लड़की की शिक्षा एक लड़के की उपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लड़के को शिक्षित करने पर वह अकेला शिक्षित होता है किन्तु एक लड़की की शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। शिक्षा ही वह कुंजी है जो जीवन के वह सभी द्वार खोल देती है जो कि आवश्यक रूप से सामाजिक हैं। शिक्षित महिलाओं को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय होने में बहुत मदद मिली। महिलाऐं अपनी स्थिति व अपने अधिकारों के विषय में सचेत होने लगी। शिक्षा ने उन्हें

आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक न्याय तथा पुरुष के साथ समानता के अधिकारों की माँग करने को प्रेरित किया।

गाँधीजी के अनुसार संवैधानिक अधिकारों में विभिन्न कानूनों के द्वारा महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार मिलने से उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ। महिलाओं की विवाह विच्छेद परिवार की सम्पत्ति में पुरुषों के समान अधिकार दिये गये। दहेज पर कानूनी प्रतिबन्ध लगा तथा उन व्यक्तियों के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी जो दहेज की मांग को लेकर महिलाओं का उत्पीड़न करते हैं। संयुक्त परिवारों के विघटन होने से जैसे–जैसे एकांकी परिवार की संख्या बढ़ी इनमें न केवल महिलाओं को सम्मानित स्थान मिलने लगा बल्कि लड़कियों की शिक्षा को भी एक प्रमुख आवश्यकता के रूप में देखा जाने लगा। वातावरण अधिक समताकारी होने से महिलाओं को अपने व्यक्तित्व का विकास करने के अवसर मिलने लगे। महिलाओं की शिक्षा समाज का आधार है। समाज द्वारा पुरुष को शिक्षित करने का लाभ केवल पुरुष हो जाता है जबकि महिला शिक्षा का स्पष्ट लाभ परिवार, समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र हो होता है। चूंकि महिला ही माता के रूप में बच्चे की प्रथम अध्यापक बनती है। महिला शिक्षा एवं संस्कृति को सभी क्षेत्रों में पर्याप्त समर्थन मिला। यद्यपि कुछ समय तक महिला शिक्षा के समर्थक कम किन्तु आज समय एवं परिस्थितियों ने महिला शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है। आज की स्त्री की अस्मिता का प्रश्न मुखर होता जा रहा है। अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए संघर्ष करती हुई स्त्रियों ने लम्बा रास्ता तय कर लिया है, परन्तु आज भी एक बड़ा हिस्सा सदियों से सामाजिक अन्याय का शिकार है। ''जब–जब स्त्री अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहती है तब–तब जाने कितने ही रीति–रिवाजों, परम्पराओं, पौराणिक आख्यानों की दुहाई देकर उसे गुमनाम जीवन जीने पर विवश कर दिया जाता है।''

इतना सब कुछ देखने के बाद भी पता नहीं क्यों लोगों को आज भी ऐसा लगता है कि लड़कियाँ बोझ हैं। सब कहते हैं हमारा देश तरक्की कर रहा है। सभी का कहना है कि हम पहले के मुकाबले काफी हद तक पढ़–लिख गये हैं, हम काफी हद तक शिक्षित हैं, अब भी हमारे समाज में लड़का और लड़की के बीच बहुत ज्यादा भेंदभाव किया जाता है और यह बात हम सबसे छिपी नहीं है। इस बात से हम अच्छी तरह वाकिफ़ हैं कि एक ही घर में अगर लड़का जन्म ले तो उसकी खुशी में मिठाईयाँ बाँटी जाती हैं, उत्सव मनाया जाता है और वहीं दूसरी ओर अगर लड़की जन्म ले तो उसको बोझ समझा जाता है जो कि हमारे देश का भविष्य है, उसका आने वाला कल हैं। यह हमें सोचना चाहिए कि हमारे देश में इन असामाजिक तत्त्वों को कैसे हटाया जाये। हमारे देश का उद्धार कैसे हो। हम यह कर सकते हैं क्योंकि हम पर देश का भविष्य टिका है, हमें इन अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठानी होगी। उन्हें उनका हक दिलाना होगा तभी हमारे देश का उद्धार संभव है।

सब तरह के निर्णयों में महिलाओं को सहभागी रहे ऐसा आग्रह गत अनेक वर्षों से भारत में ही नहीं, अपितु सारे संसार के देशों में हो रहा है, परंतु महिलाओं में निर्णय क्षमता है, निश्चय है, और काम करने की क्षमता है, यह पूरे विश्व में सहज ही कोई मानता नहीं था। पुरूषों को अपनी क्षमता साबित करने की जरूरत नहीं है परंतु महिलाओं को पग–पग पर अपनी काबलियत सिद्ध करनी पड़ती है। राजनीति के क्षेत्र में विशेष रूप से महिलाओं की क्षमता के लिए पुरूष, आशंकित रहता है। राजनीति पुरूष वर्ग का ही क्षेत्र है ऐसा माना जाता रहा है।[35]

स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति इस बात से जानी जा सकती है कि सत्ता के स्वरूप निर्धारण और उसमें भाग लेने के मामले में उन्हें कितनी समानता और आजादी प्राप्त है और इस सन्दर्भ में उनके योगदान को समाज कितना महत्व देता है। भारतीय संविधान में स्त्रियों की राजनीतिक समानता

को मान्यता दिया जाना न केवल परम्परागत भारतीय समाज से विरासत में प्राप्त प्रतिमानों की तुलना में एक बिलकुल नया कदम था, अपितु उस समय के सर्वाधिक उन्नत देशों के राजनीतिक आदर्शों से भी बढ़कर था। स्त्रियों की राजनीतिक समानता की प्राप्ति में जिन दो प्रमुख शक्तियों ने उत्प्रेरकों का काम किया, वे थीः राष्ट्रीय आन्दोलन और महात्मा गाँधीजी का नेतृत्व।

उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार–आन्दोलनों के प्रयास परम्परागत पारिवारिक ढांचे में ही स्त्रियों की स्थिति सुधारने तक सीमित थे। किंतु उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के संधि–स्थल पर स्त्रियों का एक छोटा वर्ग अपने घरों से बाहर, समाज कल्याण की गतिविधियों में, विशेषतः स्त्री–शिक्षा, समाज में दुर्बल वर्गों के कल्याण और संकटग्रस्त लोगों की सहायता के कार्य में स्वेच्छा से भाग लेने लगा। इससे भी छोटे एक समूह ने क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लिया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में महिला संगठनों का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने राजनीतिक अधिकारों की मांग शुरू की। 1917 में श्रीमती सरोजनी नायडू के नेतृत्व में भारतीय महिलाओं के एक प्रतिनिधि मण्डल ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में पुरूषों के समानता के आधार पर स्त्रियों के मताधिकार के लिए मांग पेश की। 1919 के सुधार अधिनियम ने केवल उन स्त्रियों को मताधिकार दिया जो संपन्न तथा शिक्षित थी। विदेशी शासकों को यह विश्वास ही नहीं होता था कि भारतीय समाज भी कभी स्त्रियों को पुरूषों का बराबर का साझीदार मानेगा। वे स्वयं भी स्त्रियों को एक अलग राजनीतिक शक्ति नहीं मानते थे।[36]

इन सभी दृष्टिकोणों से बिलकुल भिन्न दृष्टिकोण था महात्मा गांधी का। उन्होंने अपने को स्त्रियों के अधिकारों के मामलों में किसी तरह का समझौता न करने वाला घोषित कर दिया था। उनका विश्वास था कि समाज के पुनर्निर्माण में स्त्रियों को एक सुनिश्चित भूमिका अदा करनी थी और सामाजिक न्याय लाने के लिए उनको समानता के अधिकार को मान्यता देना एक अनिवार्य कदम था। स्त्रियों के मताधिकार को भी उन्होंने अपना सतत

और संपूर्ण समर्थन दिया था। स्वतंत्रता आन्दोलन में स्त्रियों के भारी संख्या में भाग लेने के फलस्वरूप उनके इस प्रयास ने राजनीतिक और सामाजिक संभ्रान्त वर्ग पर, जिसमें इन वर्गों की स्त्रियां भी सम्मिलित थी, प्रत्यक्ष प्रभाव डाला।[37]

गाँधीजी के जीवन का महान उद्देश्य राजनीति की नैतिकता को प्रतिष्ठित कर उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन लाना था। अपने व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन के अनेक प्रयोगों और अनुभवों के आधार पर वे इस बात से और भी अधिक आश्वस्त हो गये थे कि आज मानव संबन्धों के विभिन्न क्षेत्रों की अनेकानेक समस्याओं का स्थायी और प्रभावकारी समाधान तभी हो सकता है। जब हम अपने जीवन में सत्य और अहिंसा का पालन करें। उन्होंने भारतीय स्त्रियों में सत्य और अहिंसा के पालन का गुण देखा था। यही कारण है कि वे स्त्रियों को राजनीति में शामिल कर स्वाधीनता आन्दोलन को सफल बनाना चाहते थे।[38]

गाँधीजी स्वाधीनता आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी के पूर्ण पक्षधर थे। वे महिलाओं की सभाओं में अपने भाषणों में, आन्दोलन में उनकी भागीदारी अनिवार्य बताते थे। साथ ही उन्हें यह कहकर प्रेरित करते थे कि देवियों और वीरांगनाओं की तरह आन्दोलन में उनकी अपनी अलग भूमिका थी और उनमें इस भूमिका को निभाने की शक्ति और हिम्मत भी उन्होंने महिलाओं को विश्वास दिलाया कि आन्देलन को उनके महत्वपूर्ण योगदान की जरूरत थी। वे कहते थे कि जब महिलाएं सत्याग्रह आन्दोलन में शामिल होंगी तभी पुरूष भी आन्दोलन में पूरा सहयोग दे पायेंगे। अपने मध्यमवर्गीय अनुयायियों को उन्होंने यह याद दिलाया कि 85 प्रतिशत भारतीय महिलायें निर्धनता और अज्ञान के अंधकार में डुबी हुई थी।

उन्होंने महिला नेताओं से कहा कि उन्हें सामाजिक सुधार, महिला शिक्षा एवं महिला अधिकारों के लिए कानून बनाने के लिए काम करना चाहिए, ताकि उन्हें उनके बुनियादी अधिकार मिल सके। उन्होंने कहा कि

महिला नेताओं को सीता, द्रौपदी और दमयन्ती की तरह सात्विक दृढ़ और नियंत्रित होना चाहिए तभी वह स्त्रियों के भीतर पुरूषों के साथ बराबरी का भाव जगा सकेंगी और अपने अधिकारों के प्रति सचेत तथा स्वतंत्रता के प्रति जागृत कर सकेंगी। साथ ही मुक्ति का रास्ता दिखाते हुए उनके अपने क्षेत्र में उनको शीर्ष स्थान दिला सकेंगी।[39]

'यंग इण्डिया' में 11 अगस्त 1921 को गांधी ने लिखा था– ''पिछले बारह महीनों में हिन्दुस्तान की औरतों ने देश के लिये गजब का काम किया है। तुमने चुपचाप दया की देवियों का काम किया है। तुमने अपना नकद रूपया और बढ़िया जेवर दिया है। तुमने घर–घर घूमकर चन्दा किया है। तुम में से कुछ ने धरना देने में मदद दी है। तुम में से कुछ को रंग बिरंगी बढ़िया पोशाकें पहनने की और दिन में कई बार कपड़े बदलने की आदत थी। उसके बजाय तुमने सफेद और स्वच्छ परन्तु भारी खादी की साड़ी अपना ली है, जो स्त्री की सहज पवित्रता का परिचय देती है। यह सब तुमने हिन्दुस्तान की खातिर, खिलाफत की खातिर और जजबात की खातिर किया है। तुम्हारी बात और काम में कोई छल नहीं है। तुम्हारा त्याग सर्वथा शुद्ध है। उसमें क्रोध और घृणा की छाया भी नहीं होती। मैं तुम्हारे सामने कबुल करता हूं कि हिन्दुस्तान भर में तुम्हारी तरफ से जितने प्रेम के साथ हार्दिक मदद मिली हैं उससे मुझे पक्का भरोसा हो गया है कि ईश्वर हमारे साथ है यह आन्दोलन आत्म शुद्धि का आन्दोलन है, इसे सिद्ध करने के लिये इस बात के सिवा कि हिन्दुस्तान की लाखों स्त्रियां इसमें क्रियात्मक सहायता दे रही है और किसी सबूत की जरूरत नहीं है। स्वराज्य की विजय में हिन्दुस्तान की स्त्रियों का उतना ही हिस्सा होना चाहिए जितना पुरूषों का। यह भी सम्भव है कि इस शान्त लड़ाई में स्त्री पुरूष से बाजी मार ले जाये और उसे कोसों पीछे छोड़ दें। हम जानते हैं कि धर्म के प्रति अपनी भक्ति में वह पुरूषों से सदा आगे रही है। शान्त और शालीनतापूर्ण तपस्या नारी–जाति का स्वभाव–सिद्ध लक्षण

है। स्त्री त्याग की मूर्ति है। जब वह कोई चीज शुद्ध और सही भावना से करती है तो पहाड़ो को हिला देती है।''[40]

भारत की महिलाओं के प्रति गाँधीजी का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने उनकी समाज में परंपरागत भूमिका को चुनौती दिए बगैर उन्हें भारत के राजनीतिक आन्दोलन का एक मुख्य आधार बनाया।[41] राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी को तीन प्रमुख स्तरों पर इंगित किया जा सकता है। प्रथम–वे सामान्य महिलायें जिन्होंने सत्याग्रह में हिस्सा लिया, किन्तु जो किसी भी राजनीतिक अथवा सामाजिक संगठन से औपचारिक रूप से संबंधित नहीं थी। द्वितीय– वे महिलायें जो गांधीवादी राजनीति से प्रभावित होकर समाज सुधार के उद्‌देश्य से सक्रिय हुई, किन्तु इनकी भागीदारी कार्य एवं क्षेत्र की दृष्टि से सीमित थी।

तृतीय– वे कुलीन महिलायें जिनके परिवार राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रतिबद्ध थे एवं इसके कारण ऐसी महिलाओं का सार्वजनिक राजनीति में प्रवेश तथा भूमिका सरल एवं स्वाभाविक मानी गयी। भारत में महिला स्वतंत्रता आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन की राजनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है।[42]

असहयोग आन्दोलन में गाँधीजी ने यह प्रयास किया था कि महिलाओं को इस आन्दोलन से जोड़कर महिलाओं के संघर्षों को राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष के साथ जोड़ दिया जाए। लेकिन उन्होंने महिलाओं के लिए ऐसा कार्यक्रम बनाया कि वे घर में रहकर आन्दोलन में हिस्सा ले सकती थीं। जहां असहयोग आन्दोलन में सरकारी शिक्षण संस्थाओं न्यायालयों और विधायिकाओं का बहिष्कार किया गया, वहीं स्वदेशी कार्यक्रम के तहत सरकारी चीजों का बहिष्कार करना, खादी कातना और पहनना अनिवार्य था। ये दोनों ही कार्य महिलाओं की घरेलू भूमिका के साथ पूर्ण किए जा सकते थे।

गाँधीजी का खादी कातने और पहनने पर जो जोर और प्रेम था उसने राष्ट्रीयता के सन्देश को हर एक घर तक पहुंचाने में मदद की। यह कार्य एक ऐसा माध्यम सिद्ध हुआ जिसने महिलाओं के निजी और राजनीतिक एवं

सार्वजनिक जीवन के अन्तर को एक क्षण में समाप्त कर दिया। खादी पहनने का अर्थ था विदेशी शासन का विरोध करना, गरीबों के साथ पहचान बनाना और आत्मनिर्भरता के सिद्धांत का खुल कर समर्थन करना।[43] इसी प्रकार सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान गाँधीजी ने महिलाओं से दो मुद्‌दों पर सहायता की। अपेक्षा की मद्यनिषेध तथा विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार। उन्होंने कहा कि विदेशी शासन के विरूद्ध उनके अहिंसात्मक आन्दोलन में महिलाओं का योगदान पुरूषों की अपेक्षा अधिक होना चाहिए। उनकी मान्यता थी कि पुरूषों पर सबसे प्रभावी अपील स्त्रियों की ही हो सकती है। उनकी अभ्यर्थना विदेशी वस्त्रों के दूकानदारों तथा खरीददारों एवं शराब की दुकान वालों और मद्यसेवियों का हृदय द्रवित कर देगी। कालान्तर में उन्होंने इस कार्य में स्त्रियों द्वारा किए गए महत्वपूर्ण योगदान की सराहना की किन्तु इस बात के लिए खेद प्रकट किया कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन के वापस ले लिए जाने के बाद उनके कार्य में शिथिलता आ गई। उन्होंने उन्हें याद दिलाया कि मद्य निषेध की योजना किसी कार्यकाल विशेष तक सीमित नहीं थी, वरन् उन्हें शराब बन्दी के लिए तब तक अपना आन्दोलन जारी रखना चाहिए जब तक कि पूरे देश में यह क्रियान्वित नहीं हो जाती।[44]

यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में इतने बड़े पैमाने पर महिलाओं का सक्रिय सहयोग देश के इतिहास में एक अनोखी और नयी बात थी। गाँधीजी ने एक नई परम्परा का श्री गणेश किया जिसने देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में स्त्रियों को समुचित भूमिका का निर्वाह करने योग्य बनाया। महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता के द्वार खुलने से महिलाओं के प्रश्नों और समस्याओं को राष्ट्रीय स्तर पर लाने में मदद मिली। 1925 में सरोजिनी नायडू का चयन कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए किया गया। महिला मुद्‌दों का राष्ट्रीय आन्दोलन में समावेश होने से कांग्रेस के कई नेताओं में महिलाओं को समान अधिकार मिलने के विषय पर जागरूकता पैदा करने में मदद की। सार्वजनिक जीवन में कर्य करने से महिलाओं को एक

नया आत्मविश्वास प्राप्त हुआ। 1931 के कराची अधिवेशन में कांग्रेस ने महिलाओं की राजनीतिक समानता का समर्थन करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया। यहां यह उल्लेखनीय है कि गाँधीजी ने महिलाओं को किसी भी प्रकार के संरक्षण पर निर्भर रहने से हमेशा मना किया और यही कारण था कि वे महिलाओं के लिए किसी भी प्रकार के आरक्षण के समर्थक नहीं थे।[45]

इस प्रकार गाँधीजी ने स्त्रियों में पारिवारिक भावना से भी व्यापक सामाजिक भावना पैदा करने की कोशिश की और उसके लिये अन्दर से मानसिक विकास करने की और बाहर से सबकी सेवा करने में मदद देने की बात सामने रखी उनका कथन था– ''बहनों के बीच सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। आज स्त्री–सेविकाओं की खास जरूरत है, क्योंकि स्त्रियों के हाथ में स्वराज्य की कुँजी है। तुम कुशल बनकर पवित्र जीवन बिताकर, सारे भारतवर्ष में फैल जाओ। लोगों का यह ख्याल कि स्त्री भीरू और अबला ही होती है गलत साबित कर देना।''[46]

इसमें संदेह नहीं कि गांधी युग के साथ स्त्री–जागृति के एक खास युग का आरंभ होता है। गाँधीजी का आदर्श यह था कि पुरूष पुरूष रहते हुए स्त्री बने और स्त्री स्त्री रहते हुए पुरूष बने। पुरूष के स्त्री बनने का अर्थ यह है कि वह स्त्री की नम्रता और विवेक सीखे और स्त्री के पुरूष बनने का मतलब है कि वह अपनी भीरूता छोड़कर हिम्मतवाली और बहादुर बन जाये।[47]

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गांधीजी ने स्त्रियों के राजनीतिक अधिकारों की वकालत दो बिंदुओं पर की थी। प्रथम यह कि स्त्रियां पुरूषों से किसी तरह कम नहीं थी, अपितु कई मामलों में पुरूषों से श्रेष्ठ थी। द्वितीय यह कि स्त्रियों के राजनीति में आने से निश्चित रूप से

महिला सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त होगा। उन्होंने स्त्रियों में सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न करने का जो कार्य किया वह सराहनीय है।

निष्कर्ष

दुनियाभर में पुरुष वर्चस्व के खिलाफ खड़े हुए स्त्रीवादी आंदोलन से स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हुआ है। लेकिन इसे सही दिशा देने की जरूरत है ताकि स्त्रियाँ आजादी पाने के बदले अपनी पहचान ही ना गंवा दें। गाँधीवादी विचारक कुछ लिखते हैं– ''वे एक हास्यास्पद अनुकरण की शिकार हो गई। वे एक मौलिक स्त्री बनने की बजाय नकली पुरुष बनने लगी। पुरुष जैसे कपड़े पहनने, बाल कटवाने, चलने–बोलने तथा शराब–सिगरेट पीने आदि को ही अपनी आजादी समझने लगीं जबकि यह आजादी नहीं पुरुषों की श्रेष्ठता स्वीकार कर लेने जैसी गुलामी है। गाँधीजी का स्त्री–विमर्श यह मानता है कि चंद महिलाओं का पुरुष जैसी हैसियत प्राप्त कर लेना ही काफी नहीं है। नारी मुक्ति का अर्थ यह नहीं है कि नारी वस्त्रों से मुक्ति हो जाए या गर्भ से मुक्त हो जाए। दरअसल नारी की असली मुक्ति तो नारी होने में है, उसके निज होने में है। अगर वह अपनी निजता के बिन्दु से च्युत होती है और पुरुष जैसा होने की दौड में लग जाती है तो यह बात इतनी हास्यास्पद होगी जैसे कोई पुरुष स्त्रियों के कपड़े पहनने से और दाढ़ी–मूँछ कटा ले और स्त्रियों जैसा कपड़े पहनकर घूमने लगता हो तो हास्यास्पद हो जाता है तथा उसका मखौल बना दिया जाता है। इसलिए 'स्त्री' स्त्रियों की तरह बची रहे तभी वह स्वतंत्र, समान, सशक्त तथा सम्माननीय हो सकती है। पुरुष की नकल तो उसे और अधिक दोयम दर्जे की स्थिति में लाकर गुलाम एवं कमजोर बना देगी। अतः स्त्रियों को किसी और अस्तित्व में ढलने की बजाय स्वयं के अस्तित्व में रहकर अपने सम्मान को बनाये रखना चाहिये।

गांधीजी ने अपने विचारों से और नेतृत्व से उस समय भारतीय महिलाओं को प्रभावित किया, जब वे समाज में अपनी सहायक भूमिका में ही सिमटी हुई थी। उन्होंने भाारतीय समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा पर

प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन समस्त बुराईयों का विरोध किया, जो स्त्रियों के विकास में बाधक थी। उनका महिलाओं की आत्मशक्ति में अटूट विश्वास था और वे समानता के आधार पर महिलाओं को सामाजिक अधिकार देना चाहते थे। स्त्रियों को वे पुरूषों से अच्छा सत्याग्रही मानते थे और उनके राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने में उनकी महत्वपूर्ण प्रेरणा थी। इस प्रकार महिलाओं के संबंध में गाँधीजी के विचार गांधी दर्शन का एक महत्वपूर्ण भाग माना जा सकता है।

निःसंदेह भारतीय समाज में महिलाओं से संबंधित सभी समस्याओं पर गाँधीजी ने अपने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उनके समाधान के मार्ग सुझाए। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, विधवाओं की स्थिति, दहेज तथा तलाक आदि सामाजिक कुरीतियों का मुख्य कारण वे स्त्रियों की अशिक्षा को मानते थे तथा इन्हें दूर करने के लिए स्त्रियों की शिक्षा पर जोर देते थे। उनका विचार था कि समाज में स्त्री और पुरूष में कोई भेद नहीं होना चाहिए तथा स्त्रियों को अपने अधिकारों से वंचित करने के पुरूषों के कुचक्र को उन्होंने कटु आलोचना की तथा इस संबंध में धर्मशास्त्रों में दिये गये संदर्भों को अनुचित ठहराया। यद्यपि वे विधवाओं के पुनर्विवाह के समर्थक नहीं थे, तथापि उनका विचार था कि बाल विवाह की समाप्ति से विधवाओं की समस्या का समाधान हो सकेगा। संक्षेप में, गाँधीजी भारतीय समाज में महिलाओं की खराब स्थिति से चिंतित रहे तथा उनके उत्थान के लिए प्रयास करते रहे।

संदर्भ

1 सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 42, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, सन् 1971पृ. 5–6
2 जैन, प्रतिभा, गांधी चिन्तन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1984, पृ. 84–85
3 वर्मा, ताराचंद (सं.), गांधी जी और शिक्षा, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1969पृ. 68–69
4 भट्ट, कृष्ण दत्त, गांधी जीवन सूत्र, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान नईदिल्ली, 1974पृ. 141
5 दत्त, धोरेन्द्र मोहन, महात्मा गांधी का दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973पृ. 90
6 जौली, सुरजीत कौर, गांधी : एक अध्ययन, कन्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2007पृ. 288
7 जैन, प्रतिभा गांधी चिन्तन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, पृ. 91
8 सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 41, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, सन् 1971पृ. 90
9 सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय उपरोक्त, पृ. 90
10 सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड –41 पृ. 91
11 झा, राकेश कुमार, गांधी चिन्तन में सर्वोदय, पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1995, पृ. 124
12 झा, राकेश कुमार, गांधी चिन्तन में सर्वोदय, पृ. 125
13 सिन्हा, मनोज, गांधी अध्ययन, ओरियंट लांग्मैन, हैदराबाद, 2008, पृ. 123
14 हरिजन 23–5–1936, पृ. 117
15 सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 62, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, सन् 1975, पृ. 469
16 भट्ट, कृष्ण दत्त, गांधी जीवन सूत्र, पृ. 142
17 जौली, सुरजीत कौर, गांधी : एक अध्ययन, पृ. 291
18 प्रभु, आर. के. प्रभु (संग्राहक), समाज में स्त्री का स्थान और कार्य, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, दिल्ली, 1994, पृ. 28
19 हरिजन 17 अक्टूबर 1929, पृ. 340
20 हरिजन 2 दिसम्बर, 1939, पृ. 359
21 प्रभु, आर. के. प्रभु (संग्राहक), समाज में स्त्री का स्थान और कार्य, पृ. 7
22 प्रभु, आर. के. प्रभु (संग्राहक), समाज में स्त्री का स्थान और कार्य, पृ. 8
23 झा, कुमार प्रभात, गांधी विचार मंथन, न्यूग्राफिक आर्ट्स पब्लिकेशन, दिल्ली, 1999, पृ. 95
24 यंग इण्डिया 10 अप्रैल, 1930, पृ. 121
25 यंग इण्डिया 14 जनवरी, 1932, पृ. 19
26 सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 19, पृ. 25
27 उपरोक्त, पृ. 63– 64
28 आर. के. प्रभु, यू. आर. राव महात्मा गांधी के विचार, पृ. 283
29 भट्ट, कृष्ण दत्त, गांधी जीवन सूत्र, पृ. 151
30 काका साहब कालेलकर गांधी, संस्मरण और विचार, पृ. 355
31 भारतन कुमारप्पा (सं.) नयी तालीम की ओर, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, 1956, पृ. 90–99

32 उपरोक्त, पृ. 91
33 सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड 60, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, सन् 1975, पृ. 73
34 पुष्पा जोशी गांधी ऑन वूमेन, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1988, पृ. 30–21
35 आशा सभरवाल (सं.) महिला शक्तिः एक गांधी परिप्रेक्ष्य, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नईदिल्ली, 2000, पृ. 1
36 भारत में महिलाओं की स्थिति संबंधी राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट सार–संक्षेप (1971–1974), पृ. 114
37 उपरोक्त, पृ. 115
38 दत्त, धोरेन्द्र मोहन, महात्मा गांधी का दर्शन, पृ. 93
39 आर्य साधना, नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्व्यन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृ. 157
40 भारतन, कुमारप्पा (सं.) स्त्रियां और उनकी समस्यायें, 1959, पृ. 30–31
41 सिन्हा, मनोज, गांधी अध्ययन, पृ. 125
42 विजय एग्न्यू वुमेन इन इंडियन पालिटिक्स, पृ. 86
43 सिन्हा, मनोज, गांधी अध्ययन, पृ. 125
44 जैन, प्रतिभा गांधी चिन्तन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, पृ. 93
45 सिन्हा, मनोज, गांधी अध्ययन, पृ. 127
46 कालेलकर, काका साहब (सं.), बापू के पत्र 1 आश्रम की बहनों को, पृ 12
47 कालेलकर, काका साहब (सं.), बापू के पत्र 1 आश्रम की बहनों को, पृ. 16

तृतीय अध्याय
राजस्थान में महिला जागृति

देश में आजादी से पूर्व राजस्थान मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र था। उसमें केन्द्रशासित प्रदेश अजमेर के अतिरिक्त देशी रियासतें थी। इन रियासतों में उदयपुर, डुँगरपुर, बासवाड़ा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, जोधपुर, किशनगढ़, बीकानेर, कोटा–बूंदी, सिरोही, जयपुर, अलवर, जैसलमेर, करौली, झालावाड़, टोंक, भरतपुर और धौलपुर थी।

राजस्थान के शौर्य का बखान करते हुये सुप्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड ने अपने ग्रंथ 'अनलस एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' में कहा है कि राजस्थान में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसकी अपनी थर्मोपली नहीं हो और ऐसा कोई गाँव या नगर नहीं जिसमें अपना 'लियोनिडास' पैदा ना किया हो। टॉड का यह कथन न केवल प्राचीन और मध्ययुग में वरन् आधुनिक काल में भी इतिहास की कसौटी पर खरा उतरा है। किसी भी समाज के लिए यह आवश्यक है कि उसमें स्त्रियों की स्थिति क्या है। समाज की विविध समस्याओं के प्रति उनमें कितनी जागृति है साथ ही अपनी राजनीतिक जागृति एवं अधिकारों के प्रति वे किस सीमा तक संघर्ष कर सकती है।

19वीं शताब्दी में राजस्थान क्षेत्र में सामंतवादी शासन पद्धति प्रचलित थी। सम्भवतः ही सामंतवाद अलोकतान्त्रिक एवं एक व्यक्ति का शासन होता है जिसमें स्वतन्त्रता, समानता, अधिकारों आदि का कोई सरोकार नहीं होता। उल्लेखनीय है कि सामन्तवादी विचारधारा मध्ययुगीन विचारों से प्रेरित एवं प्रभावित थी, जिसमें आधुनिक तत्वों के स्थान पर प्राचीन कालीन प्रथायें मान्यताऐं, परम्पराओं को व्यक्तिगत जीवन में अत्यधिक महत्व दिया जाता था एवं इन्हें लागू करने के लिए तत्कालीन समाज किसी भी सीमा तक जा सकता था। ऐसी विकट स्थिति में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, उन्हें

राजनैतिक, सामाजिक एवं सम्पत्ति सम्बन्धी किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं थे। स्त्रियों को अनेक प्रकार की प्रथाएँ, परम्पराओं मान्यताओं को आरोपित कर रखा था। जैसे– बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, दहेज–प्रथा, विधवा का नरकीय जीवन, अशिक्षा आदि।[1]

इस प्रकार 19वीं शताब्दी में राजस्थान उन मध्यकालीन मूल्यों को समेटे हुआ था जिसमें लोकतन्त्र माननवाद, कल्याणकारी, आदि अवधारणाओं का कोई स्थान नहीं था। राजस्थानी समाज में जागृति के स्थान पर केवल मात्र परम्पराओं के पालन में विश्वास किया जाता था जो कि प्रतिक्रियावादी थी। सामंतवाद एक ऐसी वैचारिक विचारधारा होती है। जिसमें किसी नवसृजित मूल्यों के सरोकार से कोई तादात्म्य नहीं होता। इन परिस्थितियों में स्त्रियों को केवल घर की चार दीवारी तक सीमित कर दिया एवं उनकी समस्त प्रकार की गतिविधियां समाज के पुरूषों पर निर्भर रहती थी। इन सभी विविध कारणों से महिलाओं की अत्यन्त दयनीय स्थिति थी।

इस दौरान 19वीं शताब्दी के समाज–सुधार आन्दोलन के समाज सुधार कार्यों से महिलाओं में स्फूर्ति का विकास हुआ। इसके अलावा 19वीं शताब्दी में देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए गतिविधियाँ भी चल रही थी जिनसे महिलाओं को व्यापक प्रेरणा प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगी। और वे अपने सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के साथ–साथ राष्ट्रीय विचारधारा से जुड़ने लगी, धीरे–धीरे महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति इतनी अधिक जागरूक होती चली गई कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग करने लगी।

राजस्थान की महिलाएँ अपने शौर्य त्याग और बलिदान के लिए सदैव ही अग्रणी रही है, यहाँ कि महिलाओं ने पुरुषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर खेत–खलिहान और कारखानों में काम किया है। वहीं इन्होंने आन्दोलन में

अत्याचारों में पुरुषों के साथ संघर्ष किया। राजस्थान की आम महिलाओं में जागृति का अंकुर 1925 में प्रस्फुटित हुआ। समाज सुधार आन्दोलन में घूंघट हटाना, नव जागृति के लोक गीत गाना, रूढ़िवादिता का त्याग और अंधविश्वासों के त्याग आदि अधिकांश कार्यक्रम महिलाओं के लिए आयोजित किए गए एवं जिस द्रुत गति से महिलाओं ने इन कार्यों को अपनाया आज उसी का परिणाम है कि आज इस राज्य की महिलाओं कि शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक गतिविधियाँ अत्यधिक अच्छी एवं उच्च प्राथमिकता वाली रही।[2]

राजस्थान में महिलाओं में प्राचीन काल से ही त्याग एवं बलिदान के संस्कार रहे हैं। चाहे वे किसी भी जाति या धर्म से सम्बन्धित हो। इन महिलाओं की विपत्तिकाल में भी पुरुषों के साथ भागीदारी रही है और आज भी है। महिलायें अपने कर्तव्य को समझती है। वे सभी रूपों चाहे माता, पत्नी, बेटी, बहन, मित्र अपने सभी रूपों को अपनी ईमानदारी से निभाती है। राजस्थान की महिलाओं की यह परम्परा रही है कि जहाँ भी रहो, उसी की होकर रहो। ये पुरुषों के हर कार्य में कदम से कदम मिलाकर चलती है।

अत्याचारों के खिलाफ महिला संगठन – राजस्थान में महिला जाग्रति के 18वीं शताब्दी के निरन्तर प्रयास हो रहे थे। 1932 में झुन्झुनू में जाट महासभा की स्थापना एवं इसमें हजारों महिलाएँ सम्मिलित हुई एवं इसके कार्यक्रमों में भागीदार बनने लगी जिन्होंने एक विद्यालय भवन बनाने के लिए पन्नेसिंह देवरोड़ के आह्वान पर सभा स्थल पर अपने गहने तक उतार दिये थे। 1934 में सीकर में आयोजित प्रजापति महायज्ञ में बड़ी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। उस समय ठाकुर देशराज की धर्मपत्नी उत्तमा देवी के नेतृत्व में एक सशक्त महिला संगठन बना जो पुरुषों के साथ समाज सुधार और मौका पड़ने पर अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करने के लिए तैयार रहता था।

शेखावाटी में भी प्रत्येक अग्रिम नेताओं की धर्मपत्नियाँ स्थानीय स्तर पर नेतृत्व करने लगी थी उन्होंने रूढ़ीगत विचारों को तिलाजंली देकर संस्कारों को स्वयं ग्रहण किया और समाज में उनका पूरा प्रचार प्रसार किया। परम्परागत लोकगीतों के माध्यम से यहाँ हम एक गीत का उल्लेख करते हैं जो 'ओल्यू' की तरह बहुत लोकप्रिय हुआ। जो आज तक गाया जाता है–

सुन सुन रे मेरी संग की सहेली,
रीत एक नई एक एक चली
भैण विद्या बना रैगी खाली।
मैं जल्मी जब पत्थर पड़ गया,
भायो जल्मयों बाजी थाली।
भैण विद्या बना रैगी खाली।
भायी नै तो पढणें भेज्यों
मैं रैवड़ की पाली।
भैण विद्या बिन रैगी खाली।
भायी भैण दोनों एक कूख सू,
फर्क की रीति कूण डाली।
भैण विद्या बिन रैगी खाली।
बड़ी हुई अर गई सासरे,
पेर ओढ कर चाली।
भैण विद्या बिन रैगी खाली।
मेरी जेठाणी पोथी बांचे,
मैं मांजू नित्य थाली,
भैण विद्या बिन रैगी खाली।
मेरे मैं जेठाणी में अतरो फर्क हैं,

मैं गोरी बा काली
भैण विद्या बिन रैगी खाली।
विद्या पढ के काम करे तो
होज्या ये हरियाली,
भैण विद्या बिन रैगी खाली।
जीवण राम साथ में बोलैं
करै जण–जण की रखवाली
भैण विद्या बिन रैगी खाली।

इस प्रकार महिलाओं में जाग्रति निरन्तर बढ़ती चली गई। इन सम्भ्रात और जागरूक महिलाओं में श्रीमती दुर्गा देवी, श्रीमति उत्तमा देवी, श्रीमती रामेश्वरी देवी शर्मा, श्रीमाधोपुर, श्रीमती रमादेवी सीकर, श्रीमती किशोरी देवी, श्रीमती फुलां देवी, श्रीमती किशोरी देवी भाभरवासी, श्रीमती शमाकोर देवी, श्रीमती अनुसूरी देवी बगड़का, श्रीमती कृष्णा देवी चिड़ावा, श्रीमती गोरी देवी हनुमानपुर, श्रीमती श्रीणगारी देवी प्रमुख थी।

इन महिलाओं ने तत्कालीन राजस्थान में महिला अधिकारों का समर्थन किया एवं उनमें शिक्षा, समानता और सामाजिक बुराईयों को त्यागकर राष्ट्रीय धारा में जोड़ने का प्रयास अथवा आह्वान किया। इन सभी के निरन्तर प्रयासों के कारण महिलाओं में जागृति अंकुरित होने लगी। यद्यपि 19वीं शताब्दी के समाज सुधार आंदोलन से राजस्थान अप्रभावित रहा। उल्लेखनीय है कि 19वीं शताब्दी में शासन की सामन्तवादी व्यवस्था प्रचलित थी। यह एक ऐसी व्यवस्था जिसमें एक वर्ग विशेष के पास राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अधिकार केन्द्रित रहते हैं।

इसमें स्वतन्त्रता, समानता, शिक्षा, मानववादी मूल्य आदि आधुनिक अवधारणा से कोई सरोकार नहीं होता। ऐसी विकट परिस्थितियों में चारदिवारों

से झांकना भी अपराध समझा जाता था। किन्तु महिलाओं में भी जागृति का अंकुरण एवं उन पर अत्याचारों की बढ़ती धटनाओं के कारण महिलाओं ने आवाज उठाना प्रारम्भ कर दिया और विरोध करने के लिये महिला संगठनों की स्थापना की जाने लगी। जैसे– 1932 में ''जाट महिला महासभा'' 1934 में सीकर में आयोजित ''प्रजापति महायज्ञ'' आदि।[3]

यद्यपि राजस्थान में गाँधीवादी आन्दोलनों से पूर्व भी इन महिलाओं की कृषक आन्दोलन (बेगू बिजौलिया, नीमूचाणा) आदि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यह उल्लेखनीय है कि ये महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्र से थी। गाँधीजी के प्रादुर्भाव से महिलाओं के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया।[4]

इस प्रकार इतिहास लेखन एवं लोक स्मृतियों में रचनात्मक कार्यक्रम का गौण महत्व रहा है। अक्सर रचनात्मक कार्यक्रमों का सक्रिय आन्दोलन की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण माना गया है। किन्तु स्वयं गाँधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना था। रचनात्मक कार्यक्रम एक सतत् प्रक्रिया थी, जो निरन्तर चलती रहती थी। यद्यपि सक्रिय आन्दोलन की भांति त्याग, संघर्ष और साहस की रचनात्मक आन्दोलन में भी उतनी ही आवश्यकता थी। रचनात्मक कार्यक्रम के संचालन में अनेक बाधाएँ थीं। जैसे– रियासतों द्वारा दमन, संसाधनों की कमी आदि। इस प्रकार की परिस्थितियों में पुरुषों के साथ महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि महिलाओं का इस प्रकार की गतिविधि में भाग लेना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। समाज में रूढ़िवादिता, अशिक्षा, पिछड़ापन, सामाजिक कुरूतियाँ आदि व्याप्त थी। ऐसे समय में महिलाओं ने रचनात्मक कार्यक्रमों में भाग लिया एवं उसका नेतृत्व किया।

इन गतिविधियों की सराहना की जानी चाहिये। रचनात्मक कार्यक्रमों में भागीदारी के लिये महिलाओं ने अत्यधिक साहस, प्रतिबद्धता और त्याग का परिचय दिया। इनके द्वारा खादी, शिक्षा, हरिजनोद्धार के कार्यक्रम उनके साहस

को इंगित करते है। वस्तुतः इन विवेचन से स्पष्ट होता है कि इन स्त्रियों के सहयोग के बिना रचनात्मक कार्यक्रम सफलतापूर्वक नहीं चल सकते थे। श्रीमती रतनशास्त्री धर्मपत्नी श्री हीरालाल शास्त्री, श्रीमती जानकी देवी बजाज धर्मपत्नी जमना लाल बजाज, नारायणी देवी वर्मा, महिमा देवी किंकर धर्मपत्नी श्री हरिभाई किंकर एवं श्रीमती मणि बैन धर्मपत्नी श्री भोगीलाल पंड्याजी आदि महिलाओं ने पतियों के कार्यों में को पूरा सहयोग दिया एवं इतना ही नहीं उनके हिस्से का कार्य भी किया। इन्होंने अन्य महिलाओं को नेतृत्व भी प्रदान किया। ये महिलाएँ सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी थी। इन महिलाओं ने अपने स्वयं की सन्तानों की शैक्षिक गतिविधियों की उपेक्षा कर आदिवासियों हरिजन और स्त्रियों की शिक्षा एवं उद्धार पर ध्यान केन्द्रित रखा। उस समय इन स्त्रियों ने सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों का परित्याग कर मोटी, खादी पहनना स्वीकार किया। ये इनके त्याग और बलिदान का परिचायक है।[5]

इस प्रकार स्त्रियों ने न केवल रचनात्मक कार्यक्रमों में अपितु सक्रिय राजनीति में भी भाग लिया। स्त्रियाँ कठोर सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण घर की चारदिवारी से बाहर नहीं आई। वे अब धीरे–धीरे राजनीति में सक्रिय होने लगी थी। गाँधीवादी आन्दोलनों ने विभिन्न प्रक्रियाओं में भाग लिया।

जैसे– जुलूस निकालना, सरकारी कार्यों की अवज्ञा करना, हड़ताल करना, छोटे बच्चों को लेकर जेल जाना आदि। उस समय की रूढ़िवादी वातावरण में महिलाओं की ऐसी भूमिका उनके त्याग, साहस एवं बलिदान के परिचायक है। इस प्रकार की गतिविधियों में भाग लेना सरल नहीं था। महिलाओं ने विभिन्न स्तरों पर आन्दोलन में योगदान दिया व न केवल इनमें भागीदार बनी रही, अपितु वे इसमें नेतृत्व भी करती थी। विद्यालयों में पढ़ने वाली छात्राओं ने भी इसमें योगदान दिया। उदाहरण– गीता बजाज, नारंगी देवी आदि।

यद्यपि इन स्त्रियों की संख्या कम थी, किन्तु इनका प्रभाव व्यापक एवं दूरगामी था। इनकी इस पहल ने स्त्रियों के लिये विकास एवं प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। महिलाओं को संगठित किया। इनके आह्वान पर हजारों महिलाएँ संगठित हुई। इन्होंने गाँव–गाँव एवं घर–घर जाकर महिला जागृति की ज्योति प्रज्जवलित की तथा नारी शिक्षा और प्रत्येक कार्य में स्त्रियों की भागीदारी का पाठ पढाया। महिलाओं को संगठित करने का बहुत बड़ा कार्य किया।

अत्याचारों के खिलाफ प्रथम महिला सम्मेलन

प्रजापति महायज्ञ सीकर के बाद 20 जनवरी 1934 को सिहोंट के ठाकुर ने जब महिलाओं पर अत्याचार किया तो शेखावाटी की महिलाओं में इससे भारी आक्रोश पैदा हो गया, इसके लिए इन्होंने कटराथल में प्रथम महिला सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन की अध्यक्षता श्रीमती किशोरी देवी ने की। इस सम्मेलन में लगभग पाँच सौ महिलाओं ने भाग लिया और प्रण किया कि यदि ठिकानेदारों ने महिलाओं पर अत्याचार किया तो हम उन्हें 'ठिकाने लगा देगी'। यह राजस्थान का प्रथम स्वतन्त्र सम्मेलन था। इस सम्मेलन के बाद यहाँ की महिलाएँ झांसी की रानी की तरह अत्याचारों के विरूद्ध संघर्ष के लिए तत्पर हो गई और अवसर आने पर पुरूषों से आगे आयी।

ये महिलायें अपने अधिकारों और अन्य महिलाओं के अधिकारों के लिए आन्दोलन, सम्मेलन, बैठक आदि करने लगी। महिलाओं को अत्याचारों के खिलाफ लड़ने का साहस, बल राजस्थान की वीरांगनाओं जैसे– रानी पद्दमिनी, मीराबाई, पन्नाधाय, राजकुमारी कृष्णकुमारी, कमलावती, नारायणी देवी आदि से प्राप्त हुआ।

श्रीमती जानकी देवी बजाज का जीवन संघर्षमय रहा। अपने पति के निरन्तर साहस, धैर्य और आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा पाकर ये भी स्वतंत्रता संग्राम तथा महिलाओं पर अत्याचारों के खिलाफ आन्दोलन में कूद पड़ी और

संघर्ष करती रही। इसी प्रकार से श्रीमती स्नेहलता वर्मा, माणिक्यलाल वर्मा की पुत्री। वर्मा परिवार की बड़ी लड़की होने के कारण इनकी जिन्दगी विपत्तियों से भरी रही। बिजौलिया किसान आन्दोलन और स्वतंत्रता संग्राम के दौरान वे अपने पिता के साथ हिस्सा लेती रही। इन्होंने आन्दोलनकारी महिलाओं का नेतृत्व किया और बंदी बनाई गई। परिणामस्वरूप ये निरन्तर संघर्षरत रहते हुए सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रही। ऐसी ही एक स्वतंत्रता सेनानी तथा महिलाओं के ऊपर अत्याचारों को हटाने वाली बासन्ती देवी जिन्होंने आन्दोलन में भाग लेने के कारण अपने पति के साथ गिरफ्तार हो गई। इस गिरफ्तारी का पूरे राजस्थान समाज में विरोध हुआ और हजारों लोगों ने गिरफ्तारियाँ दीं। राजस्थान में किसान आन्दोलन के दौरान अलवर रियासत के निमूचाणा गाँव के किसान रघुनाथ की बेटी सीता देवी ने भी आन्दोलन में भाग लिया। जब अंग्रेज सिपाहियों ने निमूचणा गाँव में गोलियाँ बरसानी शुरू की तो सीतादेवी किसानों को ललकार रही थी। हम किसी भी हालत में ठिकाने को लगान नहीं देंगे। किसानों की दयनिय स्थिति देखकर महिलाओं ने किसान आन्दोलन में बढ़—चढ़कर भाग लेने लगी।

इसी प्रकार से तत्कालीन राजस्थान में महिलाओं में जाग्रति आयी तथा अपने अधिकारों के लिये लड़ने का संबल मिला। वर्तमान में महिलाएँ पुरूषों के साथ कदम—से—कदम मिलाकर चलना चाहती है। जिससे वे समाज में शान से जिन्दगी जी सके। महिलाओं ने अपनी शान, सम्मान, गर्व, गौरव को पाने के लिए 'शिक्षा के अधिकार', 'समानता का अधिकार,', 'स्वतंत्रता के अधिकार' के लिए नारी हित में संगठन बनाये, मार्चे, बेनर, आदि कार्यों में सम्मिलित रही।

महिलाओं के द्वारा समय—समय पर सभायें बुलायी गई, उनकी बातों को सुना गया, उन्हें शिक्षित किया गया तथा इस स्वतंत्रता संग्राम में सरकार से अत्याचार न करने की अपील की गई। इस प्रकार प्रथम महिला सम्मेलन में महिलाओं की आपबीती सुनी। सभी महिलायें अपने ऊपर हुये अत्याचारों के खिलाफ आक्रोसित देखी गई। इन्होंने ठिकानेदारों को सबक सिखाने के लिए

सभा का आयोजन किया जिसमें सभी महिलाओं की राय ली गई तथा नीति बनाई गई। इन महिलाओं के साहस और वीरता को देखकर ठिकानेदार दंग रह गये इन्होंने ठिकानेदारों से कहा कि यदि तुमने और अत्याचार किये तो हम सभी ठिकानेदारों को ठिकाने लगा देंगे। सभी ठिकानेदार इन महिलाओं के साहस को देखकर घबरा गये। यह महिलाओं की पहली जीत थी। इस प्रकार महिलाओं को इससे और आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली। वे अब संगठन में रहने लगी। अपने खिलाफ हुए आक्रमण और अत्याचारों के ऊपर आवाज उठाने लगी।

इस प्रकार से महिलाओं का यह अत्याचारों के खिलाफ हुआ पहला आन्दोलन सफल हुआ। इस आन्दोलन के सफल होने से महिलाओं में समझ व उत्साह बढ़ने की चेतना का विकास हुआ। वे इस तरह के आन्दोलन और करने लगी। अपने उपर हुए अत्याचारों के खिलाफ लड़ना उन्होंने अब शुरू कर दिया था यह उनकी पहली जीत का उदय होना था।

जयसिंह पुरा काण्ड पर महिला सभा

जयसिंह पुरा में डुडलोद ठाकुर के छोटे भाई ईश्वर सिंह द्वारा गोली काण्ड में चौधरी टीकू राम की हत्या एवं महिलाओं पर अत्याचारों को लेकर स्थानीय स्तरों पर महिलाओं ने सभाएँ आयोजित की। पातुसरी गाँव में श्रीमती बनारसी देवी धर्मपत्नी श्री सुखदेव सिंह की अध्यक्षता में बड़ी सभा हुई जिसमें आस–पास के गाँवों की हजारों महिलाओं ने भाग लिया, साथ ही सभा में सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि अत्याचार का मुकाबला दुश्मन को अत्याचार स्थल पर खत्म करके ही लिया जाना चाहिए, चाहे उसमें महिलाओं को बलिदान क्यों न देना पड़े। यह घटना सन् 1935 की है।

अत्याचारों के खिलाफ महिलाओं ने योजना बनाई थी। उनमें निर्भिकता एवं आत्म विश्वास जागरूक हो चुका था। वे प्रदेश की महिला न होकर युद्ध स्थल की सेविकाएँ बन चुकी थी। ये महिलाये झांसी की रानी की तरह

आंदोलन में कूद पड़ी। इन्होंने ईश्वर सिंह के खिलाफ एक बड़ी योजना बनायी। ये महिलायें संगठन में एकत्रित होकर एक सभा को बुलाया, इन्होंने सभी की राय से योजना बनायी। इस योजना का उद्देश्य सभी को न्याय दिलाना था। इन्होंने इस अत्याचार का अच्छी प्रकार से मुकाबला किया। इस संगठन का नेतृत्व कर्ता श्रीमती बनारसी देवी को बनाया गया। बनारसी देवी ने कहा– ''कि हम ईश्वर सिंह का खात्मा आंदोलन स्थल पर ही करके रहेंगे इसमें चाहे सभी महिलायें बलिदान ही क्यों न हो चाहे हम सभी महिला अपनी आखरी सांस तक लड़ते रहेंगे।''[6]

इस प्रकार से श्रीमती बनारसी देवी और उनकी साथ की सभी महिलाओं में अति उत्साह आ गया था। ये सभी महिलायें दुर्गा रूपी रूप धारण करके 'ईश्वर सिंह' नामक राक्षस का वध करने के लिए तैयार हो गई थी। ये आंदोलन स्थल में अद्वितीय साहस, वीरता, निर्भिकता से लड़ती रहती रही तथा अपने प्राणों की परवाह किये वगैर ये लड़ती रही। इन महिलाओं की अन्त में विजय हुई और इनकी मांगे स्वीकार कर ली गई। इस प्रकार से ये महिलायें वर्तमान मं समाज के लिए एक आदर्श बनी हुई है। ये उन महिलाओं के लिए आदर्श है जो अपने अत्याचारों को नहीं बताती है अर्थात् अत्याचारों के खिलाफ आवाज नहीं उठाती है। महिलाओं को समाज में आगे आना चाहिए।

इसी प्रकार से श्रीमती रतन शास्त्री इनका जन्म खाचरोद नाम कस्बे में हुआ जो कि मध्य प्रदेश में स्थित हैं। इन्होंने देश के विकास के लिए महिलाओं को जागृत कर अग्रणी रहने के लिए प्रेरणास्पद कार्य किया तथा प्रजामण्डलीय सभाओं तथा कार्यक्रम में हमेशा आगे बढ़कर सहयोग किया। इन सभी महिलाओं की वर्तमान समाज में एक उच्चपदीय भूमिका देखकर वर्तमान नारी को और भी अधिक सभ्य, सुशिक्षित अपने सम्मान आदि को प्राप्त करने की

लालसा उत्पन्न कर होती है। ये सभी महिलायें हर क्षेत्र में अपने कार्यों, मेहनत व लगन से हर क्षेत्र में विश्वसनीय व प्रशंसनीय कार्य कर रही है।[7]

श्रीमती जानकी देवी बजाज का जन्म लक्ष्मणगढ़ के सेठ गिरधारी लाल जाजोदिया के यहां मध्यप्रदेश के जावरा कस्बे में हुआ। जमनालाल बजाज के निजी सहयोगी के रूप में सहयोग करते हुए गांधीजी के आन्दोलन में भाग लिया। सर्वप्रथम जानकी देवी ने जड़ परम्पराओं को तिलांजलि दी तभी खुलकर सत्याग्रह में भाग ले सकी। इन्होंने शेखावाटी, बीकानेर, क्षेत्र, पटना, कलकत्ता आदि स्थानों पर अनेक सभाएँ की और महिलाओं को सामाजिक कुरीतियाँ और अंग्रेजों के विरूद्ध संगठित किया। श्रीमती बजाज स्वदेशी आन्दोलन में 7 रूपये में चरखा खरीद कर सूत कातने लगी। श्री जमना बजाज जी के देहान्त के बाद इनको गौ सेवा संघ की अध्यक्षा बनायी गयी। ये जयपुर प्रजामण्डल के अधिवेशन की अध्यक्षा चुनी गई। श्रीमती जमना बजाज ने विनोबा भावे के भूदान यज्ञ के दौरान 108 कुओं का निर्माण करवाया।[8]

ये महिलायें हमारे समाज की महिलाओं के लिए आदर्श है। वर्तमान में महिलायें अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगी है। ये शिक्षित समाज की शिक्षित महिलायें है। ये महिलायें अपने ऊपर हुये अत्याचारों को सहने के बजाय उनसे लड़ने में विश्वास रखती है। इस प्रकार से जितनी भी सभायें महिलाओं द्वारा महिलाओं के अधिकारों उनके सम्मान के लिए रखी गई वे अद्वितीय थी। इन महिलाओं ने इनके ऊपर अत्याचार करने वालों को नाको चने चबवा दिये। ये महिलाएँ आंदोलन स्थल पर अपनी मान मर्यादों के लिए ठिकानेदारों, रजवाड़ों से अखिरी सांस तक संघर्ष करती रही। इनकी सभाओं का मुख्य उद्‌देश्य 'महिला संगठन' का निर्माण कर सभी की राय से एक नीति बनाना है। जिससे ये अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में डगमगाये नहीं। सभी में आत्मविश्वास की भावना बनी रहे, इनके कदम पीछे न हटे।

जयसिंहपुरा काण्ड की घटना से समाज तथा महिलाओं में गहरा प्रभाव दिखाई दिया क्योंकि महिलाओं को उनका सम्मान मिला और ठिकानेदारों को इनकी बाते माननी पड़ी। यह घटना जयसिंह पुरा में आग की तरह फैल गई। यह घटना जयसिंह पुरा में घटने वाली पहली घटना थी। जिसमें महिलाओं ने अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ सभा का आयोजन किया तथा आन्दोलन किया। इससे महिलाओं में भय खत्म हो गया। ये सभी आंदोलन करने से डरने के बजाय आंदोलन स्थल में निडरता से आगे आने लगी।[9] इस प्रकार जयसिंह पुरा काण्ड की सभा एक ऐसा आन्दोलन साबित हुई जिसमें महिलाओं ने अपने भय को समाप्त कर निर्भिकता से जीना सीख लिया था।

1938 का महिला सम्मेलन

महिलाओं के उत्थान को तीव्र गति प्रदान करने के लिए विद्यार्थी भवन झुन्झुनू में एक वृहत महिला सम्मेलन 11 मार्च 1938 को आयोजित किया गया। जिसमें राजस्थान के दूर दराज के इलाकों से हजारों महिलाओं ने भाग लिया। इस सम्मेलन कि एक विशेषता यह थी कि माँ बेटी और पुत्र वधु तीनों ने भाग लिया। इन किसान महिलाओं में जागृति का संदेश देकर शिक्षा की ओर प्रेरित करना तथा अपने आप को पुरूषों से हीन न समझने की प्रेरणा देने के उद्देश्य से ही यह सम्मेलन आयोजित किया गया था। अपने स्वागत भाषण में कुमारी शीतल बाई ने निम्न बातें कही–

मेरी प्यारी बहिनों और माताओं,

पहला कर्तव्य यही है कि हम शिक्षित बने और अपनी बालिकाओं को शिक्षित बनावें। बिना शिक्षित हुये हमारी हालत नहीं सुधर सकते। आज हमारी जो पशुओं में गणना हो रही है और जो बात–बात पर अपमानित की जा रही है वह स्थिति एक दम असहाय हैं। अगर यही हालत कुछ दिन और चले तो संसार में हमारी अच्छाईयों का नामोनिशान मिट जायेगा और मनुष्य समाज में

हमारी पशुओं के समान गणना होने लगेगी अथवा उसमें भी बदत्तर गणना होने लगेगी।[10]

इस हालत में हमारे समाज की तो जो दुर्दशा होगी वह तो होगी लेकिन साथ ही हमारे राष्ट्र को बड़ा धक्का लगेगा। मैं यह बलपूर्वक कहती हूँ जब किसी देश या जाति की महिला शिक्षित नहीं होगी जब तक कोई देश या जाति उन्नति नहीं कर सकता। जिस देश की मातृ शक्ति कमजोर हो जाती है उस देश का पुरूष समाज भी कमजोर ही रहता है। ध्यान रहे कि हमारी उन्नति में ही पुरूष समाज की उन्नति हैं। क्योंकि पुरूषों को विद्वान व बलवान बनाना माता का ही काम है। जब राष्ट्र की उन्नति, अवन्नति स्त्री समाज पर ही निर्भर है तो ऐसी शक्ति को क्या कोई देश या जाति समाज में जिन्दा रह सकती है।[11]

हमें यह भी ध्यान रखना है कि पश्चिमी शिक्षा प्रणाली में लिप्त होकर फैशन की सजावट में अपनी गाढी कमाई नष्ट न हो पावें। इस प्रकार हमारी शिक्षा वही हो जो प्राचीन काल से आर्य महिलाओं की होती थी। हम अपनी जिन्दगी घूघट परदे और जेवर की सजावट में बिता देते है जिसके सिवा नुकसान के कोई लाभ नहीं है। अब इस रूढ़ी का समूल नष्ट करके सुप्रथायें ग्रहण करों। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि अगर आप अपने समाज को इस संसार में जीवित रखना चाहती है और राष्ट्र की उन्नति चाहती है तो अपना परमधर्म समझकर अपने पुत्र और पुत्रियों को शिक्षित और शुद्ध आचार विचार वाले बनाने की प्रतिज्ञा करें। इस सम्मेलन से महिलाओं में बड़ी जाग्रति आयी और बहुत सी महिलाओं ने सभा स्थल पर ही परदा प्रथा का त्याग कर दिया। इस प्रकार महिलाओं में जाग्रति के साथ–साथ अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करने का निर्णय लिया तथा उनमें से अनेक महिलाएँ नेतृत्व भी करने लगी थी।

1938 के सम्मेलन की जाग्रति के कारण ही इस क्षेत्र से 11 छात्राओं को अध्ययन करने के लिए 1938 में वनस्थली विद्यापीठ में भेजा गया। जिन्होंने शिक्षा के उपरान्त समाज को एक नई दिशा ही नहीं दी अपितु स्वच्छ, सुदृढ़, नेतृत्व भी प्रदान किया और आज भी कर रही हैं। उन प्रतिभाशाली छात्राओं में थी सुमित्रा कुमारी पार्वती, मनोरमा कुमारी, कमला कुमारी, सुविश कुमारी और सरस्वति कुमारी सम्मिलित थी।[12]

इस प्रकार राजस्थान में महिला जाग्रति के प्रयास निरन्तर होते रहे जिसके फलस्वरूप महिलाओं में आत्मविश्वास ने जन्म लिया। वे स्वयं इस कार्य को करने लगी। धीरे–धीरे महिलाओं ने सम्मेलनों सगोष्ठियों, सभाओं आदि का आयोजन करने लगी। और उनकी इनमें अपनी गतिविधियाँ बढ़ाने लगी। यह महिलायें राष्ट्रीय अथवा अन्य प्रदेशों की महिलाओं से भी मिलकर जन जागरण करने लगी। राजस्थान में महिलाओं की सक्रियता अत्यधिक रही। इन महिलाओं ने अनेक अवसरों पर जेल भी गई। और अपनी राजनीतिक सक्रियता का परिचय दिया। इन महिलाओं पर जलिया वाला बाग का भी काफी प्रभाव था। इस कारण वे इस आन्दोलन में और भी अधिक सक्रिय हो गई। कांग्रेस सेवा दल की 'कप्तान' के रूप में महिलाओं का नेतृत्व भी किया गया। 1936 में श्रीमती चौधरी डूंगरपुर में माणिक्य लाल वर्मा से मिलकर इस आन्दोलन को और भी अधिक सक्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

श्रीमती भगवती देवी विश्नोई को 1938 में इस आन्दोलन में सक्रियता के कारण गिरफ्तार कर ली गई। और 10 दिन का कठोर कारावास दिया गया। श्रीमती विश्नोई 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन का सारे देश में प्रचार–प्रसार किया था। इस आन्दोलन में महिलाओं के साथ पुरूषों ने हाथ से हाथ मिलाकर आगे बढ़ते रहे।[13]

1938 के महिला सम्मेलन में महिला सत्याग्राहियों को जेल में बंद कर दिया गया। इस सम्मेलन में महिलाओं के द्वारा बहुत बड़े स्तर पर कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस आन्दोलन से पूरे देश में एक लहर सी दौड़ पड़ी। अब महिलायें पुरूषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने लगी। 1938 में स्थानीय पुलिस के द्वारा महिला सत्याग्रहियों पर लाठियाँ बरसाई गई। उन पर कठोर अत्याचार किये गये। ब्रिटिश सरकार द्वारा इन महिला संगठनों को कमजोर करने के लिए महिलाओं को उत्पीड़ित किया गया। इस पर महिलाओं ने जेल भरने के लिए आह्वान किया गया। महिला सत्याग्रहियों द्वारा जेलों को भरना प्रारंभ कर दिया। जेल में बंद ये महिलायें थी– त्रिवेणी देवी, कृष्णा देवी, कृष्णा प्यारी, शीला देवी, श्रीमती भगवती देवी आदि। उनके साथ अनेक महिलायें भी जेलों में बंद रही। श्रीमती त्रिवेणी देवी 11 अप्रैल 1939 को अपने नेतृत्व में अनेक महिलाओं के साथ झण्डा फहराया और सत्याग्रह का आयोजन भी किया। इस सत्याग्रह में महिलाओं की अहम भूमिका रही। इन महिलाओं ने अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध आन्दोलन प्रारंभ कर दिया।

विभिन्न जगहों पर महिलाओं के द्वारा अलग–अलग संगठन बनाये गये। इन संगठनों के द्वारा वे अपने विरोध को प्रकट करती थी। इन महिलाओं ने अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों को सहन किया। इनके विरोध में महिलाओं ने पुलिस के अत्याचारों को मर्दो की भांति सहन किया। लाठियों के असहाय प्रहारों से अनेक महिलायें घायल हो गई। इनमें से कुछ महिलाओं की तो मृत्यु भी हो गई। यद्यपि श्रीमती फुला देवी, श्रीमती दुर्गादेवी और उनकी पुत्र वधु श्रीमती शमकोरी देवी जिसकी गोद में 6 माह का बालक था। श्रीमती गौरी देवी, श्रीमती देवी प्रतापपुरा ने आगे बढ़कर अपनी गिरफ्तारियाँ दी।[14]

इसी क्रम में 4 जून 1939 को झुन्झुनू क्षेत्र में एक वार्षिक सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। इसमें वनस्थली विद्यापीठ की छात्राओं के द्वारा

जुलूस निकाला गया। इसी समय श्रीमती सुभद्रा जोशी की अध्यक्षता में एक महिला सम्मेलन हुआ। जिसमें हजारों महिलाओं ने भाग लिया। इससे महिलायें राजनीतिक रूप से मोर्चा बन्दी करने लगी। इससे राजस्थान में व्यापक राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। 1938 के महिला सम्मेलन में महिलाओं से दो मुद्दों पर सहायता की उपेक्षा की। (1) मद्य–निषेध (2) विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार[15]

विदेशी शासन के विरूद्ध अनेक अहिंसात्मक आन्दोलनों में महिलाओं का योगदान पुरूषों की अपेक्षा अधिक सक्रिय रहा है। क्योंकि महिलायें में पुरूषों से अधिक साहस था। अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर जब पुरूष धरना पर बैठे तो महिलाओं ने इस सम्मेलन को सक्रिय रूप से सहयोग प्रदान किया।

जब महिलाओं ने शराब एवं विदेश वस्त्रों की दुकानों के आगे धरना दिया तो उन्हें आशातीत सफलता मिली। लेकिन जब इन आन्दोलनों में महिलाओं ने भाग लिया तो इस इस आन्दोलन में आशातीत परिवर्तन हुये। इस प्रकार ब्रिटिश शासन की शोषणात्मक अत्याचार पूर्ण परिस्थितियों से मुक्ति पाने के लिए तथा ब्रिटिश शासन की दमनात्मक पद्धति से मुक्ति पाने के लिए पुरूषों के साथ हजारों महिलाओं ने भी इस संघर्ष में भागीदारी निभाई।[16]

1938 का महिला सम्मेलन एक युगांतकारी घटना थी जिसने प्रत्येक महिला, पुरूषों तथ अन्य सभी वर्गों को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि अब महिलायें किसी भी कीमत पर पीछे हटने वाली नहीं है। उन्होंने यह भी साबित कर दिया कि वे कभी भी पुरूषों के पीछे नहीं है और न ही रहेगी। इस सम्मेलन के बाद महिलाओं में जाग्रति की लहर आ गई। वे अब हर क्षेत्र में पुरूषों के साथ कन्धें से कन्धा मिलाकर चलने में लग गई। इस सम्मेलन के बाद राजस्थान में महिलायें प्रमुख रूप से इस जन संघर्ष में अपना योगदान देने के लिए आगे आ गई। जिनमें से कुछ महिलायें इस प्रकार है। कमला

बेनीवाल, अंजना देवी, कोकिला देवी, गीता बजाज, विमला देवी चौधरी, नारयणी देवी वर्मा कमला स्वाधीन आदि प्रमुख थी। यह जन आन्दोलन में सभी देशी रियासतों में महिलाओं के नेतृत्व में स्थानीय स्तर पर प्रारंभ किऐ गऐ। जैसलमेर, बीकानेर, जयपुर, सीकर, धौलपुर, अलवर झुन्झुनू में महिलाओं ने बड़े पैमाने पर जुलूस, धरना, हड़ताल के कार्यक्रम आयोजित किये गये।[17]

विद्यार्थी विश्वविद्यालय छोड़कर आन्दोलन में सक्रिय रूप से शामिल हो गये। महिलायें आन्दोलन काल में देशभक्त से प्रेरित गीत गाकर भी आन्दोलन कारियों को प्रेरित करने लगी।

''यदि दुख पड़ने पर हृदय का भेद जाहिर कर दिया
डरपोक बनकर शत्रु पग पर,
शीश अपना घर दिया।
दो रोज के उपवास में ही,
धीरता जाती रही।
रोने लगे टूक दण्ड से,
गम्भीरता जाती रही।
यदि कष्ट सहने के लिए,
तन मन सभी असमर्थ है।
तो देश भक्तों देश छोड़ दो,
आशा तुम्हारी व्यर्थ है।''

इस प्रकार महिलायें आन्दोलन काल में सभी स्तरों पर कार्य कर रही थी श्रीमती रतन शास्त्री भी अपने वनस्थली विद्यापीठ में छात्राओं को देशभक्ति गीत, भजन, देशभक्तों की कहानियाँ सुनाया करती थी। और उन महिलाओं व छात्राओं ने देश के प्रति लड़ने के लिए तैयार करती थी।

''जंगे आजादी में एक साधारण नारी

कैसे शरीक हुई,
कोई नन्ही ही सी बच्ची।
कब देश भक्तों के गीत गुनगुनाने लगी,
कोई स्कूल छात्रा।
भगत सिंह की शहादत पर
कैसे लिखने लगी जूनून की होली।
देश के लिए जियेंगे और मरेंगे।
यह वो जज्बा था जो गोरी चमड़ी के।
अन्याय को देखते ही अंदर ही अंदर
उबलता था।
और आक्रोश के कोलाहल में उमड़ पड़ता था।
यह है कुछ नारीयों की जुबानी।

इस प्रकार स्त्रियों ने न केवल रचनात्मक कार्यों में अपितु सक्रिय राजनीति में भी भाग लिया। स्त्रियाँ कठोर सामजिक प्रतिबन्धों के कारण घर की चारदीवारी से बाहर नहीं निकल पाई किन्तु अब वे धीरे–धीरे राजनीति में सक्रिय होने लगी। गाँधीवादी आन्दोलनों के विभिन्न प्रतिक्रियाओं में भाग लिया।[18] जैसे– जुलूस निकालना, सरकारी कार्यों की अवज्ञा करना, हड़ताल करना, छोटे बच्चों को लेकर जेल जाना, विदेशी वस्तुऐं व कपड़ों का बहिष्कार करना, सामंती अत्याचारों का बहिष्कार करना, समाज में प्रचलित कुरीतियों का भी विरोध करना।

उस समय की रूढ़िवादी वातावरण में महिलाओं की ऐसी भूमिका उनके त्याग व साहस व बलिदान की परिचायक है। इस प्रकार की गतिविधियों में भाग लेना इन महिलाओं के लिए सहज व सरल नहीं था। महिलाओं ने विभिन्न स्तरों पर आन्दोलन में योगदान दिया और न केवल इनमें भागीदारी

बनी रही। अपितु वे इसमें नेतृत्व भी करती थी। विद्यालयों में पढ़ने वाली छात्राओं ने भी इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से भागीदारी निभाई। यद्यपि इन महिलाओं की संख्या कम थी लेनिक इनका प्रभाव व्यापक व दूरगामी भी था। इनकी इस पहल में इस आन्दोलन को सक्रिय ही नहीं बनाया अपितु महिलाओं के विकास के लिए भी उन्हें अग्रसर किया।[19]

1938 के महिला सम्मेलन के बाद महिलायें राष्ट्रीय आन्दोलन में इतने बड़े पैमाने पर महिलाओं का सक्रिय सहयोग देना एक बहुत बढ़ी उपलब्धि थी। इस सम्मेलन ने एक परिवर्तन सा ला दिया था। महिलाओं के विचारों में। इस परिवर्तन के कारण ही वे समाज में व्याप्त रूढ़िवादी विचारधारा को त्याग कर समाज व देश के प्रति सोचने लगी।[20] जिससे देश में सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में महिलाओं को समुचित भूमिका के निर्वाह के योग्य समझा जाने लगा। उनके सरल व्यक्तित्व एवं चारित्रिक पवित्रता ने स्त्रियों को आकर्षित किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में पुरूषों के साथ महिलाओं ने पूरा तादात्म्य स्थापित किया। पुरूषों का विश्वास था कि गाँधीजी के नेतृत्व में चल रहे अहिंसात्मक आन्दोलन में उनके घर की स्त्रियाँ सुरक्षित है। इस कारण स्वतंत्रता संग्राम में उन्हें भाग लेने–देने में उन्हें कोई भी आपत्ति नहीं थी। गाँधीजी का स्त्रियों के प्रति बड़ा आदर था।

1938 के सम्मेलन में जाग्रति के कारण ही शेखावाटी क्षेत्र की छात्राओं को अध्याय करने के लिए उन्हें वनस्थली विद्यापीठ पढ़ने भेजा। उन छात्राओं ने वहाँ शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त समाज को एक नई दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[21]

इन महिलाओं ने स्वच्छ, सुन्दर एवं सुदृढत्र नेतृत्व भी प्रदान किया। और देश की आजादी के बाद भी वे अपना योगदान देती रही।

इस प्रकार राजस्थान में महिला जाग्रति के प्रयास निरन्तर होते रहे हैं। जिसके कारण ही महिलाओं में आत्मविश्वास ने जन्म लिया। और वे इस कार्य को स्वयं करने लगी। धीरे–धीरे महिला सम्मेलनों, सभाओं का आयोजन भी तीव्र गति से होने लगे थे और महिलायें भी इसमें अपना योगदान देने में पीछे नहीं हटती थी।[22] वे राष्ट्रीय एवं अन्य प्रदेशों की महिलाओं के सम्पर्क बनाये रखती थी तथा उनके साथ मिलकर जन आन्दोलन में भी अपनी सहायता प्रदान किया करती थी।

संदर्भ

1 कोठारी, मनोहर, भारत में स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थान (राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2001, पृ. 54

2 गुप्ता, शोभालाल, गांधी जी और राजस्थान, भीलवाड़ा 1969, राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि, जयपुर, पृ. 22

3 चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, राजस्थान प्रकाशन मण्डल, अजमेर, 1974, पृ. 25

4 चौधरी, रामनारायण, बीसवीं सदी का राजस्थान, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1980

5 चौधरी, रामनारायण, बीसवीं सदी का राजस्थान, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1980

6 चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, राजस्थान प्रकाशन मण्डल, अजमेर, 1974, पृ. 58

7 चौधरी, रामनारायण, बीसवीं सदी का राजस्थान, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1980

8 कोचर, कन्हैयालाल, रियासती राजपूताना से जनतांत्रिक राजस्थान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2002, पृ. 15

9 जैन, महावीर प्रसाद, अलवर की जागृति का इतिहास, अखिल भारतीय स्वतंत्रता सेनानी, अलवर, 2002, पृ. 5

10 गणेश सेवा समिति, शेखावाटी किसान आन्दोलन का इतिहास, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1990, पृ. 98

11 चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, राजस्थान प्रकाशन मण्डल, अजमेर, 1974, पृ. 10

12 गुप्ता, के.एस., राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा–शोभालाल गुप्त, रूपलाल सोमानी, राजस्थान स्वर्ण जयन्ती समारोह समिति, जयपुर, 2003, पृ. 13

13 कालेलकर, काकासाहब, जमनालाल बजाज की डायरी, जमनालाल बजाज सेवा ट्रस्ट, वर्धा, 1966, पृ. 20

14 चौधरी, रामनारायण, बीसवीं सदी का राजस्थान, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1980

15 कोठारी, देव एवं पाण्डेय, स्वतंत्रता आन्दोलन में मेवाड़ का योगदान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, 1991, पृ. 25

16 गुप्ता, डॉ. के.एस.; राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति, यूनिक ओझा, डॉ. जे. के.; ट्रेडर्स, जयपुर, 2001, पृ. 8

17 गुप्ता, के. एस., 19वीं सदी के राजस्थान का राजनैतिक एवं सामाजिक अध्ययन, जोधपुर, 1986, पृ. 58

18 चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, राजस्थान प्रकाशन मण्डल, अजमेर, 1974, पृ. 87

19 केला, भगवानदास, देशी राज्यों की जन जागृति, इलाहाबाद, 1948

20 चन्द्र, विपिन, भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्‌भव और विकास, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000, पृ. 68

21 चन्द्र, विपिन, त्रिपाठी, कमलेश व वरूण, स्वतंत्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1972, पृ. 24

22 काला, गुलाब चन्द, राजस्थान परिचय ग्रन्थ, जयभूमि कार्यालय, जयपुर, 1954, पृ. 32

चतुर्थ अध्याय
कृषक आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी

आजादी से पूर्व राजस्थान अनेक रियासतों में बँटा हुआ था। रियासतों में सामंतवादी शासन होने के कारण जनता का अनेक रूपों में शोषण हो रहा था। राजस्थान में होने वाले आन्दोलनों के प्रथम चरण में वह वर्ग सक्रिय था जो सामंतों को लगान, बेगार, लाग–बाग की नीति का मुखर विरोधी थी। इस वर्ग में किसान, श्रमिक वर्ग सम्मिलित थे। कृषि व्यवसायी वर्ग को राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित वर्ग ने नेतृत्व प्रदान किया था। राजस्थान में भू–प्रबन्ध की व्यवस्था देश के अन्य भागों की तुलना में विशिष्ट व भिन्न थी जिस व्यवस्था में किसान भू–स्वामी न होकर केवल मात्र खेती हर मजदूर था। इस दृष्टि से राजस्थान की स्थिति और भी अधिक दयनीय थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पश्चात् भी राजस्थान संवैधानिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था। इन सुधारों के अभाव में सामान्य किसान को अनेक असहनीय करों का बोझ ढोना पड़ रहा था। जिसके फलस्वरूप कृषक समुदाय में अत्यन्त उत्तेजना एवं असन्तोष व्याप्त था। इसके कारण 19वीं–20वीं शताब्दी में राजस्थान में कृषक आंदोलनों की श्रृंखला देखने को मिली। राजस्थान में हुए किसान आंदोलनों में बिजौलिया का किसान आंदोलन, बेगूं किसान आंदोलन, जयपुर के शेखावटी एवं अलवर के नीमूचाणा क्षेत्र में हुए किसान आंदोलन महत्त्वपूर्ण रहे। किसान आंदोलन आर्थिक एवं प्रशासनिक सुधारों को लेकर प्रारम्भ हुए।[1]

राजस्थान की अनेक रियासतों में कृषक जागृति गौण रही। धौलपुर, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, जैसलमेर, करौली आदि रियासतों में तो 20वीं शताब्दी के चतुर्थ दशक तक सीमित रूप से कृषक जागृति पैदा हो रही थी। डूंगरपुर, बांसवाड़ा में मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में स्थापित ''सम्पसभा'' ने कृषक जागृति का कार्य किया। किन्तु 1908 में इसे प्रभावहीन बना दिया गया। बूंदी के

बरड़ और जोधपुर के सोजत परगने में जागीरदारों की निरंकुशता के विरुद्ध आंदोलन गति पकड़ रहे थे। बीकानेर में दुधवारवारा और बागड़ के कृषक आंदोलन को दबा दिया गया था तथा जागृति का नेतृत्व कर रहे अन्य राजनीतिक संगठनों को भी कुचल दिया गया था। उदयपुर राज्य में महाराणा फतेहसिंह के अंग्रेज समर्थक एवं सामन्ती नीति के कारण कृषक आंदोलन जन–व्यापी होते गये, फलतः बेगू एवं बिजौलिया के कृषक आंदोलनों ने जन्म लिया। इन आंदोलनों को राजस्थान सेवा संघ एवं मेवाड़ प्रजामण्डल के नेता एवं कार्यकर्त्ताओं ने नेतृत्व प्रदान किया। आंदोलन की भयंकरता को भापकर मेवाड़ महाराज ने मेवाड़ में नियुक्त ब्रिटिश रेजिडेन्ट मिस्टर यंग को हटा दिया। साथ ही आंदोलन को नियन्त्रण में करने के लिए आंदोलन का नेतृत्व कर रहे विजयसिंह पथिक से वार्ता भी करनी चाही। जयपुर के शेखावटी एवं अलवर नीमूचरणा क्षेत्र में भी किसान आंदोलनों को प्रजामण्डलों का नेतृत्व मिला।[2]

उल्लेखनीय है कि कृषक आंदोलनों में कृषक संवैधानिक सुधार भी चाहते थे, इसी कारण 20वीं शताब्दी के चतुर्थ दशक में कुछ रियासतों में लेजिस्लेटिव असेम्बली भी स्थापित की गई। 1947 तक रियासतों में कोई विशेष प्रशासनिक सुधार नहीं हुए। कुछ राज्यों में लेजिस्लेटिव अमेम्बली में स्त्रियों के लिए भी स्थान सुरक्षित रखे गये। जैसे 1947 में जयपुर में श्रीमती शारदा भार्गव प्रतिनिधि मनोनीत की गई। इस प्रकार इन प्रतिनिधि सभाओं द्वारा जयपुर, जोधपुर में 1947 में लड़कियों की खरीद–फरोख्त के विरुद्ध विधेयक पास किया गया, जबकि शासक वर्ग ने प्रजामण्डलों एवं प्रजापरिषदों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया क्योंकि ये किसान आंदोलन को संगठित करने का प्रयास कर रहे थे। 1918 में चांदमल सुराणा ने जोधपुर में ''मारवाड़ हितकारिणी सभा'' की स्थापना की। किन्तु राज्याधिकारियों की स्वेच्छाचारिता की नीति के विरोध प्रदर्शन करने के कारण 1925 में चांदमल सुराणा, प्रतापसिंह सोनी को जोधपुर से निष्कासित कर दिया गया। जयनारायण व्यास ने अजमेर से तरूण राजस्थान निकालना प्रारम्भ

किया। जिसमें कृषकों की समस्याऐं, सामन्तों की नीति एवं भू–प्रबन्धन के विषय में लेख छपते थे। 1921 में राजस्थान सेवा संघ, 1922 में 'मारवाड़ सेवा संघ' की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य कृषकों की शिकायतों को दूर करना, किसान वर्ग के यथोचित अधिकारों का समर्थन करना और राजनीतिक विभाग में बाहर के अधिकारियों के हस्तक्षेप को रोकना था।

कृषक आंदोलनों का स्वरूप

राजस्थान में बढ़ती कृषक वर्ग में जागृति के चलते 1926 में 'मारवाड़ स्टेट्स पिपुल्स कॉन्फ्रेंस' की स्थापना की गई। जिसका उद्देश्य ग्रामीण स्तर पर आर्थिक एवं राजनीतिक जागृति लाना था। बलुड़ा, बागरी, रायपुर, जैतारण, सोजत आदि परगनों में कर न देने का निर्णय लिया गया। इस कारण महाराणा उम्मेदसिंह ने कांफ्रेंस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 1929 में अजमेर से निकलने वाले समाचार पत्र 'तरुण राजस्थान' में और ब्यावर में आयोजित एक सार्वजनिक सभा के विचार प्रकट किये गये तथा ''पोपा बाई की पोल'' नामक पुस्तक में महाराणा की विलासिता की सामग्री की चर्चा की गई। जोधपुर में भंवरलाल सुराणा के सभा में भाषण दिये जाने के कारण शासक वर्ग द्वारा उसकी राजनीतिक गतिविधियाँ समाप्त प्रायः करने के लिए हितकारिणी सभा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 1931 में चाँद–कौर कारण शारदा की अध्यक्षता में मारवाड़ स्टेट्स कांन्फ्रेंस का अधिवेशन पुष्कर में हुआ। उधर जोधपुर में 1934 में मारवाड़ पब्लिक सेफ्टिड आर्डिनेस, कानून के तहत नागरिक स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई तथा सभी संगठनों को गैर–कानूनी घोषित कर दिया गया। 1938 में मारवाड़ लोक परिषद् का गठन किया गया जिसका कार्य संवैधानिक सुधार एवं कृषक समस्याओं का समाधान करवाना था। राज्य सरकार ने इसे भी अवैधानिक घोषित कर दिया। जून 1940 में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार इसे पुनः मान्यता प्राप्त हो गई। इस प्रकार कृषक आंदोलन का स्वरूप जागृति और दमन की नीतियों में ही चलता रहा। मारवाड़ राजस्थान का सबसे बड़ा राज्य था,

जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण राजस्थान का 26 प्रतिशत भू–भाग था। मारवाड़ रियासत में किसान राजनैतिक जन–जागृति का सूत्रपात 1905 ई. के बंगाल विभाजन तथा उसकी प्रतिक्रियास्वरूप हुए स्वदेशी आन्दोलन के साथ हुआ। राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी हरिपुरा अधिवेशन से ही रियासती जनता के संघर्ष के साथ अपने को जोड़ने का निर्णय किया।[3] किन्तु इससे भी पूर्व रियासत में राजनैतिक चेतना के सृजन का श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा स्थापित संस्था 'आर्य समाज' को ही जाता है।[4]

किसान संघर्ष : प्रथम चरण (1922–1930)

शेखावाटी का किसान संघर्ष विभिन्न ठिकानों एवं जागीरों में विभक्त होने के उपरान्त भी एक संगठित सामन्त विरोधी संघर्ष था। शेखावाटी किसान संघर्षों के दौरान एक ठिकाने में घटने वाली घटना ने सम्पूर्ण शेखावाटी के किसानों को प्रभावित किया था।

1921 में चिडावा सेवा समिति के बाद सीकर ठिकाने के किसानों ने 1922 में किसान आंदोलन आरम्भ किया। इसका मूल कारण ही ठिकाने की तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था में ही विद्यमान थे। किन्तु 1920 के उपरान्त ही जन–चेतना के विकास का तत्कालिक कारण थी। इसका स्थानीय तात्कालिक कारण भू–राजस्व में की गयी अचानक वृद्धि था। रावराजा कल्याणसिंह ने मृत रावराजा की मृत्यु संस्कार एवं अपनी गद्दी नशीनी के समारोहों में अधिक राशि के खर्च होने के बहाने प्रचलित भू–राजस्व दर से सवाया तथा ड्योढा भू–राजस्व वसूल करना आरंभ कर दिया। किसानों ने बढ़े हुए भू–राजस्व के विरोध स्वरूप भू–राजस्व न देने का निर्णय लिया। किन्तु उन्हें ठिकाने के दमनात्मक साधनों का मुकाबला करना पड़ा। न केवल भू–राजस्व की वृद्धि बल्कि रावराजा कल्याणसिंह के गद्दी नसीनी के साथ फैली प्रशासनिक अराजकता ने भी किसानों में भारी असंतोष उत्पन्न किया था। रावराजा अपनी अयोग्यता के कारण पूरी तरह हाथों कठपुतली बन गया था बल्कि सीकर के

अन्य कर्मचारी भी मनमानी करने लगे थे। किसानों को ये लोग निरन्तर रूप से उत्पीड़ित करने लगे एवं तथाकथित न्याय प्रशासन एक मजाक बनकर रह गया था। निरन्तर उत्पीड़न, अराजकता, भू–राजस्व की वृद्धि एवं अन्याय से दुःखी किसान जनवरी 1923 में लगातार जयपुर दरबार एवं अंग्रेज रेजीडेन्ट के समक्ष अपना दुखड़ा सुनाने एवं न्याय मांगने हेतु गऐ। इन किसानों में केवल जाट जाति के ही नहीं बल्कि सभी जातियों के किसान सम्मिलित थे। इन किसानों की शिकायत थी कि ''सीकर ठिकाने में कृषि भूमि के मापन हेतु कोई अधिकृत जरीब नहीं है, उपयुक्त भूमि कागजातों का भी अभाव है एवं भू–राजस्व की कोई निर्धारित दर नहीं है एवं भू–राजस्व की मांग में निरन्तर वृद्धि होती रहती है तथा भू–राजस्व के अतिरिक्त वे भारी संख्या में अनाधिकृत लाग–बाग देने हेतु मजबूर किये जाते हैं एवं उनका भुगतान में असमर्थता व्यक्त करने पर उन्हें काल कोठरी में डाल दिया जाता है तथा अन्य तरीकों से उत्पीड़ित किया जाता है एवं उन्हें बलात् उनकी जोतों से बेदखल कर दिया जाता है। उनसे बेगार ली जाती है जो दरबार के द्वारा प्रतिबंधित है। ठिकाने के राजस्व अधिकारी उनसे रिश्वत लेते हैं। 1923 के वर्ष में सीकर के किसानों के प्रतिनिध मण्डल निरन्तर जयपुर पहुँचते रहे। समय–समय पर सीकर के किसानों ने जो मांगें दरबार के समक्ष रखीं वे संक्षेप में इस प्रकार थीं:– भूमि की किस्म एवं जलवायु के आधार पर भू–राजस्व स्थायी रूप से निर्धारित किया जाए, अकाल के समय भू–राजस्व में पूरी छूट दी जाये, सभी लाग–बागों को अवैध घोषित किया जाये, बेगार समाप्त की जाये, काल कोठरी द्वारा उत्पीड़ित नहीं किया जाये, ग्राम पंचायतों को न्यायायिक अधिकार दिये जायें, शिक्षा एवं स्वास्थ्य की सुविधायें दी जायें, जकातें तथा सीमा शुल्क समाप्त किया जाये, ठिकाने के न्यायिक अधिकार समाप्त कर न्याय प्रशासन को सीधे राज्य (जयपुर) के नियन्त्रण में रखा जाए, आदि।[5]

जयपुर–दरबार के किसानों की शिकायतों एवं आरोपों को गम्भीरता से नहीं लिया तथा किसानों को सलाह दी कि वे अपनी शिकायतें सीकर के

रावराजा के समक्ष प्रस्तुत करें। किसानों द्वारा यह सम्भव नहीं था क्योंकि उनके जयपुर आने की घटनाओं के कारण रावराजा उनसे क्रोधित था। अतः किसानों ने जयपुर राज्य पर निरन्तर दबाव बनाये रखना ही उपयुक्त समझा एवं जयपुर–दरबार के समक्ष सीकर के किसानों की परेशानियाँ तथा मांगे प्रतिनिधि मण्डलों के माध्यम से लगातार पहुँचती रहीं। 1922 में की गयी भू–राजस्व की वृद्धि समाप्त कर दी जायेगी एवं भविष्य में भी भू–राजस्व में बढ़ोतरी नहीं की जायेगी। रावराजा ने इस अधिकारी के भू–राजस्व सम्बन्धी समझौते को स्वीकृति प्रदान की एवं किसानों द्वारा सीकर से जयपुर यात्राओं पर किये गये व्यय की पूर्ति करने का आश्वासन भी दिया।

सीकर के किसान संघर्ष के पूर्व राजस्थान के अन्य भागों में जनसंघर्ष अपने विकास के चरम सीमा पर थे। बिजौलिया का किसान आंदोलन जो 1905 में स्व–स्फूर्त आंदोलन के रूप में उदित हुआ, अब तक संगठित रूप प्राप्त कर लिया था। बिजौलिया किसान आंदोलन की सफलता ने न केवल किसानों को बल्कि इसके नेताओं में नये उत्साह का संचार किया था। नेता अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने के कार्य में अधिक उत्साह से संलग्न हो गये थे। उदयपुर राज्य के एक अन्य ठिकाने बेगूं में भी बिजौलिया जैसा ही किसान आंदोलन उठ खड़ा हुआ तथा उदयपुर के भीलों ने मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। बिजौलिया किसान आंदोलन के नेता रामनारायण चौधरी जो पत्रकार भी थे, ने शेखावाटी के किसानों में चेतना विकसित करने के उद्‌देश्य से कार्य आरम्भ किया। राजस्थान सेवा संघ जिसकी स्थापना 1920 में अजमेर में हुयी थी ने भी सम्पूर्ण राजस्थान की शोषित एवं उत्पीड़ित जनता को उपनिवेशवाद तथा सामन्वतवाद के खिलाफ संगठित करना आरंभ कर दिया था। राजस्थान सेवा संघ का मुखपत्र 'तरुण राजस्थान' तथा जिनके सम्पादन का कार्य भी रामनारायण चौधरी कर रहे थे। अतः 1922 से ही रामनारायण चौधरी द्वारा सीकर को अपना कार्यक्षेत्र बनाने से सीकर के किसानों को भारी सम्बल प्राप्त हुआ एवं

नई चेतना से युक्त किसान सामन्तवाद से टकराने हेतु उद्धत हुए थे। अब सीकर के किसानों की समस्याऐं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की हो चुकी थी। भारत सरकार ने यह आश्वासन दिया कि सीकर मे भू–राजस्व में गैर सैद्धान्तिक वृद्धि नहीं होगी एवं नियमित भूमि की पैमाइश एवं बंदोबस्त होता रहेगा। किन्तु एक बात अवश्य सैद्धान्तिक रूप से स्वीकृत हो गयी थी कि राजस्व में वृद्धि न्यायिक नहीं थी एवं नियमित भूमि बन्दोबस्त आवश्यक था। अतः सीकर के किसानों को एक न्यायिक मुद्दा मिल गया एवं उपरोक्त स्वीकृतियों को लागू करने का मुद्दा उनके भविष्य के संघर्ष का आधार बन गया था।[6]

1925 का वर्ष शेखावाटी के किसान संघर्ष की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था। 1925 की सीकर के सन्दर्भ में घटी घटनाओं ने सम्पूर्ण शेखावाटी के किसानों के मानस को झकझोर दिया था। सीकर ठिकाने के चार अधिकारियों एवं आठ किसान मुखियाओं को इस जाँच आयोग का सदस्य बनाया था। एक ओर इस आयोग ने मुख्यालय पर किसानों से शिकायतें एवं सुझाव आमन्त्रित किये वहीं दूसरी ओर इस आयोग ने सीकर के भू–भागों का दौरा भी किया था। इस आयोग से कुछ होने जाने वाला तो नहीं था, किन्तु किसानों में इसके गठन से भारी उत्साह उत्पन्न हुआ। इस आयोग के गठन का प्रभाव शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसानों पर भी पड़ा। सीकर का किसान संघर्ष निरन्तर रूप से चल रहा था। 1925 के जाँच आयोग के अनुसार भूमि की पैमाइश एवं बन्दोबस्त का कार्य प्रारम्भ हो गया था। किसान नये भूमि सुधारों को लागू करवाने में लगे हुए थे। इस संघर्ष का नेतृत्व शेखावाटी जाट सभा के हाथ में था। किसानों को इस बात पर राजी कर लिया था कि यदि ठिकाने उनकी मांगों को नहीं मानें तो भू–राजस्व, लाग–बाग एवं अन्य कर अदा न करने का अभियान चलाया जाएगा। इस नये अभियान के साथ ही सम्पूर्ण शेखावाटी में किसान संघर्ष आरम्भ हुआ था।

इस बीच शेखावाटी के अन्य ठिकानों में भी जाट आन्दोलन फैल गया। खेतड़ी, डूँडलोद, नवलगढ़, मन्डावा, बिसाऊ, सूरजगढ़, हेरवास, इस्माइलपुर, जखारा, मलसीसर खंडेला, अलसीसर, पाटन आदि ठिकानों में भी जाटों ने भूमिकर देने से मना कर दिया। (मार्च, 1934 ई.)। जागीरदारों ने अपने सैनिकों से जाट किसानों को भाँति–भाँति से उत्पीड़ित किया। 16 मई? 1934 ई. को हेरवास के ठाकुर कल्याणसिंह के आदमियों ने हनुमानपुरा ग्राम के जाट किसानों के घरों में आग लगा दी जिससे 33 घर जलकर राख हो गये। इसी प्रकार डूँडलोद के ठाकुर ने जयसिंहपुरा गाँव के किसानों को आतंकित किया तथा उसके भाई हरनाथसिंह ने सशस्त्र व्यक्तियों के साथ किसानों पर लाठियों व तलवारों से वार कर जाट किसानों को भयंकर रूप से घायल कर दिया। जागीरदारों की इन आतंककारी हरकतों से सशस्त्र शेखावाटी के किसानों ने संगठित होकर उनका डँटकर मुकाबला किया। शेखावाटी जाट किसान पंचायत की तरफ से 9 अक्टूबर, 1934 को जयपुर महाराजा को माँग–पत्र प्रेषित किया गया और प्रार्थना की कि जागीरदारों के आतंक से उन्हें मुक्त कराएँ। शेखावाटी के नाजिम ने भी अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार को प्रेषित की। नाजिम ने किसानों की शिकायतों की पुष्टि की और उनके समाधान के लिए सुझाव दिया। परिणामतः 1936 ई. में ठिकाने में भूमि सर्वेक्षण और भूमि बन्दोबस्त की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिससे शेखावाटी व सीकर क्षेत्र में कुछ शान्ति हुई।[7]

1938 ई. में राज्य प्रजामंडल के तत्वावधान में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए आन्दोलन शुरू किया जिसमें किसान नेताओं का भी योगदान रहा। प्रजामंडल ने भी किसानों की शिकायतों को दूर करवाने के लिए आह्वान किया था। 1938 ई. के बाद शेखावाटी जाट सभा कोई व्यापक रूप से जन–आन्दोलन नहीं चला सकी, परन्तु स्मरण–पत्रों, पंचायत पत्रिका आदि के माध्यम से वह ठिकानों व सरकार का ध्यान किसानों की माँगों के प्रति निरन्तर आकर्षित करती रही। किसान नेताओं को भी विश्वास

हो गया था कि उनकी शिकायतों का समाधान उत्तरदायी सरकार की स्थापना के बाद ही संभव हो सकेगा।[8]

1938 ई. के बाद भी जयपुर राज्य में छोटे पैमाने पर कुछ आन्दोलन हुए, परन्तु उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं था। 1939 ई. में हिन्डोन और तोरावाटी निजामत में खालसा क्षेत्र में प्रजामंडल के नेतृत्व में किसानों को अकाल से राहत दिलाने के लिए आन्दोलन हुआ था। उनियारा ठिकाने में बैरवा (चमार) जाति के लोगों ने जातीय भेदभाव के विरोध में आन्दोलन किया था। इनके कोई विशेष परिणाम नहीं निकले।[9]

जयपुर राज्य कौंसिल के अध्यक्ष ने जयपुर राज्य के पश्चिमी सम्भाग के दीवान को शेखावाटी के किसानों की मांगों की मौका जाँच के लिए 19 दिसम्बर, 1925 को आदेश दिये। जाट किसानों की मुख्य शिकायतें एवं मांगें निम्न प्रकार थी, जिनके आधार पर जाँच के आदेश दिये गये थेः–

A. पूर्व में राजस्व की दर दो आना से आठ आना प्रति बीघा के मध्य थी, किन्तु 25 वर्षों के दौरान ठिकानों ने चौधरियों की मिली भगत से राजस्व की दर 2 रूपया 8 आना प्रति बीघा तक बिना भूमि की क्षमता एवं उत्पादकता को ध्यान में रखे बढ़ा दी है एवं इसे बलपूर्वक वसूल करते हैं।

B. यहाँ कोई निश्चित राजस्व की दर नहीं है एवं ठिकाने स्वेच्छा से किसानों पर मनमाना कर लाद देते हैं।

C. जाटों को उनकी जोत से बेदखल कर दिया जाता है एवं उनको अपनी जोतों पर किसी प्रकार के अधिकार नहीं है। ठिकाना कभी भी इन जमीनों को बेच सकता है एवं गिरवी रख सकता है।

D. ठिकाने राजस्व संबंधी समझौते का पालन नहीं करते हैं। यदि फसल अच्छी हो जाती है तो समझौते द्वारा पूर्व निर्धारित राजस्व की राशि में

वृद्धि कर दी जाती है एवं फसल बिगड़ जाने पर कोई छूट दिये बिना पूर्व समझौते से निर्धारित राजस्व की राशि वसूल की जाती है।

E. ठिकाने 3 रूपये 8 आना प्रतिवर्ष खूंटाबंदी एवं 6 आना पानचराई राजस्व के अतिरिक्त वसूल करते हैं एवं किसानों को उनके भुगतानों की कोई रसीदें नहीं दी जाती हैं।

F. जाटों की मांग है कि ठिकानों द्वारा केवल वास्तविक राजस्व नकदी में लिया जाना चाहिए। राजस्व की दर 2 आना से 8 आना के बीच भूमि के स्वरूप के आधार पर निर्धारित की जाए एवं कोई अतिरिक्त लाग–बाग न ली जाए।[10]

उपरोक्त जाँच के साथ–साथ शेखावाटी एवं तोरावाटी के पुलिस अधीक्षक को भी किसान समस्या के संदर्भ में जाँच रिपोर्ट भेजने के आदेश दिये। पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट पूर्णतः किसानों के पक्ष में थी एवं इसमें किसानों की मांगों व समस्याओं को सही ठहराया गया था।

जिस प्रकार सीकर के किसानों को 1925 के समझौते के द्वारा सन्तुष्ट कर दिया गया था। उसी प्रकार 1926 की घोषणाओं ने शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसानों को भी संतुष्ट कर दिया। किसानों ने इन घोषणाओं के आधार पर अपने आन्दोलन को स्थगित कर दिया था। किसान यह बात भली–भाँति जानते थे कि ठिकाने आसानी से उनकी मांगें मानने वाले नहीं हैं। किसानों ने ठिकानों के खिलाफ कार्यवाहियाँ तो रोक दी थी किन्तु वे समाज सुधार कार्यों को निरन्तर रूप से आगे बढ़ा रहे थे। किसान अपने प्रयासों से स्थान–स्थान पर विद्यालय खोल रहे थे। इनके इन प्रयासों को शेखावाटी के पूंजीपति वर्ग का सक्रिय समर्थन मिल रहा था। 1925–26 के बाद सम्पूर्ण शेखावाटी में किसानों के शिक्षा संबंधी प्रयास एक आन्दोलन के रूप में चल रहे थे। किसानों ने शेखावाटी शिक्षा मण्डल नामक संस्था की स्थापना की जिसके माध्यम से शिक्षा प्रसार के कार्य को तीव्र किया गया था। वे शिक्षा के महत्त्व को

समझ चुके थे। उनके अनुसार शिक्षा ही सामाजिक अंधकार से मुक्ति का एकमात्र रास्ता था।[11]

बीकानेर के महाराजा गंगासिंह के सतत् प्रयत्नों से गंगनहर का निर्माण हुआ था। राज्य सरकार द्वारा गंगनहर के क्षेत्र में जमीन का आवंटन करते व बेचते समय अनेक सुविधाएँ देने की घोषणा की गई थी, परन्तु घोषणा के अनुसार किसानों को सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हुई। इस क्षेत्र में जमीन बेचने की प्रक्रिया 1923 ई. में आरम्भ हो गई थी, परन्तु नहर से सिंचाई के लिए पानी देने की व्यवस्था 1929 से आरम्भ हुई। किसानों से पानी कर (आबियाना) पूरी दरों से लिया जा रहा था, परन्तु उन्हें पानी की मात्रा बहुत कम दी जा रही थी। जमीन बेचते समय किसानो से मूल्य की रकम किश्तों में लेना निश्चित हुआ था। कुछ ऐसे किसान भी थे जो किश्तें चुकाने में असफल रहे, उनसे चढ़ी रकम पर ब्याज बहुत ऊँची दरों से लिया जा रहा था। इन जमींदारों के लिए ब्याज की चढ़ी रकम राज्य कोष में जमा करवाने की अपेक्षा भूमि लौटा देना ज्यादा हितकर था। इन सब कारणों से किसानों में बड़ा असन्तोष था। अप्रैल, 1929 ई. में नहरी क्षेत्र के जमींदारों ने एक संघ की स्थापना की। इस संघ के माध्यम से राज्य सरकार को माँग–पत्र प्रेषित किया गया जिसमें माँग की गई कि किसानों को सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध करवाया जाये। इसके अतिरिक्त आवेदन–पत्र में पानी की दरों में कमी करने तथा जमीन के मूल्य की किश्तों को चुकाने की अवधि बढ़ाने के लिए सरकार को निवेदन किया गया।[12]

सीकर के राजस्व अधिकारियों ने 1925–1928 के मध्य भूमि बन्दोबस्त के नाटक के माध्यम से किसानों को शान्त रखने में सफलता प्राप्त की। 1928 के अप्रैल माह में सीकर के किसानों ने ठिकानों के खिलाफ जयपुर राज्य कौंसिल के अध्यक्ष एवं अन्य अधिकारियों को पुनः शिकायतें करना आरम्भ कर दिया था।

किसानों की शिकायतें थी कि भूमि बन्दोबस्त का कार्य कुशलतापूर्वक नहीं हो रहा था। जैसा कि जरीब की लम्बाई कम कर दी गयी थी। भूमि के स्वरूप का निर्धारण उत्पादकता के आधार पर नहीं किया जा रहा था। बन्दोबस्त कर्मचारियों का व्यवहार भी किसानों के साथ सम्मानजनक नहीं था। इतना ही नहीं बल्कि भू–राजस्व में पुनः वृद्धि कर दी गयी थी। जयपुर राज्य कौंसिल के अध्यक्ष एवं सीकर ठिकाने के मध्य किसानों की समस्याओं के संदर्भ में पत्र–व्यवहार चलता रहा। अध्यक्ष निरनतर रूप से सीकर ठिकाने पर दबाव डाल रहा था कि किसानों की न्यायपूर्ण मांगों एवं शिकायतों को अविलम्ब दूर किया जाये।

बीकानेर राज्य में कुल 2917 गाँव थे जिनमें से 1393 गाँव जागीरी क्षेत्र में स्थित थे। सीमा से जुड़े सीकर क्षेत्र और शेखावाटी के जाट आन्दोलनों का बीकानेर राज्य के जाट किसानों पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा था। बीकानेर के अनेक जाट प्रतिनिधियों ने झुंझुनूँ में आयोजित अखिल भारतीय जाट महासभा के अधिवेशन में तथा सीकर में 20 से 29 जनवरी, 1934 ई. के विशाल जाट प्रजापति महायज्ञ में सक्रिय रूप से भाग लिया था। इन घटनाओं के फलस्वरूप बीकानेर राज्य के जाटों में भी जागीरदारों के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस उत्पन्न हुआ तथा उनमें राजनीतिक चेतना आई।[13]

किसान संघर्ष के इतिहास का पहला चरण किसानों की दृष्टि से काफी सफलतायें समेटे हुए था। पहले उनकी समस्यायें न केवल स्थानीय स्तर पर बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सभ्य जगत के समक्ष उभरकर सामने आयी थी। अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिशील एवं अग्रगामी शक्तियों का नैतिक समर्थन किसानों को प्राप्त हुआ, जिसने किसान संघर्ष को साहस प्रदान किया था। दूसरी, किसानों को अपनी शक्ति का अहसास हो गया था एवं वे भविष्य में संघर्ष को जारी रखने के लिए उत्साहित हुए थे। तीसरी, शेखावाटी के पूंजीपति इस वर्ग की शक्ति को भांप चुका था एवं सामंती शासन से मुक्ति किसानों के संघर्ष से ही सम्भव थी। यह

पूंजीपतियों का किसान संघर्ष को खुला समर्थन प्राप्त करने में सहायक रहा था। अतः किसान संघर्ष का सामाजिक आधार विस्तृत हो गया था। चौथी सफलता किसानों के संगठन के संदर्भ में कही जा सकती है कि प्रथम चरण में स्थापित समाज–सुधार संगठन आर्थिक क्रांति का आधार बन चुका था। अतः शेखावाटी किसान संघर्ष के प्रथम चरण को एक सफलतम चरण माना जा सकता है। इस चरण की किसान चेतना का ही परिणाम था कि दूसरे चरण में किसान संघर्ष अधिक तीखा एवं प्रभावी बन गया था जिससे किसान संघर्ष को सामंतवाद पर विजय प्राप्त करने में आंशिक सफलता मिली थी।[14]

प्रथम चरण के संदर्भ में एक बात उल्लेखनीय है कि राजस्थान जैसे पिछड़े प्रान्त में बिजौलिया के किसान आंदोलन के बाद यह दूसरा सशक्त किसान संघर्ष था। आश्चर्य की बात तो यह है कि इग्लैण्ड की संसद तक में सीकर के किसानों की समस्याओं एवं संघर्ष के प्रश्न उठे थे किन्तु भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्वकारी संगठन अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस संदर्भ में अपना कोई मत तक व्यक्त नहीं किया था। अभी तक कांग्रेस का भ्रम बना हुआ था कि भारत की देशी रियासतें उनके साथ भी आ सकती थीं। अतः देशी रियासतों के संदर्भ में कांग्रेस की उदासीनता बनी हुयी थी। इस मान्यता में भी कोई संदेह नहीं हो सकता कि कांग्रेस के न चाहते हुए भी राजस्थान के जन–आंदोलन ब्रिटिश भारत के जन आंदोलनों के साथ कदम के कदम मिलाकर चल रहे थे। प्रथम चरण के दौरान एक अन्य बात भी बड़ी महत्त्वपूर्ण थी, वह थी किसानों के प्रति अंग्रेजों का नरम रूख। अंग्रेजों एवं सामन्तों के हित लगभग समान थे एवं उनके मध्य चोली दामन का सम्बन्ध था। किन्तु इनके मध्य मित्रतापूर्ण अन्तर्विरोध भी व्याप्त थे। 1922 से 1931 अर्थात् 9 वर्षों की निरंकुश अंग्रेजी सत्ता जयपुर पर स्थापित रही थी। इस काल में जयपुर राज्य के प्रशासन का पुनर्गठन किया गया था। सुधार धीमे परिवर्तनों के पक्ष में थे। नयी स्थितियों में जागीरदार भ्रमित थे एवं इसे अपने खिलाफ षड़यंत्र भी समझ रहे थे। इन

अन्तर्विरोधों का लाभ किसानों को भरपूर रूप में मिला एवं किसान संगठित होने व सामंत विरोधी संघर्ष आरम्भ करने में सफल रहे। राजस्थान की रियासतों तथा ठिकानों में अत्यधिक लाग–बाग, बैठ, बेगार एवं लगान के विरोध में किसान आंदोलन प्रारम्भ हुए।

बिजौलिया किसान आन्दोलन

बिजौलिया मेवाड़ रियासत का प्रथम श्रेणी का ठिकाना था। बिजौलिया ठिकाने का संस्थापक अशोक परमार था जो मूलतः भरतपुर रियासत के जगनेर का था। अशोक परमार ने खानवा के युद्ध में राणा सांगा की तरफ से लड़ते हुए अद्वितीय साहस एवं वीरता का परिचय दिया था। इसी के उपहार स्वरूप अशोक परमार को 'अपरमाल' की जागीर दी गई। बिजौलिया इसी जागीर का सदर मुकाम था। बिजौलिया के राव गोविन्ददास की मृत्यु के बाद राव कृष्णसिंह जागीरदार बना। राव कृष्णसिंह के काल में बिजौलिया के किसानों से लगभग 84 प्रकार के कर लिए जाते थे। इन लागतों के अतिरिक्त बैठ–बैगार भी करवायी जाती थी।[15]

बिजोलिया किसान आन्दोलन के कारणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण किसानों में व्याप्त असंतोष था, जिसने संघर्ष का सूत्रपात किया। आन्दोलन के अन्य कारणों में मेवाड़ का भ्रष्ट प्रशासन, सुधारों की प्रतिक्रिया जन साधारण को दबाने और व्याप्त असंतोष को दूर करने हेतु ब्रिटिश पॉलिटिकल एजेन्ट ईडन ने मेवाड़ में सुधार लागू किया। कुप्रथाओं को समाप्त करने हेतु आदेश जारी किये, परन्तु इन सुधारों को जनता ने संदेहास्पद दृष्टि से देखा और अपने रीति रिवाजों, परम्पराओं आदि पर आघात व हस्तक्षेप माना। आर्य समाज आन्दोलन, जाटों का आन्दोलन, राजस्थान में भीलों का आन्दोलन, प्रेस अथवा अखबारों का योगदान राजस्थान सेवा संघ जिसकी स्थापना वर्ष में 1919 में हुई, इसका मुख्य उद्देश्य और नीति अन्याय का विरोध करना था। सामन्त प्रथा–बिजोलिया के

किसानों को भी बेगार, लागतें और 75 अन्य कर देने पड़ते थे। जागीर की आय केवल बिजोलिया राव के निजी रहन–सहन पर ही व्यय होती थी। ठिकाने का एक मात्र उद्देश्य प्रजा और विशेषकर किसानों का अधिक से अधिक शोषण करना था तथा अपने वैभव एवं विलास के लिये अधिकाधिक आय प्राप्त करना था। जब ये शोषण एवं अत्याचार चरम सीमा पर पहुँच गया तो किसानों का धैर्य समाप्त हो गया, किसान विद्रोही हो उठे और उन्होंने ठिकाने का विरोध करने का साहस किया।[16]

1906 ई. में रावकृष्णसिंह की मृत्यु के बाद उसका नजदीकी रिश्तेदार राव पृथ्वीसिंह जागीरदार बना। मेवाड़ रियासत की परम्परा के अनुसार पृथ्वीसिंह को उत्तराधिकार कर **"तलवार बन्धाई"** देना था। इसके लिए राव पृथ्वीसिंह ने बिजौलिया की जनता पर एक नया कर लगा दिया। 1913 ई. में साधु सीतारामदास के नेतृत्व में लगभग 100 किसान राव पृथ्वीसिंह से मिलने गये जिसे ठिकानेदार ने नजर अंदाज कर दिया। जून, 1914 में मेवाड़ रियासत ने किसानों को कुछ छूट प्रदान की। बिजौलिया किसान आंदोलन में 1916 ई. में **विजयसिंह पथिक** ने प्रवेश किया। विजयसिंह पथिक का वास्तविक नाम **भूपसिंह** था जो बुलन्द शहर के रहने वाले थे। विजयसिंह पथिक ने 1917 में हरियाली अमावस्या के दिन ऊपर माल पंचबोर्ड की स्थापना की थी। श्रीमन्ना पटेल को इसका सरपंच बनाया। माणिक्यलाल वर्मा रामनारायण चौधरी आदि नेता भी बिजौलिया आन्दोलन में सम्मिलित हो गये थे। धीरे–धीरे इस आन्दोलन का स्वरूप विस्तृत हो गया। 1920 ई. में जब राष्ट्रीय कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन प्रारंभ किया तो बिजौलिया किसान आन्दोलन को इससे प्रोत्साहन मिला। गणेश शंकर विद्यार्थी ने कानपुर से प्रकाशित समाचार पत्र 'प्रताप' में बिजौलिया किसान आन्दोलन के समर्थन में क्रान्तिकारी लेख प्रकाशित करवाये। भारत सरकार के राजपूताना स्थित एजेण्ट हॉलैण्ड 4 फरवरी, 1922 को बिजौलिया आए थे। 1927 से बिजौलिया किसान आन्दोलन के मुख्य नेता माणिक्यलाल वर्मा थे। जनवरी

1927 में मेवाड़ के बन्दोबस्त अधिकारी श्रीट्रेन्च बिजौलिया आए थे। राजस्थान सेवा संघ द्वारा प्रकाशित राजस्थान केसरी तथा नवीन राजस्थान जैसे समाचार पत्रों में बिजौलिया किसान आंदोलन के समर्थन में क्रांतिकारी लेख छपे थे। सितम्बर, 1923 को विजयसिंह पथिक को गिरफ्तार किया था और उन्हें सजा हो गई। 1927 ई. के पश्चात् विजयसिंह पथिक तथा माणिक्यलाल वर्मा में मतभेद हो गये तथा पथिक जी आन्दोलन से तटस्थ हो गये तथा बिजौलिया किसान आन्दोलन के मुख्य नेता माणिक्यलाल वर्मा हो गये थे। बिजौलिया किसान आन्दोलन 1941 ई. में मेवाड़ के प्रधानमंत्री टी राघवाचार्य तथा ब्रिटिश रेजीडेन्ट विल्किन्स की मध्यस्थता के किसानों एवं शासकों के मध्य हुए समझौते के द्वारा 'जयहिन्द' के उद्घोष से समाप्त हुआ।[17]

बेगूँ किसान आन्दोलन

बिजौलिया किसान आंदोलन से प्रोत्साहित होकर बेगूँ के किसानों ने भी अत्यधिक लाग–बाग, बैठ, बैगार एवं लगान के विरोध में आंदोलन करने का निर्णय लिया। बेगूँ भी मेवाड़ रियासत का प्रथम श्रेणी का ठिकाना था। बेगूँ वर्तमान में चित्तौड़गढ़ जिले में स्थित है। बेगूँ के किसानों ने 1921 ई. मेनाल नामक स्थान पर एकत्रित होकर अपनी मांगों को मनवाने के लिए आंदोलन करने का निर्णय किया। बेगूँ किसान आंदोलन का नेतृत्व विजयसिंह पथिक के निर्देशन पर रामनारायण चौधरी द्वारा किया गया था। किसानों एवं जागीरदारों के मध्य आंदोलन एवं दमनचक्र प्रारम्भ हो गए। 1923 ई. में बेगूँ के किसानों तथा ठाकुर अनूपसिंह के मध्य समझौता हो गया। मेवाड़ के महाराजा ने इस समझौता को "बोल्शेविक" की संज्ञा दी थी तथा आंदोलन की जाँच के लिए 'ट्रेंच आयोग' का गठन कर दिया। जुलाई 1923 ई. में किसानों ने स्थिति की पुर्नसमीक्षा के लिए गोविन्दपुरा गांव में एक आमसभा का आयोजन किया। जब यह सभा शान्तिपूर्ण चल रही थी तब ट्रेंच के आदेशानुसार सेना ने सभा को घेरकर गोलियाँ चला दी जिससे रूपाजी एवं कृपाजी नामक किसान शहीद हो गये।[18]

अलवर किसान आन्दोलन

अलवर रियासत में लगभग 20 प्रतिशत भूमि जागीरदारों के अधीन तथा लगभग 80 प्रतिशत भूमि खालसा के अधीन थी। जिन पर भू–स्वामित्व के किसानों को अधिकार प्राप्त थे जिन्हें विश्वेदारों के नाम से जाना जाता है। 1922 ई. में नया भूमि बन्दोबस्त लागू हुआ। इसके तहत 1923 में भू–राजस्व की नई दरें लागू कर दी गई। 1922 ई. में नये भूमि बन्दोबस्त में उच्च वर्ग के किसानों की विशेष स्थिति को समाप्त कर दिया। अलवर रियासत में जंगली सुअरों को अनाज खिलाकर पाला जाता था। ये सुअर किसानों की खड़ी फसलों को खा जाते थे। इन सबके विरोध में किसानों ने आन्दोलन आरम्भ कर दिये। मई, 1925 ई. में अलवर के किसानों ने आन्दोलन की रूपरेखा तैयार करने के लिए नीमूचाणा गांव में एक शान्तिपूर्ण आमसभा का आयोजन किया। जब यह सभा शान्तिपूर्ण चल रही थी तभी सेना ने गोलियाँ चली दी जिसमें सैंकड़ों लोग शहीद हो गये एवं अनेक घायल हुए। महात्मा गाँधी ने इस नीमूचाणा हत्या काण्ड़ को जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की संज्ञा दी थी तथा इसे डेरिज्म डबल डिस्ट्रील्ड कहा।

अलवर रियासत में मेव जाति के किसानों ने 1932–33 ई. में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। मेवों ने बांध व सड़क बनाने, धास काटने, संघों की सफाई करने तथा बेगार समाप्त करने की मांगों के लिए आन्दोलन किया था। अलवर के मेव किसान आन्दोलन कर नेतृत्व गुड़गांव के मेव नेता चौधरी यासीन खान द्वारा किया गया था। इतिहासकारों के अनुसार आन्दोलन कालान्तर में साम्प्रदायिक प्रभाव में भी आ गया था। 1933 ई. के अन्त तक मेव आन्दोलन समाप्त हो गया।[19]

भरतपुर किसान आन्दोलन

1931 ई. में नया भूमि बन्दोबस्त लागू किया गया जिससे भू–राजस्व में वृद्धि हो गई। भू–राजस्व अधिकारी लम्बरदारों ने इसके विरोध में आन्दोलन करने का निर्णय लिया। नवम्बर 1931 ई. में भोजी लम्बरदार को गिरफ्तार कर लिया गया तथा सम्पूर्ण आन्दोलन समाप्त हो गया।[20]

बूँदी किसान आन्दोलन

बिजौलिया किसान आन्दोलन से प्रेरित होकर बूंदी के किसानों ने राजस्थान सेवा संघ के कार्यकर्त्ताओं नयनूराम शर्मा के नेतृत्व में आन्दोलन किया। 1922 ई. में बूंदी रियासत के बरड़ किसानों द्वारा राजस्थान सेवा संघ के कार्यकर्त्ता भंवरलाल सोनी के नेतृत्व में बरड़ किसान आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। मई, 1922 को ये सभी किसान चार–पाँच हजार की संख्या में निमाना पहुँचे। धीरे–धीरे यह आन्दोलन तेज गति एवं विशाल आकार ग्रहण करता गया। अप्रैल, 1923 को डाबी में किसानों ने एक आम सभा का आयोजन कर आन्दोलन की रूपरेखा तैयार की। तब पुलिस अधिकारी के आदेश पर गोलियाँ चलीं जिसमें नानकजी भील शहीद हो गये थे। माणिक्यलाल वर्मा ने नानकजी भील की स्मृति में 'अर्जी' शीर्षक के नाम से एक गीत लिखा जो आन्दोलनकारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना।[21]

राजस्थान में अन्य किसान आन्दोलन

- बीकानेर रियासत में गंगनहर क्षेत्र किसान आन्दोलन चलाने के लिए दरबारा सिंह की अध्यक्षता में 'जमींदार एसोसियेशन' का गठन हुआ था। बीकानेर की जागीरों में किसान नेता जीवन चौधरी ने प्रजामण्डल के सहयोग से किसानों की समस्याओं को शासकों के समक्ष उठाया। बीकानेर राज्य के प्रथम श्रेणी के महाजन ठिकाने में 1938 ई. में किसान आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जो 1942 ई. में सफलतापूर्वक समाप्त हुआ था। बीकानेर रियासत के किसान आन्दोलन में सबसे महत्त्वपूर्ण दूधवाखारा

किसान आन्दोलन था। बीकानेर प्रजा परिषद ने हनुमान सिंह के नेतृत्व में इस किसान आन्दोलन को पूरा समर्थन किया था।

- जयपुर राज्य कौन्सिल ने शेखावाटी के ठिकानेदारों को किसानों के प्रति शालीन व्यवहार करने का निर्देश दिया था। शेखावाटी किसानों में किसान आन्दोलन का केन्द्र 1931 ई. में मण्डवा बनता जा रहा था। फरवरी 1932 में बसन्त पंचमी के मौके पर झुंझनू में आयोजित अखिल भारतीय जाट महासभा का 23वाँ अधिवेशन किसान आन्दोलन में नये युग का सूत्रपात कर गया। जनवरी, 1934 ई. में सीकर में जाट महायज्ञ के आयोजन के अवसर पर हाथी के प्रश्न पर ठिकानेदार से मतभेद उत्पन्न हुए। 1934–35 ई. तक शेखावाटी के लगभग सभी ठिकानों में किसानों के आन्दोलन एवं शासकों के दमन–चक्र प्रारम्भ हो गये थे। शेखावाटी किसान आन्दोलन का निर्णायक चरण 1931 ई. में प्रारम्भ हुआ जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का भी 1938 ई. में हरिपुरा अधिवेशन के बाद रियासतों के प्रति नीति में बदलाव आया था।
- मारवाड़ में जनचेतना का प्रारम्भ 1915 ई. में गठित ''मरुधर मित्र हितकारिणी सभा'' से माना जाता है। जयनारायण व्यास प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने मारवाड़ में शासकों के शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई थी। जयनारायण व्यास के निर्देशन में 1920 ई. में चाँदमल सुराज के द्वारा ''मारवाड़ सेवा संघ'' की स्थापना की गई जिसका 1924 ई. में नाम बदलकर मारवाड़ हितकारिणी सभा कर दिया गया था। मारवाड़ के किसान आन्दोलन अधिकांशतः इसी संस्था के नेतृत्व में हुए थे। मारवाड़ लोक परिषद् ने 28 मार्च, 1942 ई. को उत्तरदायी सरकार दिवस मनाने की योजना बनाई। इस दिन यहाँ मारवाड़ के सैंकड़ों कार्यकर्त्ताओं ने भाग लेकर शान्तिपूर्ण आमसभा की तब उन पर लाठियाँ चलाई गईं एवं भालों से हमले किये गये जिसमें कई कार्यकर्त्ता घायल हो गये थे।

- मार्च, 1947 ई. को डीडवाना परगने के डाबरा नामक गाँव में मारवाड़ लोक परिषद् एवं मारवाड़ किसान सभा ने संयुक्त सम्मेलन आयोजित किया। जब यह सम्मेलन प्रारम्भ हुआ तो इन पर लाठियों व हथियारों से हमला किया गया जिसमें कई शहीद हुए एवं सैंकड़ों घायल हुए। भूपसिंह का जन्म बुलन्दशहर जिले के गुठावली गांव में चैत्र कृष्ण 1 सं. 1930 (1830 ई.) को हुआ था। 1907 ई. में भूपसिंह प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्र शान्याल तथा रासबिहारी बोस के सम्पर्क में आये।
- बिजौलिया में विधा प्रचारिणी सभा का संचालन हीराभाई किंकर ने कर रखा था। जिसकी एक शाखा साधु सीमाराम दास ने स्थापित की थी। पथिकजी ने सन् 1917 में हरियाली अमावस्या के दिन ''ऊपरमाल पंच बोर्ड'' नाम से एक संगठन स्थापित किया तथा क्रान्ति की शुरुआत कर दी। पथिकजी ने बिजौलिया के किसानों पर हो रहे अत्याचारों के सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक को एक पत्र लिखा था। 1918 ई. में पथिकजी कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली गये। बिजौलिया में किसान अत्याचारों की जांच के लिए अप्रैल 1919 में न्यायमूर्ति बिन्दुलाल भट्टाचार्य की अध्यक्षता में एक जांच आयोग गठित किया गया। वर्धा से राजस्थान केसरी नामक एक पत्र निकाला गया। जिसके सम्पादक–पथिकजी, सह–सम्पादक–रामनारायण चौधरी और ईश्वरदासजी आसिया, व्यवस्थापक–हरिभाई किंकर तथा कन्हैयालाल थे। पत्र की आर्थिक जिम्मेदाी सेठ जमनालाल बजाज ने उठाई थी। पत्र सारे देश में लोकप्रिय हो गये। 1920 में पथिकजी ने अजमेर में राजस्थान सेवा संघ की स्थापना की।
- मेवाड़ रियासत ने सन् 1919 में एक जाँच आयोग भी गठित किया जिसकी अनुशंसा पर सभी बन्दी किसानों को रिहा कर दिया गया। सन्

1920 से जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया तो बिजौलिया किसान आन्दोलन को इससे प्रोत्साहन मिला।

- 1920 की नागपुर कांग्रेस में श्री विजयसिंह पथिकजी, साधु सीतारामदास, रामनारायण चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा, किंकरजी एवं कई किसान नेता बिजौलिया सत्याग्रह के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी ने मिले।

इस प्रकार राजस्थान प्रान्त के विभिन्न ठिकानों एवं जागीरों में इन अन्तर्विरोधों का लाभ किसानों को भरपूर रूप में मिला एवं किसान संगठित होने व सामंत विरोधी संघर्ष आरम्भ करने में सफल रहे।

कृषक आंदोलन एवं महिला

रियासतों की जागीर क्षेत्र में सामान्यतः एवं कृषक वर्ग पर शुल्क का असहनीय बोझ था। सामन्तों की अनवरत आर्थिक नीतियों का परिणाम यह हुआ कि वे अधिकाधिक वसूली करने लगे। लगान, बेगार, लाग–बाग में वृद्धि कर दी गई। कृषि कर्मी एवं श्रम व्यवसायी जातियों पर अत्यधिक कर थोप दिये गये यहाँ तक कि गोबर के कण्डों की टोकरी, लकड़ी की टोकरी और मिट्टी ढोने वाले गधों पर भी शुल्क लगा दिया गया। बूंदी में 1922 तक वार लेवी वसूल की जाती थी। बिजौलिया में किसानों पर 1903 में नया कर ''चँवरी कर'' लागू किया गया और अन्य लाग–बाग भी बढ़ा दिये गये।

इस प्रकार यह समस्त वस्तु महिलाओं से सम्बन्ध रहीं। इस कारण कृषक आन्दोलनों में महिलाओं ने भी बढ़ चढ़कर भाग लिया। कृषक कर्मी एवं व्यवसायी वर्ग की महिलाओं ने सामन्तों की लाग–बाग, लगान, बेगार नीति, ठिकानेदारों की दमनात्मक नीति एवं उनके कर्मचारियों के अपमानजनक रवैये के कारण आंदोलन में भाग लेने को विवश हुई। इस वर्ग की स्त्रियों को परम्परागत सामन्ती प्रणाली के विरुद्ध व्यापारी वर्ग एवं राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित कार्यकर्त्ताओं की स्त्रियों ने इन आंदोलनों में स्त्रियों को नेतृत्व प्रदान किया। यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान में उस वर्ग की स्त्रियों ने जो सामन्ती प्रणाली के प्रचलन के समय

राजनीतिक एवं प्रशासनिक कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। जन आन्दोलन के नेतृत्व अथवा इसमें कोई योगदान नहीं दिया। अतः राज्यों में होने वाले जन आंदोलन में व्यापारी वर्ग की महिलाओं ने एक सीमा तक नेतृत्व किया।

सन् 1922 में बिजौलिया बरड़, बेगूँ के किसान आंदोलन में श्रीमती अंजना देवी, श्रीमती सत्यभामा देवी, श्रीमती नारायणी देवी के नेतृत्व में कृषक स्त्रियों ने भाग लिया। शासन की तरफ से दमन एवं अपमानजनक व्यवहार के बावजूद स्त्रियों ने लाग–बाग, लगान देना एवं बेगार करने से इन्कार कर दिया। श्रीमती अंजना देवी के नेतृत्व में अमरगढ़ ठिकाने में मीणा जाति के खिलाफ अत्याचारों के विरुद्ध आंदोलन किया गया। अलवर में सुशीला देवी त्रिपाठी, जोधपुर में श्रीमती महिला देवी किंकर के नेतृत्व में कृषक आंदोलन में भाग लिया।

शेखावाटी क्षेत्र में प्रजामण्डल के निर्देशन में जाट किसान पंचायतों के संगठन में 1939 में आंदोलन किया। इसमें किसानों की प्रमुख मांगें अकाल पीड़ितों की सहायता, लगान में कमी, दमनात्मक कानूनों की समाप्ति आदि थे। जयपुर, मुकदगढ़, चौमू एवं शेखावाटी के ठिकानेदारों की दमन नीति एवं कृषिगत सुधारों को लेकर स्त्रियों ने व्यापक प्रदर्शन किये। 1930 में रमादेवी, 1932 में गंगादेवी और श्रीमती भागीरथी देवी के नेतृत्व में किसान आंदोलन हुए। 2 जनवरी 1939 को जमनालाल बजाज की गिरफ्तारी के बाद श्रीमती पार्वतीदेवी के नेतृत्व में 26 फरवरी 1939 को महिलाओं ने किसान दिवस मनाया।[22]

यद्यपि राजस्थान में होने वाले कृषक आंदोलन में स्त्रियों का योगदान सांकेतिक महत्त्व रखता है जिसका सामान्य आंदोलन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। किन्तु फिर भी राजस्थान के लिए यह नई बात थी कि सामान्य वर्ग की महिलायें सामाजिक बन्धनों को त्याग कर कृषक आंदोलन में सम्मिलित हो गई। सामन्ती प्रशासन के विरुद्ध उनका स्वभाव एवं व्यवहार कठिन होना स्वाभाविक ही था। स्त्रियों के इन आंदोलनों में भाग लेने का प्रभाव उनकी संख्या के अनुरूप न

होकर कहीं अधिक प्रभावी होता था। जन आंदोलन में स्त्रियों का भाग लेना सामन्ती अत्याचार की पराकाष्ठा को स्पष्ट करने में अत्यधिक सहायक हुआ।

सीकर एवं शेखावाटी के अन्य ठिकानों के आंदोलन लगभग समानान्तर चल रहे थे। सीकर के किसानों की तथा महिलाओं की इसमें नेतृत्वकारी भूमिका थी। सीकर के किसानों की सफलताऐं शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसानों व महिलाओं को प्रेरित एवं उत्साहित करती थीं। सीकर के किसानों की शिकायतें निरन्तर रूप से जयपुर राज्य के उच्च पदाधिकारियों के समक्ष पहुँच रही थीं। इनकी मुख्य शिकायतें भू–राजस्व की वृद्धि एवं भूमि–बन्दोबस्त में की जा रही अनियमितताओं के खिलाफ थीं। जयपुर दरबार के पदाधिकारियों ने टालम–टोल की नीति अपनाते हुए किसानों को न्याय प्रदान करने का आश्वासन दे रहे थे। सीकर के किसान धैर्य से न्याय का इन्तजार कर रहे थे।

शेखावाटी के अन्य ठिकानों की किसान गतिविधियों का केन्द्र मण्डावा ठिकाना बनता जा रहा था। इन ठिकानों के किसान व महिलाऐं कांग्रेस के आंदोलन से प्रभावित होकर नये आंदोलन की भूमिका तैयार कर रहे थे। अप्रैल, 1930 को मण्डवा की गंगादेवी ने जयपुर राज्य कौंसिल के अध्यक्ष मि.बी.जे. ग्लान्सी को इस सन्दर्भ में एक पत्र लिखा। इस पत्र में इन्होंने लिखा कि, ''आपको शायद पुराने दस्तावेजों से ज्ञात हुआ होगा कि 1925 में कुछ अशांति उत्पन्न करने वाले तत्त्वों ने शेखावाटी में एक आंदोलन संचालित किया था। जिसके पीछे शिकायतों का कोई उपर्युक्त आधार नहीं था। उस समय मामले ने इतना गंभीर मोड़ लिया था कि जनता की शांति एवं व्यवस्था खतरे में पड़ गयी थी। ब्रिटिश भारत का वर्तमान राजनीतिक माहौल हम सब जानते हैं, जिसका प्रभाव शेखावाटी के किसानों व महिलाओं पर दिख रहा है। पुराने अशांति उत्पन्न करने वाले तत्वों ने पुनः अपनी गतिविधियाँ आरम्भ कर दी हैं। राज्य की मदद के बिना अकेला ठिकाना इस आंदोलन को दबाने के लिए कोई प्रभावी कदम

उठाने में सक्षम नहीं होगा। अतः इस खतरे को टालने की दृष्टि से आपकी सहायता की याचना करते हुए मैंने समय पर सूचित कर दिया है।[23]

जयपुर राज्य कौंसिल के अध्यक्ष ने शेखावाटी के पुलिस अधीक्षक को उपरोक्त पत्र के आधार पर मामले की जांच के आदेश दिये। पुलिस अधीक्षक ने 21 अप्रैल, 1930 को अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट किया कि स्थिति अधिक गंभीर नहीं थी। पुलिस अधीक्षक ने यह भी आश्वासन दिया था कि शेखावाटी के किसानों व महिलाओं पर निरनतर नजर रखी जाएगी एवं कोई अगर शांति भंग करने के प्रयास करता है तो कानून कार्यवाही की जायेगी। इस समय ठिकाने की शिकयत के आधार पर किसानों व महिलाओं के खिलाफ कार्यवाही करना संभव नहीं था, क्योंकि किसान वैधानिक सीमाओं में रहकर ही कार्य कर रहे थे। किसान व महिलाऐं ठिकानों पर निरन्तर दबाव बनाये हुए थे एवं किसानों व महिलाओं के खिलाफ की जाने वाली को भी कार्यवाही किसानों के साथ–साथ महिलाओं को अधिक आंदोलित कर सकती थी। ब्रिटिश भारत में नया जन आंदोलन काफी बल पकड़ चुका था एवं अंग्रेज रियासतों में इस आंदोलन को नहीं पनपने देना चाहते थे। अतः रियासती जनता के प्रति अंग्रेजों का रूख काफी नरम हो गया था। सीकर के किसानों व महिलाओं में भी भारी हल–चल थी। किसानों के साथ–साथ महिलाओं के धैर्य का बांध भी टूट रहा था। दिसम्बर, 1930 के अंतिम सप्ताह में सीकर के किसानों का लगभग 400 महिलाओं–पुरुषों का जत्था जयपुर पहुँचा। 1925–28 के मध्य सीकर के किसानों व महिलाओं को जो सुविधाऐं प्रदान की गयी थी उन्हें पुनः छीन लिया गया था। सीकर ठिकाने द्वारा दमनात्मक नीति अपनाने का कारण जयपुर की स्थानीय राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्थितियाँ बनी थी। सीकर के रावराजा ने 1925 का समझौता स्वेच्छा के स्थान पर जयपुर राज्य कौंसिल के अध्यक्ष के दबाव में किया था। अक्टूबर, 1930 में जयपुर के महाराजा मानसिंह इंग्लैण्ड से स्वदेश लौट आये थे एवं उन्हें शीघ्र शासन के पूर्ण अधिकार दिये जाने की संभावना थी। सीकर ठिकाने को यह

भी मान्यता थी कि अंग्रेजी शासन ने उसकी अपमानजनक स्थिति कर दी थी एवं अब अपने महाराजा उसकी मान–प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करेंगे। किसानों एवं महिलाओं की चेतना व संघर्ष इतना अधिक बढ़ गया था कि उसे दमनात्मक कदमों से दबाया नहीं जा सकता था। महिलाओं के दिसम्बर, 1930 के अंतिम सप्ताह में जयपुर दरबार के समक्ष सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया था। 400 महिला–पुरुषों का जत्था जयपुर के अनेक अधिकारियों के समक्ष अपनी शिकायतों एवं समस्याओं के समाधान हेतु स्मरण–पत्र दे चुका था। अन्त में यह महिला पुरुषों का जत्था/समूह जयपुर राज्य कौंसिल के अध्यक्ष तक पहुँचने में सफल रहा एवं अपना–अपना स्मरण–पत्र प्रस्तुत किया।

जयपुर राज्य कौंसिल अध्यक्ष ने किसानों एवं महिला–पुरुषों को सलाह दी कि उनकी शिकयतों पर शीघ्र विचार हो जाएगा। अतः वे पुनः लौटकर सीकर जाऐं। महिलाओं व किसानों को इस बात का भय था कि उनके सीकर लौटने पर उन्हें ठिकाने की ओर से विभिन्न प्रकार की यातनाओं द्वारा तंग किया जाएगा। सीकर ठिकाने की यातनाओं से तंग एवं भयभीत महिला–पुरुष किसानों का जमावड़ा जयपुर में ही बना रहा। किसानों ने व महिलाओं ने तब तक जयपुर से नहीं लौटने का निर्णय लिया जब तक जयपुर दरबार की ओर से उनकी मांगों को ना मान लिया जाये एवं उनकी सुरक्षा का आश्वासन न दिया जाये। इन लोगों ने महाराजा के रास्ते में लेटना भी आरम्भ कर दिया था जो इनके सत्याग्रह का सबसे कारगर तरीका था। इस सत्याग्रह ने जयपुर महाराजा को किसानों के पक्ष में निर्णय लेने पर बाध्य कर दिया था।[24]

जयपुर सरकार ने 1 अप्रैल, 1931 को किसानों को एक आदेश द्वारा जयपुर छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। उन्हें आदेश दिया कि 24 घंटे के अन्तर्गत जयपुर छोड़ दें वरना उन पर जयपुर पेनल कोड की धारा 177 के अंतर्गत मुकदमा चलाया जायेगा। इस आदेश का कारण तो यह था कि जयपुर के महाराजा को 1 अप्रैल, 1931 को पूर्ण शासकीय शक्तियाँ प्रदान की गयीं थी

एवं सीकर के महिला व किसान वहाँ के शाही–जश्न में बाधा डाल रहे थे। किन्तु महिला–पुरुषों को उनके हाल पर नहीं छोड़ा गया बल्कि जयपुर दरबार की ओर से किसानों की समस्याओं को निपटाने का शीघ्र प्रयास भी किया गया था। महिला व किसानों का सत्याग्रह इतना प्रभावी था, यदि शीघ्र कदम न उठायें जाते तो स्थिति अधिक गंभीर हो सकती थी। जयपुर राज्य की ओर से 13 अप्रैल, 1931 को सीकर में एक बंदोबस्त अधिकारी की नियुक्ति कर दी गयी। 16 अप्रैल, 1931 को सीकर का राव राजा जयपुर के महाराजा से मिला। महाराजा ने राव राजा को कहा कि महिलाओं व किसानों को रूपये में 2 आना की छूट दी जाये, यह कि सीनियर ऑफिसर को राजस्व कार्यालय का कार्य संभालना चाहिए। यह सीकर के किसानों की भारी विजय थी। उन्हें भू–राजस्व की दर में तो छूट मिल ही गयी किन्तु साथ ही सीकर के बदनाम राजस्व अधिकारी किशोरसिंह को पद मुक्त करना एक बड़ी घटना थी। किशोर सिंह सीकर के राव राजा कल्याणसिंह का चचेरा भाई था। 16 अप्रैल, 1931 को महाराजा द्वारा दी गई सलाह के आधार पर जून 1931 में राजस्व में छूट की घोषणा की एवं भविष्य में भी इस छूट को लागू रखने का वादा किया गया तथा किसानों की अन्य शिकायतों को दूर करने का आश्वासन दिया गया था। किन्तु वास्तव में किसी भी शिकायत को दूर नहीं किया एवं किसान तथा महिलायें निरन्तर जयपुर राज्य को अपनी अपीलें समय–समय पर भेजते रहे।

संपूर्ण शेखावाटी के महिला–पुरुषों का असंतोष बढ़ता जा रहा था। ठिकाने निरन्तर रूप से किसानों को तथा स्त्री–पुरुषों को परेशान कर रहे थे। शेखावाटी के जाट किसानों व महिलाओं की मांग पर अखिल भारतीय जाट महासभा एवं राजस्थान जाट सभा के प्रतिनिधि मण्डल ने प्रदेश के अनेक गांवों का दौरा किया। इस प्रतिनिधि मण्डल ने महिलाओं व किसानों की समस्याओं की जांच की एवं विभिन्न सभाओं के द्वारा किसानों व महिलाओं को अपना संघर्ष तेज करने का आह्वान किया। भरतपुर के निवासी एवं राजस्थान जाट सभा के

नेता ठाकुर देशराज की भूमिका इस समय काफी महत्वपूर्ण थी। वह स्वयं उपरोक्त प्रतिनिधि मण्डल का सदस्य था एवं उसने अजमेर से प्रकाशित समाचार–पत्र ''राजस्थान संदेश'' के माध्यम से शेखावाटी की महिलाओं व किसानों की समस्याओं को उजागर एवं प्रचारित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। शेखावाटी की महिलाओं ने जातीय आधारों पर संगठित होना आरम्भ किया। राजस्थान जाट सभा के प्रचार कार्यों ने शेखावाटी के जाट किसानों में नयी शक्ति एवं साहस का संचार किया था।

स्थानीय स्तर पर जाट सभा के कार्यक्रम जाटों की महिलाओं व पुरुषों में एकता स्थापित करने में सफल रहे थे। उपरोक्त गतिविधियों के क्रम में 11–13 फरवरी, 1932 में बसंत पंचमी के अवसर पर झुंझनू में अखिल भारतीय जाट महासभा का 23वाँ अधिवेशन आयोजित हुआ था। इसमें लगभग 60 हजार महिला पुरुष एकत्रित हुए थे। जिससे जाट किसानों ने अपने आंदोलन को आगे बढ़ाने के उत्साह का संचार हुआ। इस सभा ने सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही मुद्दों पर विचार किया था। इस सभा द्वारा पारित प्रस्ताव इस प्रकार थे–

- इस क्षेत्र (शेखावाटी) के जाटों को स्नेह एवं भाई–चारे से संगठित हो जाना चाहिए।
- जाटों को चाहिए कि वे अपने बच्चों को नियमित रूप से उच्च शिक्षार्थ स्कूल भेजें।
- सभी जाटों के अच्छे नाम रखे जाने चाहिए एवं वे अपने नामों के पीछे सिंह जोड़ें।
- सभी जाट बच्चों को यज्ञोपवीत पहनना चाहिए।
- जाटों में बाल–विवाह पर रोक लगाई जाये।
- शादी एवं गहनों पर कम धन व्यय किया जाना चाहिए।[25]

जाट महासभा के झुंझनू सम्मेलन ने शेखावाटी के महिलाओं व पुरुषों के वर्षों से चले आ रहे संघर्ष को अधिक तीव्र कर दिया था। इस आयोजन का

उद्देश्य जाटों में एकता की भावना जाग्रत करने का फैसला किया गया था। इस उद्देश्य हेतु सीकर में एक कार्यालय खोला गया एवं ठिकाने की अनुमति प्राप्त किये बिना ही महायज्ञ की तैयारियाँ आरंभ कर दी गयी। सीकर में 20–26 जनवरी 1934 ई. को जाट महायज्ञ का आयोजन हुआ। महायज्ञ के सहायक आयोजनों में ठिकाने के प्रति कटुता दिखाते हुए उत्तेजनापूर्ण भाषण दिये गये थे। समाज सुधार के घोषणा में वर्ग कटुता एवं वर्ग घृणा को बढ़ावा मिला जिससे महिला–किसान आंदोलन के अधिक तीव्र एवं तीखे होने की सम्भावना थी। जाट किसानों व महिलाओं ने सीकर ठिकाने की इस कठोरता का बलपूर्वक विरोध किया एवं विरोधस्वरूप करबंदी अभियान आरम्भ कर दिया। इस प्रकार सीकर महायज्ञ के उपरान्त ही सीकर के किसानों के नये संघर्ष का अध्याय आरंभ हुआ। फरवरी, 1934 के पहले सप्ताह में सैंकड़ों की संख्या में महिला–पुरुष सीकर ठिकाने के जयपुर पहुँचे। लगभग 20 स्त्री पुरुषों के शिष्ट मण्डल ने 18 फरवरी, 1934 को अपनी शिकायत एवं मांग–पत्र जयपुर राज्य कौंसिल के उपाध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत किया। इन महिला पुरुषों ने लगातार जयपुर सरकार पर दबाव बनाये रखा। 20 मार्च 1934 को जयपुर राज्य कौंसिल के उपाध्यक्ष ने सीकर के राव राजा के साथ महिलाओं के मांग–पत्र पर विचार–विमर्श किया एवं निर्णय लिया कि जब तक सीकर का नव–नियुक्त सीनियर ऑफिसर पदभार न संभाले तब तक कोई कार्यभार नहीं किये जायें। मई 1934 में वेब ने पदभार संभालते ही जाट किसानों व महिलाओं की शिकयतों की जांच की। जाट महिला–पुरुषों ने करबंदी आंदोलन चला रखा था एवं समय–समय पर इनका प्रतिनिधि मण्डल जाकर अपनी मांगों की वकालत करता रहा था। सीकर के सीनियर ऑफिसर कैप्टेन वेब पर भी किसान प्रतिनिधियों ने दवाब डालना आरम्भ कर दिया था। इस सबके परिणामस्वरूप अगस्त, 1934 में सीकर ठिकाने के सीनियर ऑफिसर ने राव राजा के निर्णय के आधार पर किये जाने वाले सुधारों की घोषणा की।

सीकर एवं शेखावाटी के अन्य ठिकानों के महिलाओं तथा किसानों का लम्बे समय से चला आ रहा संघर्ष 1934 के अंत तक लगभग समान रूप से चला एवं कुछ सुविधायें प्राप्त करने में सफल रहा। आरंभ से ही ये दोनों आंदोलन एक–दूसरे के पूरक के रूप में चल रहे थे। सीकर के अगस्त, 1934 के समझौते के बाद ही शेखावाटी के अन्य ठिकानों का महिला व किसान संघर्ष तीव्र हुआ था। 1934 का वर्ष शेखावाटी के महिला–किसान आंदोलनों का सफलतम वर्ष था। महिलाओं की मांगों को न्यायिक आधार मिल गया था। सीकर एवं अन्य ठिकानों में महिलाओं की समस्याओं की जाँच हेतु जयपुर सरकार द्वारा जाँच समिति एवं आयोग गठित हो गये थे। किन्तु आंदोलन पर सबसे बड़ा प्रहार 25, दिसम्बर 1934 का अधिनियम था जिसके द्वारा महिलाओं तथा किसानों की गतिविधियों को प्रतिबंधित कर दिया था। 1935 के आरंभ से ही ठिकानों ने महिलाओं व किसानों के साथ कड़ा व्यवहार आरंभ कर दिया था। शेखावाटी का महिला–किसान संघर्ष अब तक इतना परिपक्व हो गया था कि उसे आसानी से कुचला या दबाया नहीं जा सकता था। हाँ इतना अवश्य था कि उपरोक्त अधिनियम के बाद महिलाओं को कड़े संघर्ष का मुकाबला करना पड़ा था। 24 दिसम्बर, 1934 के समझौते के अनुसार शेखावाटी के ठिकानों ने राजस्व वसूली का कार्य आरंभ कर दिया था। किन्तु जनवरी, 1935 में ही राजस्व की दर को लेकर ठिकानों एवं महिला किसानों के मध्य विवाद उत्पन्न हो गया था तथा किसानों व महिलाओं ने राजस्व देने से साफ इन्कार कर दिया था।[26]

महिलाओं व किसानों के द्वारा राजस्व के भुगतान न करने का कारण ठिकानों द्वारा समझौते के अनुसार राजस्व की मांग का निर्धारण न करना था। महिला–किसान 4 आना प्रति रूपये की छूट के बाद केवल भू–राजस्व का ही भुगतान करना चाहते थे। ठिकाने चार आना प्रति रूपये की छूट के बादएक रूपया छः पैसे प्रति बीघा की दर से भू–राजस्व वसूल करना चाहते थे जबकि महिला–किसान बारह आना तीन पैसे की दर से ही भुगतान करना चाहते थे।

नवलगढ़ ठिकाने के किसानों व महिलाओं की यह भी शिकायत थी कि विद्युत के 2 आना एवं मोटर वाहन के 2 आना कुल चार आना प्रति बीघा की दर से लिये जाना अन्यायपूर्ण था। अतः इन दोनों मदों के नाम पर ठिकानों द्वारा वसूली न की जाने की मांग की। महिलाअें व किसानों ने अधिक दबाव पड़ने पर निजामत में राजस्व की राशि जमा कराना आरंभ कर दिया था। महिलाओं द्वारा जमा की जाने वाली राशि में राजस्व के अतिरिक्त न तो कोई लाग–बाग शामिल थी एवं न ही पिछले वर्षों की बकाया राशि।

इन ठिकानों को जो दमनात्मक शक्तियाँ प्रदान की गयी थीं ठिकाने उनका भरपूर उपयोग कर रहे थे। ठिकाने बकाया राशि की वसूली महिलाओं व किसानों की जायदाद एवं पशुधन की जब्ती के द्वारा कर रहे थे। नेताओं का आरोप था कि उनके खिलाफ वृक्ष काटने के झूठे फौजदारी मुकदमों को वापस लेने का आश्वासन पूरा नहीं किया जा रहा है। अन्त में कहा कि ठिकानों ने झूठे बकाया राशि के मुकदमें अदालत में दायर कर दिये हैं जिनका उद्देश्य महिलाओं व किसानों को उत्पीड़ित करना है।

इस वर्ष फसल की उपज रूपये में आठ आना होने के उपरान्त भी ठिकाने भारी राजस्व की राशि महिला किसानों पर थोप रहे हैं। जयपुर राज्य कौंसिल के राजस्व सदस्य ने 16 अप्रैल 1936 को शेखावाटी के नाजिम को महिलाओं की समस्याओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के आदेश दिये। साथ ही नाजिम को महिला किसानों के मामले में विस्तृत जाँच के आदेश भी दिये गये थे। महिलाऐं व किसान नाजिम के द्वारा ही भू–राजस्व का निर्धारण चाहते थे। राजस्व सदस्य के नाजिम को राजस्व के निर्धारण का अधिकार प्रदान कर दिया था। ठिकानों को नाजिम द्वारा भू–राजस्व का निर्धारण मंजूर नहीं था। अतः ठिकानों ने इसके खिलाफ राजस्व विभाग में याचनाऐं प्रस्तुत की थी। किन्तु राजस्व सदस्य ने इन याचनाओं को निरसत करते हुए यह घोषणा की कि पूर्व निर्धारित मामलों पर कोई पुनर्विचार नहीं होगा एवं किसानों से भू–राजस्व के

अतिरिक्त ठिकाने कोई अन्यायपूर्ण लाग–बाग नहीं लेंगे। जयपुर सरकार ने शेखावाटी के ठिकानों की भूमि–बन्दोबस्त कार्य को तीव्र कर दिया जिससे लम्बे समय में चले आ रहे महिला किसान आंदोलनों को शांत किया जा सकता था। राजस्व सदस्य ने यह भी स्वीकार कर लिया कि किसान इच्छानुसार ठिकाने अथवा निजामत में राजस्व जमा करा सकते थे। राजस्व सदस्य द्वारा की गयी घोषणायें एवं आदेश एक समझौते का ही रूप थे।[27]

1936 में शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसान आंदोलन सफलता के एक सोपान पर पहुँच गये थे। महिलाऐं एवं किसान राजस्व सदस्य द्वारा घोषित नयी व्यवस्था से संतुष्ट थे। भूमि बंदोबस्त होने तक यह व्यवस्था निरन्तर रूप से जारी रखने का आश्वासन भी दिया गया था। यदि असंतोष था तो केवल ठिकानों में। ठिकाने निरंतर उत्तेजित होते जा रहे थे एवं अपने पुराने अधिकार एवं शक्तियों को पुनः प्राप्त करने हेतु प्रयासरत हो गये। 1938 के आरंभ तक शेखावाटी के ठिकानों के महिला व किसान शान्त बने रहे। शेखावाटी के महिला–किसान आंदोलनों का दूसरा चरण (1930–1938) अनेक उपलब्धियाँ समेटे हुआ था। महिलाओं तथा किसानों को सामंती शोषण के भारी दबाव से काफी राहत पहुँची थी। अभी तक सामंत–महिला किसान संघर्ष अपने निर्णायक दौर में नहीं पहुँचा था, किन्तु महिला चेतना इतनी अधिक विकसित हो गयी थी कि सामंत अब पुनः उनके ऊपर कड़ा नियंत्रण स्थापित नहीं कर सकते थे। राजस्थान के अन्य क्षेत्रों के जन–आंदोलनों से उत्साह तो शेखावाटी के महिला संघर्ष को आरंभ से ही मिल रहा था। अपने पहले चरण में यह संघर्ष अलग–अलग ही चल रहा था। किन्तु दूसरे चरण में यह आंदोलन राजस्थान के जन आन्दोलनों का अभिन्न अंग बन गया था। दूसरे चरण में एक सामाजिक विसंगति अवश्य उत्पन्न हो गयी थी और वह थी जातीय साम्प्रदायिकता।

शेखावाटी के किसानों तथा महिलाओं का संघर्ष का तीसरा चरण निर्णायक था, जिसमें किसानों एवं महिलाओं ने सामंती एवं औपनिवेशिक शोषण

का जुआ उतार फेंका। इस चरण में महिला किसान संघर्ष का सामाजिक एवं राजनीतिक आधार भी काफी विस्तृत हो गया था। यह महिला संघर्ष जो 1938 के पहले तक अलग–थलग चल रहा था, अब मुख्य राष्ट्रीय धारा से जुड़ गया था। अब तक महिलायें केवल आर्थिक एवं सामाजिक मांगों को लेकर संघर्षरत थे, किन्तु तीसरे चरण में राजनीतिक मांगें किसान एवं महिला संघर्ष का आधार बन गयीं थीं। तिसरे चरण में यह संघर्ष केवल जाट जाति का आंदोलन नहीं रह गया था, वरन् इसमें सभी जाति की महिलायें एवं पुरुषों की भागीदारी समान रूप से हो गयी थी। इस समय जयपुर राज्य प्रजामण्डल ने महिलाओं व किसानों को खुला समर्थन देना आरंभ किया।

शेखावाटी के किसानों व महिलाओं ने करबंदी आंदोलन को तेज कर दिया था। ठिकानेदारों एवं जयपुर दरबार की सत्ता को खुली चुनौती दी थी। शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसानों व महिलाओं के साथ ही सीकर की महिलाओं ने भी जंग छेड़ दी थी। सीकर के महिला किसानों में यह भय भी व्याप्त हो गया था कि जिस प्रकार शेखावाटी के अन्य ठिकानों के बंदोबस्त को रद्द कर दिया था, कहीं उसी प्रकार सीकर के खालसा क्षेत्र के बंदोबस्त को भी रद्द न कर दिया जाये। अतः सीकर के महिलाओं व किसानों ने पूर्व में ही संगठित होकर मुक्ति संघर्ष को तीव्र कर दिया। 1945 में सीकर एवं शेखावाटी के महिलाओं व किसानों का संघर्ष पुनः शक्तिशाली रूप में आरंभ हो गया। 27 सितम्बर, 1945 को जयपुर में प्रजामण्डल द्वारा आयोजित विशाल जनसभा में महिला नेता ने अपने विचार व्यक्त किये थे कि ''यह सभा शेखावाटी एवं विशेषकर भरूली एवं परसरामपुरा के महिलाओं व किसानों की समस्याओं से सहमत है जहाँ से लगभग 100 से अधिक महिलाऐं यहाँ आई हैं। ठिकानेदारों से भयभीत सरकार वही करती है जो वे चाहते हैं। जागीरदारों ने महिला–किसान संघर्ष की गतिविधियों का खुला विरोध पहले से ही आरंभ कर दिया था। उपरोक्त घटनाऐं इस बात की साक्षी थीं कि जागीरदारों का किसानों तथा

महिलाओं के प्रति रवैय्या दिनोंदिन कठोर होता जा रहा था एवं महिलाओं को उनके हाथों न्याय मिलने की कोई संभावना नहीं थी। महिलाओं एवं जागीरदारों के मध्य अविश्वास इतना गहरा हो चुका था कि दोनों अंतिम सांस तक एक–दूसरे का अस्तित्व मिटाने पर उतारू थे। 31 मार्च, 1949 को वर्तमान राजस्थान प्रदेश का गठन पूर्ण हुआ था। 6 जून, 1949 को राजस्थान सरकार ने महिलाओं तथा किसानों को बेदखली से बचाने के उद्देश्य से राजस्थान महिला सुरक्षा अधिनियम पारित किया। 20 अगस्त, 1949 को भारत सरकार ने राजस्थान मध्य भारत जागीर जाँच समिति का गठन किया। इस समिति ने दिसंबर, 1949 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जो जागीरदारी व्यवस्था के अंत का आधार बनी। 1952 में राजस्थान सरकार ने राजस्थान भूमि सुधार एवं जागीरदारी अधिग्रहण अधिनियम पास किया, जिसके साथ ही जागीरदारी व्यवस्था सदैव के लिए समाप्त हो गयी। अंत में 1955 में राजस्थान भूमि किराया अधिनियम पास हुआ जिससे किसानों को भूमि अधिकार प्राप्त हुये एवं राजस्थान में सामाजिक विकास की नयी धारा आरंभ हुयी।[28]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि तीसरे चरण में सामंत एवं महिला किसानों के मध्य वर्ग संघर्ष अधिक तीव्र हो गया था। किसान, आर्थिक, स्थानीय एवं जातीय संकीर्णताओं से निकलकर अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संदर्भ में राजनीतिक चेतना से युक्त होकर सामाजिक परिवर्तन का आधार बना।

राजस्थान प्रान्त में सभी ठिकानों एवं रियासतों से ली जाने वाली लाग–बागें एवं अन्य कर निम्न प्रकार से हैं।

1. **न्योत चँवरी या चँवरी की लाग** – बिजौलिया ठिकाने में लड़की के विवाह के समय यह लाग किसानों द्वारा जागीरदारों को दी जाती थी।

2. **खीचड़ी लाग** – राज्यों की सेना जब किसी गाँच को पास पड़ाव डालती, तब उसके भोजन के लिए गाँव के लोगों से वसूली जाने वाली लाग को खींचड़ी लाग कहा जाता था।

3. जाजम लाग – विभिन्न रियासतों एवं ठिकानों के द्वारा किसानों से भूमि के विक्रय पर वसूली जाने वाली लाग को जाजम लाग कहा जाता था।

4. डाण लाग – ठिकानों द्वारा एक राज्य से दूसरे राज्य में माल ले जाने पर जो लाग वसूली जाती थी, उसे डाण लाग कहा जाता था।

5. कुँवर कलेवा लाग – ठाकुरों के घर में पुत्र उत्पन्न होने पर कुँवर कलेवा लाग ली जाती थी।

6. बन्दोले री लाग – विभिन्न रियासतों एवं ठिकानों में जब जागीरदारों के घर में विवाह होता था तब गाँव वालों से जागीरदारों द्वारा वसूल की जाने वाली लाग बन्दोले री लाग कही जाती थी।

7. सिंगोटी – राजस्थान की रियासतों एवं ठिकानों द्वारा मवेशी के विक्रय के समय वसूली जाने वाली लाग सिंगोटी कहलाती थी।

8. कीणा लाग – ग्रामीण क्षेत्रों में सब्जी व अन्य सामान खरीदने के बदले दिया जाने वाला अनाज कीणा कहलाता था।

9. प्रिवीपर्स – देशी रियासतों के शासकों को भारत संघ में रियासतों के विलीनीकरण के पश्चात् दिया जाने वाला वार्षिक भत्ता प्रिवीपर्स कहलाता था।

10. बाँह पसाव – सामन्त को प्राप्त सम्मान, जिसमें महाराणा सामन्त के अभिवादन को स्वीकार करते हुए अपने हाथ उस सामन्त के कन्धों पर रख देता था।

11. मिसल – राजदरबार में पंक्तिबद्ध तरीके से बैठने की रीति को मिसल कहा जाता था।

12. ग्रासिये – वे जागीरदार, जो सैनिक सेवा के बदले में शासन के द्वारा दी गई भूमि की उपज का उपयोग करते थे, जो ग्रास कहलाती थी तथा उन जागीरदारों को ग्रासिये कहा जाता था।

13. भौमिये – वे राजपूत, जिन्होंने राज्य की रक्षा के लिए अथवा राजकीय सेवाओं के लिए अपना बलिदान किया था। उन राजपूतों को भौमिये कहा जाता था।

14. खालसा भूमि – वह भूमि जो सीधे शासक के नियंत्रण में होती थी, खालसा भूमि कहलाती थी। खालसा भूमि का उपभोग सीकर तथा शेखावाटी ठिकानों के सामन्तों अथवा जागीरदारों द्वारा किया जाता था।

15. जागीर भूमि – वह भूमि, जो सामन्तों अथवा जागीरदारों के नियंत्रण में होती थी, जागीर भूमि कहलाती थी।

16. लाटा – भूमि कर वसूली की प्रथा, जिसमें ठिकाने के एक अधिकारी की देखरेख में फसल कटती थी तथा जब धान साफ होकर इकट्‌ठा किया जाता था, तब ठिकाने का हिस्सा तौलकर ले लिया जाता था।

17. कूँतना – लगान वसूलने की वह प्रणाली जिसमें खड़ी हुई फसल का अनुमान लगाकर लगान निश्चित कर लिया जाता था। इस प्रकार अनुमानिक लगान को कूँता कहा जाता था।

18. बिगोड़ी – एक ऐसा भूमि–कर जो नकद रकम के रूप में वसूल किया जाता था, बिगोड़ी कहा जाता था।

19. भोग – भूमि–कर का एक रूप जो कि अनाज के रूप में किसानों से वसूला जाता था।

20. खेड़ खर्च/फौज खर्च – मारवाड़ रियासत में शासकों द्वारा सेना अथवा राज्य की फौज के खर्च हेतु वहाँ की जनता से लिया जाने वाला कर खेड़ खर्च अथवा फौज खर्च कहा जाता था।

21. राम–राम लाग – गुजरा लाग के नाम से भी प्रसिद्ध यह लाग लगभग एक रूपया प्रति व्यक्ति की दर से वसूली जाती थी।

22. **कमठा लाग** – राज्य के शासकों के द्वारा वसूली जाने वाली लाग जो दुर्ग अथवा गढ़ के निर्माण कार्य हेतु लिया जाता था।

23. **खरड़ा** – यह लाग रियासतों के श्रमजीवी व्यक्तियों से राज्य के शासकों अथवा सामन्तों द्वारा वसूली जाती थी।

24. **चूड़ा–लाग** – रियासतों के द्वारा चूड़ा नामक लाग तब वसूल की जाती थी जब राज्य के किसान नया चूड़ा पहनते थे।

25. **हल–लाग** – रियासतों के सामन्तों अथवा जागीरदारों द्वारा किसानों से खेत के हल पर वसूल की जाने वाली लाग।

26. **आबियाना** – रियासतों तथा ठिकानों द्वारा पानी पर लगाये जाने वाले टैक्स अथवा शुल्क को आबियाना कहा जाता था।

27. **खांदी** – मारवाड़ रियासत में रैगरों की व्यावसायिक जातियों से सामन्तों तथा जागीरदारों से वसूल किया जाने वाला कर खांदी कहलाता था।

28. **रूखवाली भाछ** – बीकानेर रियासत में बागी लोगों की खूट–खसोट से देश को बचाने के लिए नए सैनिक दायित्वों की पूर्ति हेतु यह कर वसूल किया जाता था। इसे एक तरह का रक्षात्मक कर की भी संज्ञा दी गई। क्योंकि रक्षात्मक कर रियासत की जनता की रक्षा के लिए लगाया जाता था।

29. **गनीम बराड** – मेवाड़ रियासत के शासकों द्वारा युद्ध के समय मेवाड़ के निवासियों से यह युद्ध कर वसूल किया जाता था।

30. **हीद भराई** – मारवाड़ रियासत में वहाँ के शासकों अथवा सामन्तों द्वारा मालियों से वसूल किया जाने वाला कर 'हीद भराई' कहा जाता था।

31. **दाण** – मेवाड़ और जैसलमेर रियासतों में एक–दूसरे अथवा अन्य राज्यों से माल के आयात तथा निर्यात पर लगाया जाने वाला कर दाण कहा जाता था। इस कर पर मेवाड़ तथा जैसलमेर राज्यों के शासकों का आधिपत्य होता था।

32. उत्तराधिकार शुल्क – यह शुल्क विभिन्न राज्यों में विभिन्न नामों से पुकारा या जाना जाता था। जैसे– 'हुक्मनामा', 'पेशकशी', 'कैद–खालसा', 'तलवार–बँधाई', 'नजराना' आदि।

33. पावणा पावरा – राजस्थान प्रान्त की विभिन्न रियासतों द्वारा जहाँ जागीरदार अपने मेहमानों पर होने वाले खर्चे को गाँव वालों से वसूल करते थे। इस प्रकार गाँव वालों से लिया जाने वाला यह अन्यायपूर्ण कर पावणा पावरा कहलाता था।

34. नाता कर – राजस्थान प्रान्त में विधवा के पुनर्विवाह के अवसर पर प्रति विवाह एक रूपये की दर से यह कर वसूल किया जाता था। जोधपुर रियासत में इस कर को कागली या नाता कर कहा जाता था। इसी प्रकार कोटा राज्य में 'नाता–कागली', मेवाड़ रियासत में 'नाता बराड़', बीकानेर में 'नाता' एवं जयपुर राज्य में इसे 'छेली राशि' के नाम से जाना जाता था।

35. घास मरी – रियासतों एवं ठकानों के द्वारा कृषक वर्ग एवं मजदूर वर्ग से वसूल किये जाने वाले चराई–करों का सामूहिक नाम घास–मरी कहलाता था।

36. अखराई – विभिन्न राज्यों एवं ठिकानों के राज्य कोष में जमा होने वाली राशि पर दी जाने वाली रसीद पर एक रूपये पर एक पैसा लिया जाता था। इस प्रकार लिया जाने वाला यह कर अखराई नाम से जाना जाता था।[29]

विभिन्न गृह कर

तात्कालीन राजस्थान प्रान्त में जिस प्रकार से भूमि कर, विवाह कर, पानी कर, कृषि कर आदि लिये जाते थे उसी प्रकार विभिन्न रियासतों में विभिन्न प्रकार के गृह कर भी वूले जाते थे। ये वसूल किये जाने वाले कर घरों पर अथवा घरों में उपयोग की जाने वाली वस्तुओं से संबंधित होते थे। विभिन्न प्रकार के गृह कर निम्न पंक्तियों में दिये जा रहे हैंः–

1. घर गिनती – मारवाड़ में वसूल किया जाने वाला एक प्रकार का गृह कर।

2. घर बराड़ – मेवाड़ रियासत में वसूला जाने वाला एक प्रकार का गृह शुल्क।

3. घर की बिछोती – जयपुर राज्य में घर की बिछोती नामक गृह कर वसूला जाता था।

4. धुँआ भाछ – बीकानेर राज्य में यह गृह कर वसूला जाता था जो धुँआ भाछ कहलाता था।

5. अंगा कर – मारवाड़ रियासत में महाराजा मानसिंह के समय प्रति व्यक्ति से एक रूपये की दर से वसूल किया जाने वाला एक प्रकार का गृह कर।

6. मापा या बारूता कर – मेवाड़ रियासत द्वारा एक गाँव से दूसरे गाँव में माल को लाने अथवा ले जाने पर यह कर वसूल किया जाता था। अथवा दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि मेवाड़ रियासत में एक गाँव से दूसरे गांव में माल के आयात तथा निर्यात पर लगने वाला कर जो मापा या बारूता कर के नाम से जाना जाता था।

7. छटूंद कर – मेवाड़ रियासत में जागीरदार अपनी आय का छठा भाग राज्य के शासक को देता था जिसे छटूंद के नाम से जाना जाता था।

8. जावा माल – विभिन्न ठिकानों की ओर से पशुओं व मवेशियों पर लगाया जाने वाला कर। यह कर साल में एक बार वसूल किया जाता था तथा यह पशुओं की गणना के साथ तय होता था।

9. ईंच कर – विभिनन ठिकानों अथवा राज्यों में सब्जी बेचने वाली मालणियों से वसूला जाने वाला कर ईंच कहलाता था।

10. काठ – विभिन्न रियासतों में जलाने के लिए जंगलों से लकड़ियाँ प्राप्त करने पर राजकीय कर देना पड़ता था। विभिन्न रियासतों में दिया जाने वाला यह कर अलग–अलग नामों से जाना जाता था। जैसे – बीकानेर में 'काठ', जयपुर में 'दरखत की बिछोती', मेवाड़ राज्य में 'खड़लाकड़' तथा मारवाड़ राज्य में यह कर 'कबाड़ा बाब' के नाम से जाना जाता था।

11. जकात – बीकानेर रियासत में वसूल किया जाने वाला सीमा–शुल्क, आयात तथा निर्यात पर लगने वाला कर तथा चुंगी कर जकात कहलाता था। इस कर को जोधपुर रियासत तथा जयपुर राज्य में 'सायर' के नाम से जाना जाता था।[30]

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि राजस्थान के देशी राज्यों में भूमि का अधिकांश भाग जागीरदारों के नियंत्रण में था। अपेक्षाकृत खालसा क्षेत्र के किसानों की स्थिति अच्छी थी, क्योंकि वहाँ राजा का किसानों के साथ सीधा सम्बन्ध था। इसके अतिरिक्त खालसा क्षेत्र में स्थायी भूमि बन्दोबस्त की व्यवस्था समाप्त हो जाने के कारण किसानों की बहुत सी शिकायतों का समाधान हो चुका था। जागीर क्षेत्र में भूमि बन्दोबस्त न होने से वहाँ का किसान वर्ग लाग–बाग, बेगार और लगान की ऊँची दरों के कारण पूर्णतया दुःखी व चिन्तित था। जागीरदार अपने क्षेत्र में दिनों–दिन निरंकुश व स्वेच्छाचारी बनता जा रहा था। राजा का जगीरी क्षेत्र में न्यूनतम हस्तक्षेप था। ऐसी स्थिति में किसान वर्ग को जागीरदार व राजा से न्याय मिलने की सम्भावना नहीं रही, अतः उसने आन्दोलनों का सहारा लिया।[31]

राजस्थान में सिरोही (भील आन्दोलन) और अलवर (मेव आन्दोलन) राज्यों को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में सामान्यतः आन्दोलन अहिंसात्मक तौर पर संचालित किये गये थे।

राजस्थान में किसान आन्दोलनों की एक अन्य विशेषता यह थी कि इनका आधार जातिगत रहा। उदारहणार्थ, बिजौलिया आन्दोलन में धाकड़ जाति की महती भूमिका रही। सीकर और शेखावाटी के आन्दोलनों में जाट जाति का वर्चस्व रहा। मेवाड़ और सिरोही राज्यों के किसान आन्दोलनों के पीछे भील और गरासिया जातियों की शक्ति रही। इसी प्रकार अलवर और भरतपुर राज्यों के आन्दोलनों में मेवों की मुख्य भूमिका रही। आन्दोलनों को सुनियोजित रूप से संचालित करने का श्रेय जाति पंचायतों व जाति संगठनों को दिया जा सकता है। जातीय पंचायतों के निर्णय सभी के लिए अनिवार्य हो गया था क्योंकि ऐसा न करने पर उन्हें जातीय बहिष्कार का भय बना रहता था। एकता बनाये रखने के लिए देवी–देवताओं को साक्षी बनाकर अथवा गंगाजल हाथ में रखवाकर उन्हें शपथ दिलाई जाती थी। भील और गरासियों का ''एकी'' तथा जाटों का ''प्रजापति'' महायज्ञ संगठनों का आधार जाति ही थी।

राजस्थान में प्रायः सभी जागीरदार राजपूत जाति से सम्बन्धित थे और किसान वर्ग में विभिन्न जातियाँ थीं, जिनमें मुख्यतः जाट जाति के लोग थे। सामाजिक दृष्टि से शासक वर्ग किसान वर्ग को हीन दृष्टि से देखता था तथा नीचा समझता था। सामाजिक असमानता के कारण राजपूतों और जाटों के बीच कटुता का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। राजस्थान में किसान आन्दोलनों को यह एक सामाजिक पहलू था।

राजस्थान के किसान आन्दोलनों का नेतृत्व प्रायः बाहर के लोगों ने ही किया था। बिजौलिया, बेगूँ और बून्दी आन्दोलनों में अजमेर में स्थित

सेवा संघ की महती भूमिका रही। विजयसिंह पथिक, रामनारायण आदि नेताओं ने उक्त आन्दोलनों का संचालन किया था। शेखावाटी व सीकर के आन्दोलनों को चलाने का श्रेय रामनारायण चौधरी, ठाकुर देशराज तथा अखिल भारतीय जाट महासभा के नेताओं को दिया जा सकता है। इसी प्रकार मेव आन्दोलनों का नेतृत्व गुरूग्राम (गुड़गावा) के यासीन खाँ ने किया था।

देशी राज्यों में प्रजामण्डलों की स्थापना के बाद किसान आन्दोलनों को नई दिशा प्राप्त हुई। प्रजामण्डलों ने किसानों की दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए आह्वान किया था। उन्होंने समय–समय पर आन्दोलन कर किसानों की शिकायतों को दूर करवाने के लिए भरसक प्रयत्न किये। उन्हीं के प्रयासों के फलस्वरूप जागीरी क्षेत्रों में भूमि बन्दोबस्त की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। आजादी के बाद राजस्थान राज्य का गठन हुआ, तब से किसानों की स्थिति को सुधारने कें लिए अनेक कानून बनाये गये। अन्ततः जागीर उन्मूलन कानून पारित किया गया जिसके फलस्वरूप सदियों पुरानी सामन्ती व्यवस्था की इतिश्री हो गई। भूमि सुधार नियमों के कारण किसान वर्ग की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा।

1905 ई. में लार्ड कर्जन द्वारा किए गए बंगाल के विभाजन के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई। समस्त भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। भारतीय लोगों में विदेशी चीजों का बहिष्कार करने तथा स्वदेशी माल को अपनाने तथा राष्ट्रीय शिक्षा ग्रहण करने की भावना जागृत हुई। स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की यह प्रवृत्ति आगे जाकर गाँधीयुग में खादी उद्योग के विकास में अत्यधिक सहायक हुई।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में खादी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। महात्मा गाँधी खादी को भारतीय जनता की आर्थिक स्वतन्त्रता, निर्भयता,

सभ्यता, एकता तथा अहिंसा का प्रतीक मानते थे। वस्तुतः भारत में और विशेषतः ग्रामीण भारत में स्वदेशी आन्दोलन की सशक्त अभिव्यक्ति खादी के प्रचार–प्रसार के द्वारा ही हुई। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि खादी का इतिहास भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास से जुड़ा हुआ है। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करते हुए महात्मा गाँधी और राष्ट्रीय कांग्रेस ने खादी को स्वदेशी आन्दोलन के प्रतीक के रूप में अपनाया और उसके प्रचार–प्रसार के लिए 1924 ई. में **'अखिल भारत चरखा संघ'** की स्थापना की। गाँधीजी ने 1924 ई. में ही कांग्रेस के अन्तर्गत 'खादी मण्डल' की स्थापना भी की और सम्पूर्ण देश में खादी का काम शुरू कर दिया।

बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक तक राजस्थान की प्रमुख रियासतों में शिक्षा का प्रसार हो गया था। इन रियासतों के अभिजात वर्ग के नवयुवक उत्तरप्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से, जैसे इलाहाबाद, लखनऊ व आगरा आदि, उच्च शिक्षा प्राप्त कर वापस आ चुके थे। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक तक बहुत से राज्यों में पढ़े लिखे लोगों की कमी नहीं रही थी। किन्तु राज्य में कार्य करने का अवसर नहीं मिलने से उनमें असंतोष व्याप्त हो रहा था। अपनी प्रतिभा की उपेक्षा से यह वर्ग रियासती शासकों से अत्यधिक क्रुद्ध था। उच्च पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त यह स्थानीय वर्ग स्वतन्त्रता, समानता, राष्ट्रीयता एवं लोकतन्त्र की अवधारणाओं से तथा उन आदर्शों की प्राप्ति के लिए हुई विभिन्न क्रान्तियों के इतिहास से पूर्णतः अवगत था। अतः इसी मध्यम वर्ग से रियासती जनता के राजनैतिक नेतृत्व का आविर्भाव हुआ। इसी शिक्षित वर्ग ने रियासत में प्रचलित आर्थिक व्यवस्था एवं राजनैतिक व प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त अनियमितताओं तथा दोषों को उजागर कर जनता में जागृति उत्पन्न की। इसी वर्ग ने भाषणों, लेखों, जुलूसों तथा सार्वजनिक सभाओं द्वारा जनता में राजनैतिक चेतना का प्रसार किया और उसे नागरिक अधिकारों तथा उत्तरदायी शासन की

स्थापना हेतु संघर्ष करने की प्रेरणा एवं क्षमता प्रदान की। जन आन्दोलनों का नेतृत्व करते हुए सतत संघर्ष में विविध यातनाएँ सही और बलिदान किए। इस प्रकार लोकतन्त्र के संरक्षक एवं पोषक के रूप में मध्यम वर्ग का जननेतृत्व प्रतिष्ठित हुआ। ऐस नेताओं की गौरवमयी श्रृंखला में उल्लेखनीय हैं– श्री जयनारायण व्यास, श्री हीरालाल शास्त्री, श्री गोकुलभाई भट्ट, श्री माणिक्यलाल वर्मा, श्री जमनालाल बजाज प्रभृति अनेक नेता।

यद्यपि राज्य सरकार ने 1936 ई. में 119 लागें समाप्त कर दी थी फिर भी जागीरदार अपने क्षेत्र में किसानों से ये लागें लेते थे। लोक परिषद ने 1936 ई. में जागीरी क्षेत्र में ली जा रही लागों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा। जागीरदारों के विरुद्ध किसानों को आन्दोलन करने के लिए उत्प्रेरित किया। मारवाड़ लोक परिषद ने किसानों की माँगों का जोरदार समर्थन किया तथा सरकार की कटु आलोचना की। सरकार ने लोक परिषद के विरुद्ध दमन की नीति का अनुसरण किया। 28 मार्च, 1940 ई. में सरकार ने लोक परिषद को अवैध घोषित कर दिया और इसके नेताओं को पकड़ लिया, परन्तु आन्दोलन अबाध गति से चलता रहा। सन् 1940 ई. में सरकार ने लोक परिषद को पुनः मान्यता दे दी। किसान आन्दोलन जोरों से चलने लगा। परिषद ने सरकार की माँग की कि जागीरदार गोचर भूमि की समुचित व्यवस्था करे तथा जागीरदारों द्वारा किसानों से ली जा रही धनराशि की रसीद दी जाये। फरवरी, 1941 ई. में परिषद ने जागीरी क्षेत्र में अवैध तौर पर ली जा रही लाग–बाग की जानकारी प्राप्त करने हेतु एक समिति का गठन किया। इस समिति को जागीरी क्षेत्र में ली जा रही बेगार तथा भूमि लगान की ऊँची दरों का भी पता लगाना था।

किसानों द्वारा लाग–बाग न देने पर जागीरदारों ने उनके विरुद्ध शक्ति का प्रयोग किया तथा उन्हें भाँति–भाँति से तंग किया गया। कई स्थानों पर किसानों की पिटाई की जाने लगी। किसानों की फसलों की लटाई रोक दी गई। उन्हें अपने गाँवों से बेदखल किया गया। त्रस्त किसान जोधपुर पहुँचे और लोक परिषद के माध्यम से सरकार को जागीरदारों के विरुद्ध शिकायत–पत्र प्रेषित किये। 20 मई, 1941 ई. को सरकार ने एक आदेश प्रसारित किया कि जागीरदार 15 दिनों में लटाई का कार्य सम्पन्न करें अन्यथा परगना हाकिम के द्वारा लटाई का कार्य पूरा करवा लिया जायेगा।

इस प्रकार राजस्थान में जन जागृति के विकास में जिन महिलाओं ने योगदान दिया है, उनमें से अधिकांश का जीवन किसी न किसी समस्या से जूझते हुए अथवा परिस्थिति से संघर्ष करते हुए व्यतीत हुआ है। इन निर्भीक महिलाओं ने समय–समय पर ब्रिटिश शासन के दमनपूर्ण रवैये एवं सामन्ती अत्याचारों के प्रति विद्रोही रूख अपनाया और स्पष्टता तथा दृढ़ता से उनके शोषण व अन्याय का विरोध किया। उन्होंने एक जागरूक नागरिक की भी भूमिका का निर्वाह किया तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए जाने वाले अहिंसा–मूलक तथा हिंसामूलक दोनों ही प्रकार के आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। अपने अदम्य साहस और तेजस्वी व्यक्तित्व के कारण अनेक महिलाओं को भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रताड़ित भी किया गया तथा अनेकों बार उन्हें जेल यात्राएँ भी करनी पड़ी। परंतु उनकी संघर्ष यात्रा निरन्तर जारी रही और इन्होंने जन–जागरण के कार्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

संदर्भ

1 पेमाराम, एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 130–136

2 बीकानेर राज–पत्र सं. 29, भाग 51, दिनांक 31 मई, 1938, दृष्टव्य, पेमाराम, उपर्युक्त, परिशिष्ट 13

3 हरिजन, 26 फरवरी, 1938; आर.एल. हाण्डा, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम स्ट्रगल इन प्रिंसली स्टेट्स, पृ. 111–114; पट्टाभि सीता रम्मैया, हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस, पृ. 78–80

4 मेहता, पृथ्वीसिंह, हमारा राजस्थान, पृ. 279

5 सक्सेना, शंकरसहाय, तथा शर्मा, पद्मजा, बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, पृ. 268–70

6 शंकरसहाय सक्सेना तथा पद्मजा शर्मा, बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, पृ. 237–268

7 मिश्र, रतनलाल, शेखावाटी का इतिहास (मंडावा–झुझनूँ, 1948) पृ. 240

8 शर्मा, बी. के., पीजेन्ट मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 133–36

9 वही, पृ. 135

10 सक्सेना, शंकर सहाय, बिजोलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, राजकीय मुद्रणालय, बीकानेर, 1972, पृ. 41–42

11 सक्सेना, शंकर सहाय, बिजोलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, पृ. 127

12 एम.एस. जैन, उपर्युक्त, पृ. 307

13 बीकानेर कॉन्फिडेन्शियल रिकॉर्ड, फाइल ऑफ 1931, बस्ता नं. 3

14 शर्मा, बी. के., पीजेन्ट मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 99–100

15 पेमाराम, एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पंचशील प्रकाश 1986, पृ. 21

16 केला, भगवान दास, देशी राज्यों में 'जन जागृति' 1948, पृ. 25–80

17 पाक्षिक रिपोर्ट 31 दिसम्बर, 1921, फो. पो. (सीक्रेट) फाइल नं. 428–पी 1923 (ने.आ.ई), पेमाराम द्वारा उद्धृत, पृ. 27

18 कॉन्फीडेन्शल रिकार्ड फा.नं. 311 ए, 1921–22 बी नं. 4 राज. अ.वी.

19 सक्सेना, के.एस., पॉलिटिकल मूवमेन्ट्स एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, पृ. 188–89, चौधरी, आर.एन., वर्तमान राजस्थान, पृ. 130–32, बी.डी. कल्ला, देशी राज्य शासन, पृ. 322–23

20 जैन, एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 295–99, शर्मा, बी. के., पीजेन्ट मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 169–186

21 केला, भगवानदास, देशी राज्यों की जनजागृति, पृ. 55–65; चौधरी, रामकरण, बीसवीं सदी का राजस्थान, पृ. 59–60

22 पेमाराम, एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 297–98

23 नेशनल ऑरकाइव ऑ इण्डिया, फो. पो. 1922, नं. 17, पृ. 4–9

24 पेमाराम, उपर्युक्त, पृ. 152; राजस्थान स्टेट ऑरकाइव, बीकानेर, जयपुर रेकॉर्ड फाइल नं. ज–2, 7483, भाग 9, बस्ता नं. 99, पृ. 2–5

25 शर्मा, बी. के., पीजेन्ट मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 133–36

26 पेमाराम, एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 165

27 सक्सेना, के.एस., पॉलिटिकल मूवमेन्ट्स एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, पृ. 188–89, चौधरी, आर.एन., वर्तमान राजस्थान, पृ. 130–32, बी.डी. कल्ला, देशी राज्य शासन, पृ. 322–23

28 जैन, एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 295–99, शर्मा, बी. के., पीजेन्ट मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 169–186

29 जैन, पी.सी., ट्राइबल एग्रेरियन मूवमेन्ट, पृ. 40

30 मातृकुण्डिया–बनास नदी के तट पर तीर्थ स्थल जहाँ प्रतिवर्ष वैशाखी पूर्णिमा को मेवाड़ के ग्रामीणों का मेला लगता है।

31 पेमाराम, एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 304–06

पंचम अध्याय

गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम एवं महिलाओं की भूमिका

राजस्थान के सुदूर गाँवों से लेकर बड़े नगरों में चल रहे विभिन्न प्रकार के जन–आंदोलनों की पृष्ठभूमि में जिस राजनीति मूलक पत्रकारिता का प्रादुर्भाव हुआ उसने पूर्ण स्वराज्य मिलने तक क्रांति का बिगुल बजाये रखा। अपने निर्भीक, स्पष्ट और प्रखर संवादों, समाचारों, लेखों, साहित्यिक रचनाओं और संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से इन पत्रों ने स्थानीय शासकों को ही नहीं ब्रिटिश सरकार को भी विचलित कर दिया। इस अवधि के दौरान प्रारम्भ हुए समाचार पत्रों ने ही राजस्थान से बाहर ब्रिटिश शासित राज्यों में राज्य की जनता के अभाव–अभियोगों, उनकी कष्ट कथाओं और पीड़ा के स्वरों को पहुँचाने में मदद की तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार की।

रचनात्मक कार्यक्रम का तात्पर्य ऐसे कार्यो से है जिनसे कुछ निर्माण हो, किसी चीज की रचना हो या व्यक्ति तथा समाज में किसी गुण का विकास हो। इस अर्थ से गाँधीजी ने जो भी कार्य किया वह नयी समाज रचना का अंग था और उसको प्रभावी बनाने के महिलाओं ने पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपना सहयोग दिया। अहिंसक समाज–रचना के प्रयास में जिन–जिन कार्यक्रमों की आवश्यकता हुई, गाँधी जी ने उन्हें हाथ में लिया और उन्हें पूरा करने का प्रयास किया। रचनात्मक कार्यक्रम की जब बात आती है तब 18 कार्यक्रमों का उल्लेख किया जाता है। लेकिन जैसा कि गाँधीजी ने स्वयं कहा था यह कोई निश्चित संख्या नहीं है। यदि अहिंसक समाज–रचना के लिए अन्य कार्यक्रमों की जरूरत है तो वे जोड़े जा सकते है। बाद में ऐसा हुआ भी।[1] वास्तव में गाँधीजी केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं चाहते थे वह भारत का सामाजिक पुर्नोद्धार भी चाहते थे जो कि बिना सामाजिक आर्थिक

बदलाव के संभव नही था और इस बदलाव हेतु सत्याग्रहियों की जरूरत थी और सत्याग्रह का सर्वश्रेष्ठ प्रचार था रचनात्मक कार्यक्रम।[2]

गाँधीजी ने कार्य का कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया। वास्तव में तो ये रचनात्मक कार्य उनके जीवन के प्रयोगों में से स्वतः विकसित हुए। उन्होंनें जो भी कार्यक्रम हाथ मे लिये ऊपर से जो समस्याएँ सामने आयी तथा जिस प्रकार के कार्यक्रम हाथ में लेने की जरूरत उनको लगी उसे कार्यक्रम के रूप में उन्होंनें प्रस्तुत किया। जैसे, कौमी एकता की समस्या सबसे अधिक प्रखर थी। प्रारंभ से ही गाँधी जी ने कौमी एकता की बात कही और यह उनके कार्यक्रम का मुख्य अंग था। परन्तु इस काम के लिए उन्होंनें कोई संस्था नहीं बनायी। स्त्रियों के कल्याण की बात भी काफी पहले ही उनके कार्यक्रम का अंग थी। परन्तु संबंधित संस्था बाद में बनी। इस प्रकार हमें यह कहना चाहिए कि गाँधी जी ने सार्थक रचनात्मक कार्यक्रम किये, कभी भी एक जगह बैठकर योजना नहीं बनायी। यह तो सहज में ही कार्यक्रम के साथ साथ सामने आयी।[3]

गाँधी जी ने रचनात्मक कार्यक्रमों को ही स्वराज्य माना था और पूर्ण स्वराज्य के लिए कई शब्दों का उपयोग किया था। पूर्ण–स्वराज्य, रामराज और ग्रामस्वराज्य इन शब्दों के पीछे अहिंसक समाज रचना की कल्पना छिपी है। बाद में विनोबा जी नें इसे अधिक व्यापकता प्रदान करते हुए कहा– यदि थोड़े में कहना चाहें तो **रचनात्मक कार्यक्रम प्रेम उत्पन करने का, प्रेम के प्रकाशन का, और प्रेम के विकास का और प्रेमोपलब्धि का कार्यक्रम है।** प्रेम की प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न, जो रचना करने की जरुरत है, उसका नाम है रचनात्मक कार्यक्रम। इन कार्यक्रमों को इसी दृष्टि से देखना चाहिए और जितना भी अधिक इस पर अमल कर सकें, करने का प्रयत्न करना चाहिए।[4]

रचनात्मक कार्यक्रम का प्रारम्भ जिस सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थिति में हुआ वह आज से सर्वथा भिन्न थी। उस समय हमारा देश अंग्रेजी

शासन के अधीन था। अतः राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना उस समय के कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य था, यद्यपि गाँधी जी ने कभी राजनीतिक स्वतंत्रता को एकमात्र लक्ष्य नहीं माना था। इसका कारण यह था कि पूर्ण स्वराज्य की कल्पना में राजनीतिक स्वराज्य एक महत्वपूर्ण कड़ी है और बिना इसके प्राप्त किये पूर्ण स्वराज्य की ओर कदम बढ़ाना संभव नहीं था। गाँधी जी का मानना था कि यदि रचनात्मक कार्यक्रम को अपनाया गया तो पूर्ण स्वराज्य, जिसमें राजनीतिक स्वराज्य भी शामिल है, स्वतः आ जायेगा। राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के सन्दर्भ में उनके रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति की दृष्टि से दो भूमिका थीं– 1. राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति की दृष्टि से स्वतन्त्रता संग्राम के कार्यक्रमों में मदद करना और 2. अहिंसक समाज की रचना करना।

इसे पूर्ण स्वराज्य की प्रक्रिया कहना चाहिए। धीरे–धीरे इस कार्यक्रम की आवश्यकता और प्रभावोत्पादकता में उनकी श्रद्धा बढ़ती गयी और इस बात पर पर वे अधिकाधिक जोर देने लगे कि संग्राम के पहले नैतिक शक्ति को विकसित करने के लिए और अनुशासन को दृढ़ करने के लिए तथा संग्राम के बाद सुसंगठित होने के लिए जीत के नशे या हार की उदासी से बचने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम सत्याग्रही के लिए आवश्यक है।[5] इसकी उपयोगिता निःसंदेह थी तभी तो ग्रेसने ने कहा कि ''रचनात्कम कार्यक्रम किसी विशेष अन्याय निवारण के लिए की गयी स्थानीय सविनय अवज्ञा के लिए भले ही बहुत आवश्यक न हो परन्तु अखिल भारतीय हित के कार्य करने का पहले से प्रशिक्षण मिलना आवश्यक है।[6]

''बारदोली के मामले में भी गाँधी जी ने सफलता का बहुत बड़ा कारण यह बताया था कि बारदोली सत्याग्रह के छह–सात साल पहले से वहॉ सामाजिक और आर्थिक सुधार का रचनात्मक कार्यक्रम चलता रहा था।''[7] सन् 1920 में गाँधी जी ने कॉंग्रेस द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम भारतवर्ष के सामने रखा था। गाँधी जी के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम अहिसंक राज्य की व्यवस्था के

विकास का ढॉचा है। भारत वर्ष का रचनात्मक कार्यक्रम आवश्यक रूप से ग्रामकार्य है। गाँधी ने इस कार्यक्रम में कई बातों को शामिल किया और ये ऐसी बातें हैं जो अहिंसा द्वारा राष्ट्र की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए अनिवार्य है।

राजस्थान में रचनात्मक कार्यों की दृष्टि से राजस्थान सेवक संघ, गोविन्द गढ़, चरखा संघ, रींगस खादी एवं मेवाड़ सेवा संघ, अग्रवाल मित्र मण्डल, तालिम संघ, ग्रामोद्योग संघ, आदिवासी सेवा समिति, वैदिक शिक्षा समिति, राजस्थान हरिजन सेवक संघ, आर्य महिला मण्डल एवं विविध रचनात्मक सम्मेलन आदि का अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा। संगठनों का महत्वपूर्ण कार्य कार्यकर्त्ताओं को संगठित करना था। जिसमें महिलाओं ने सुधार की दृष्टि से अत्यधिक संख्या में भाग लिया। इन महिलाओं में श्रीमती सुशीला देवी, भगवती देवी, कमला जैन, कुमारी रजिया जी तहसीन, श्रीमती सुकीर्ति देवी, श्रीमती दुर्गा देवी अत्यन्त महत्वपूर्ण रही।

शिक्षा के प्रसार के कार्यों में रतन देवी शास्त्री, जानकी देवी बजाज, गीता बजाज ने महत्ती भूमिका निभाई। खादी प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से जानकी देवी बजाज, सुशीला देवी, भगवती देवी विश्नोई, श्रीमती कोकिला देवी, गुलाब देवी भण्डारी और श्रीमती शान्ति देवी ने महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रत्येक गांव–गांव एवं घर–घर में चरखा उपलब्ध करवाने के लिए राजस्थान चरखा संघ के निर्देशन में श्रीमती जानकी देवी बजाज, श्रीमती भागीरथी देवी तथा विमला देवी चौधरी ने चरखें उपलब्ध करवायें एवं बहनों को सूत कातने के लिए प्रेरित किया। जिन बहनों को सूत कातना नहीं आता था उन्हे सूत कातना सिखाया गया। इन महिलाओं ने रचनात्मक कार्यक्रम के सभी पक्षों पर व्यापक कार्य किया। महिलाओं ने न केवल खादी एवं चरखा का प्रचार–प्रसार किया, अपितु शैक्षणिक वातावरण तैयार करने में इसके विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आजादी के पूर्व में राजस्थान की अनेक रियासतों में रचनात्मक कार्यक्रम चलाये गये थे। मेवाड़ के बिजोलिया क्षेत्र में देश के एक तरह प्रथम किसान आंदोलन के साथ खादी ग्रामोद्योग की स्थापना की शुरूआत हुई। हरिजन सेवा, आदिवासी सेवा, शैक्षणिक एवं अन्य रचनात्मक कार्यक्रम रियासतों मे ंचलने लगे। गांधी जी का खादी से तात्पर्य स्वदेशी से था। स्वदेशी को बढ़ावा देना जो उनके आन्दोलन का मूलमंत्र था।

राजस्थान में रचनात्मक कार्यक्रम बहुत पहले शुरू हो गये थे। इनमें से प्रमुखतः खादी और आदिवासी सेवा के द्वारा रियासतों में जन जागरण किया गया। राजस्थान प्रारम्भिक क्षेत्रों में से था जहाँ गांधी जी के विचारों से प्रेरित एवं प्रेरणात्मक रचनात्मक कार्यक्रम प्रारम्भ हुए। राजस्थान उस समय छोटी बड़ी 21 रियासतों में विभाजित था। भारत का जो हिस्सा सीधा अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत था वहां आन्दोलन चलता था लेकिन देशी रियासतों में जहां दोहरी गुलामी थी लेकिन अंग्रेजी शासन नहीं था वहां कांग्रेस द्वारा संचालित राजनीतिक संघर्ष नहीं था। राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति यहां रचनात्मक कार्यक्रमों के रूप में हुई। राजस्थान में प्रान्तीय एवं स्थानीय स्तर पर अनेक ऐसे नेता थे जिन्होंने रचनात्मक कार्यक्रमों में रूचि दिखाई। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण नाम श्री हीरालाल शास्त्री, रत्नशास्त्री, गीता बजाज, जानकी देवी बजाज, श्री रोशन लाल चतुर, श्रीमती लाल नागोरी, श्रीमती सुशीला देवी, विमला देवी चौधरी, भगवती देवी विश्नोई, श्रीमती कोकिला देवी, श्रीमती कमला देवी, श्रीमती भागीरथ देवी, श्रीमती सीता देवी, श्रीमती कमला जैन, कुमारी रजिया तहसीन, श्रीमती शान्ति देवी, श्रीमती रागी देवी, तारा बहन, श्रीमती रानी देवी, गुलाब देवी भण्डारी, सुकीर्ति देवी, श्रीमती दुर्गा देवी, श्रीमती सुमित्रा सिंह, कुमारी नगेन्द्र एवं श्रीमती मणी बेन आदि प्रमुख थी। इन महिलाओं की भागीदारी चरखा संघ, हरिजन सेवक संघ, रींगस खादी संघ एवं गोविन्दगढ़

ग्रामोद्योग संघ, तालिम संघ, आदिवासी सेवक संघ, आर्य महिला मण्डल, वैदिक शिक्षा समिति आदि में महत्वपूर्ण रही।

स्त्री शिक्षा

गांधीजी का स्त्री शिक्षा के बारे में उनका स्पष्ट कहना था कि जब तक भारत में स्त्रियों को आवश्यक शिक्षा नही मिलती तब तक भारत में सुधार संभव नहीं है।[61] स्त्री शिक्षा में भारत बहुत पिछड़ा हुआ है, यह हमें स्वीकार करना पड़ता है। इस स्वीकृति में हमारा हेतु यह कहने का नहीं हैं कि भारतीय स्त्रियाँ अपना कर्तव्य नहीं करती। हमारी तो यह मान्यता है कि सम्पूर्ण बातों का विचार करते हुए जैसे भारतीय पुरूष की तुलना में दुनिया के किसी भी वर्ग का पुरूष नहीं पहुँच पाता, उसी प्रकार हमारी यह भी मान्यता हैं कि भारतीय नारी के स्तर को पहुँच पाने वाली नारियां संसार की अन्य स्त्रियों में अभी पैदा ही नहीं हुई। परन्तु यह सब तत्कालीन निर्बल, अधम और कंगाल परिस्थितियों में ज्यादा समझ सके, ऐसा नहीं है। यह जमाना ऐसा है यदि कोई एक ही स्थिति में बना रहना चाहे तो नहीं रह सकता। जो आगे बढ़ना नहीं चाहते या नहीं बढ़ते, उन्हें पिछड़ना ही होगा। यदि यह विचार सत्य हैं तो हम देख सकेंगे कि भारतीय पुरूषों ने भारतीय स्त्रियों को बहुत पिछड़ा हुआ रखा है। यदि भारत में 50 प्रतिशत मानव प्राणी हमेशा अज्ञान की दशा में और खिलौने बनकर रहें तो उससे भारत की पूंजी में कितना घाटा होगा, यह सहज ही समझा जा सकता है।[8]

इसी संदर्भ में श्री युसुफ अली (आंग्ल भाषा के एक ग्रन्थकार) ने लिखा कि जब तक भारत में स्त्रियों को आवश्यक शिक्षा नहीं मिलती तब तक भारत की हालत सुधर नहीं सकती। स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी मानी जाती है। यदि हमारा आधा शरीर मुर्दा हो जाये तो हम मानते हैं कि हमें लकवा मार गया है, और हम बहुत से कार्यों के लिए अयोग्य हो जाते हैं। इसी प्रकार स्त्री का जो

उपयोग होना चाहिये यदि वह न हो तो, सारे भारत को लकवा मार गया है, यही मानना पड़ेगा।[9]

हम स्त्रियों और पुरूषों के अधिकार स्वीकार कर लेंगे, किन्तु चूंकि उनकी स्थिति और कर्तव्यों में भिन्नता है, इसलिए मेरी मान्यता है कि उनकी शिक्षा में भी भिन्नता होनी चाहिए। उन्नत देशों में स्त्रियों को बहुत ऊँची शिक्षा दी जाती है, परन्तु उन्हें पुरूषों के समान कर्तव्यों का पालन नहीं करना पड़ता, और हमारे यहाँ स्त्रियों को आजीविका उपार्जित करने के संबंध में पुरूषों के मुकाबले स्पर्धा नहीं करनी पड़ती। स्त्री शिक्षा और उसके स्वरूप के संदर्भ में गाँधी जी का विचार था कि – ''मैं समय – समय पर यह बताता रहा हूँ कि पुरूषों का स्त्रियों से उनके स्वाभाविक मानवीय अधिकार छीन लेने अथवा प्रदान न करने के कारण, स्त्रियों में विद्या का अभाव नहीं होना चाहिए, किंतु निश्चय ही इन स्वाभाविक अधिकारों को कायम रखने, उनमें वृद्धि करने और प्रसारित करने के लिए विद्या की आवश्यकता है। फिर विद्या के बिना तो लाखों लोगों को शुद्ध आत्मज्ञान भी प्राप्त नहीं हो सकता है। विद्या के बिना मनुष्य पशुवत् है, इस वचन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। बल्कि यह यथार्थ है। इसलिए पुरूषों की भांति स्त्रियों के लिए भी शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। स्त्री और पुरूष का दर्जा समान है, परन्तु उनकी स्थिति एक जैसी नहीं है। दोनों की जोड़ी अपूर्व है, दोनो एक दूसरे के पूरक है। और एक दूसरे के सहायक है। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। किन्तु यदि पुरूष अथवा स्त्री स्थान भ्रष्ट हो जाये तो दोनों ही नष्ट हो जायेंगे। इसलिए स्त्री शिक्षा की योजना तैयार करने वाले लोगों को यह बात सत्त स्मरण रखनी चाहिए।[10]

नारी जाति को दबाने के प्रश्न पर उनका कहना था कि– यह बात तो मेरी समझ में नहीं आती कि अपने जन्मसिद्ध अधिकार वापस पाने के लिए नारियों को याचना या संघर्ष क्यों करना पड़े? नारी से जन्म लेने वाले पुरूष

का दर्प से अपनी जननी को अबला कहना और स्त्रियों के छीने हुए अधिकार बड़ी ही उदारता से वापस देने का वायदा करना कितना दुखद और हास्यजनक है। 'देने' के इस बेहुदा बात का क्या अर्थ है? जिन अधिकारों को पुरूष अन्यायपूर्वक केवल और पशुबल द्वारा स्त्रियों से छीना है, उन्हें वापस दिलाने में कौन सी उदारता और बहादुरी है। स्त्री का महत्व पुरूष से किस मामले में घटकर है कि जिसके कारण विरासत में उसका हिस्सा पुरूष से कम होना चाहिए।

पुरूष नारी जाति पर जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें देखकर व्यग्र होने के लिए मेरा लड़की होना आवश्यक नहीं है। मैं लड़के और लड़की के प्रति हर तरह से भेदभाव रहित समान व्यवहार करना चाहूँगा। जैसे – जैसे स्त्री जाति को शिक्षा द्वारा अपनी शक्ति का मान होता जाएगा, जैसा कि होना भी चाहिए, वैसे – वैसे उसके साथ जो असमान व्यवहार आज किया जाता है, उसका स्वभावतः अधिकाधिक उग्र विरोध करेगी। लेकिन वैधानिक विषमताओं को दूर करना मात्र बाहरी उपचार जैसा होगा। जैसा अधिकतर लोग समझते हैं, इस व्याधि की जड़ उससे कहीं ज्यादा गहरी है। पुरूष की सत्ता और कीर्ति के प्रति लोलुपता ही इसका मूल कारण है, मैं चाहूंगा कि भारत की पढ़ी – लिखी बहने इस व्याधि को खत्म करने का प्रयत्न करें। स्त्रियों की दुरावस्था को लाईलाज के कारण परदा डालना मुख्य कारण है। लेकिन मेरी दृष्टि में यह अनावश्यक एवं अनुचित है। बहुतेरे अन्याय और दुराचार ऐसे है जो प्रकाश में आते ही समाप्त हो जाते हैं।[11]

गाँधी जी ने इस काम के बारे में लिखा है ''स्त्री जाति की सेवा के काम को मैंने रचनात्मक कार्यक्रम में जगह दी है, क्योंकि स्त्रियों को पुरूषों के साथ बराबरी के दरजे से और अधिकार से अहिंसा की नींव पर रचे गये जीवन की योजना में जितना और जैसा अधिकार पुरूष को अपने भविष्य की रचना का है, उतना ही और वैसा ही अधिकार स्त्री को भी अपना भविष्य तय करने का है।

लेकिन अहिंसक समाज की व्यवस्था में जो अधिकार मिलते है, वे किसी न किसी कर्तव्य या धर्म के पालने से प्राप्त होते हैं। इसलिए यह भी मानना चाहिए कि सामाजिक आचार व्यवहार के नियम स्त्री और पुरूष दोनो आपस में मिलकर और राजी खुशी से तय करें। स्त्री को अपना साथी मित्र मानने के बदले पुरूष ने अपने को उसका स्वामी माना है। पुराने जमाने का गुलाम नहीं जानता था उसे आजाद होना है, या कि वह आजाद हो सकता है। औरतों की हालत आज भी कुछ ऐसी ही है। जब उस गुलाम को आजादी मिली तो कुछ समय तक उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो उसका सहारा ही जाता रहा। इसलिए हमारा यह फर्ज है कि स्त्रियों को उनकी मौलिक स्थिति का पूरा बोध करायें और उन्हें इस तरह की तालीम दें जिससे वे जीवन में पुरूषों के साथ बराबरी दर्जे से हाथ बँटाने लायक बने। एक बार मन का निश्चय हो जाने के बाद इस क्रांति का काम आसान हो जायेगा।[12]

मैं स्त्रियों की समुचित शिक्षा का हिमायती हूँ लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि स्त्री दुनिया की प्रगति में अपना योग पुरूष की नकल करके या उसकी प्रतिस्पर्धा करके नहीं दे सकती। वह चाहे तो प्रतिस्पर्धा कर सकती है, लेकिन पुरूष की नकल करके वह उस ऊँचाई तक नहीं उठ सकती, जिस ऊँचाई तक उठना उसके लिए संभव है। उसे पुरूष की पूरक बनना चाहिए। स्त्री और पुरूष समान दरजे के हैं परन्तु एक नहीं, उनकी अनोखी जोड़ी है। वे एक दूसरे का सहारा है। यहाँ तक कि एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता। दोनों में काम या सामंजस्यपूर्ण बॅटवारा जीवन को पूर्णता देगा।[13]

कानून की रचना ज्यादातर पुरूषों द्वारा हुई है। और इस काम को करने में, जिसे करने का जिम्मा मनुष्य ने खुद अपने ऊपर उठा लिया है, उसने हमेशा न्याय और विवेक का काम नहीं किया है। स्त्रियों में नये जीवन का संचार करने के हमारे प्रयत्न का अधिकांश भाग उन दोषों को दूर करने में खर्च होना चाहिए जिनका हमारे शास्त्रों ने स्त्रियों के जन्मजात और अनिवार्य

लक्षण कहकर वर्णन किया है। इस काम को कौन करेगा और कैसे करेगा? मेरी नम्र राय में इस प्रयत्न की सिद्धि के लिए हमें, सीता दमयन्ती और द्रौपदी जैसी पवित्र और दृढ़ता तथा संयम आदि गुणों से प्राप्त स्त्रियां प्रकट करनी होगी।[14] हम स्त्रियों और पुरूषों के समान अधिकार स्वीकार कर लेगें, किंतु चूँकि उनकी स्थिति और उनके कर्तव्यों में भिन्नता है इसलिए मेरी मान्यता है कि उनकी शिक्षा में भी भिन्नता होनी चाहिए।[15]

बुनियादी शिक्षा

गाँधीजी का मत था कि अंग्रेजी शिक्षा को स्वीकार कर हमने राष्ट्र को गुलाम बना लिया है। एक गरीब देश में कोटि–कोटि निरक्षर जनता को साक्षर बनाने तथा उसमें प्राचीन संसकृतिकी नींव पर नवीन जीवनोन्मेष लाने वाली शिक्षा योजना किस प्रकार बनाई जा सकती है, यह सवाल गाँधी जी के सामने था। बहुत विचार और मनन के बाद उन्होंनें 1936 में शिक्षण की एक ऐसी तस्वीर देश के सामने रखी कि शिक्षा जगत से सम्बद्व लोग भी स्तब्ध रह गये। यह एक क्रांतिकारी विचार था जिसे उन्होंनें स्वयं ही सबसे अधिक क्रांतिकारी कदम बताया और कहा–

मैंने अब तक जिन विचारों की भेंट जगत के चरणों पर चढाई है उनमें यह विचार (नई तालीम– सम्बन्धी) मुझे सबसे अधिक क्रांतिकारी और इसलिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण लगता है। क्योंकि इससे अधिक महत्वपूर्ण और अधिक मूल्यवान भेंट मैं संसार के सामने रख सकूंगा, मुझे नहीं लगता। इसमें मेरे सारे रचनात्मक कार्यक्रम को व्यवहारिक रुप देने की कुंजी समाई हुई है। जिस नई दुनिया के लिए मैं छटपटा रहा हूँ वह इसमें से उत्पन्न की जा सकती है। यह मेरी अन्तिम वसीयत है।[16]

इस प्रकार शिक्षा की यह नई दृष्टि देकर गाँधी जी ने एक नूतन मानव के निर्माण की ओर अत्यंत क्रांतिकारी कदम उठाया। उनकी यह आशा ठीक

ही थी कि जिस नई दुनिया के लिए मैं छटपटा रहा हूॅ वह इसमें से उत्पन्न की जा सकती है। इस लिए उन्होने कहा था कि यह उनका सबसे बडा क्रांतिकारी कदम है।[17] नई तालिम का व्यवहारिक रुप में 12 वर्ष के बच्चे भर्ती किये जा सकते है जहॉ उनको बहुमुखी शिक्षा दी जाए। उन्हें औद्योगिक शिक्षा अवश्य देना चाहिए। वयस्कों को स्वास्थ्य, रक्षा, सहकारिता, सामुदायिक कल्याण जैसे गाँव की मरम्मत करना, कुऍं खोदना आदि के बारे में शिक्षा देनी चाहिए।[18]

वाई एम सी ए, मद्रास में भाषण देते हुए उन्होंनें कहा– क्र्लक बनाना शिक्षा का लक्ष्य नहीं होना चाहिए। जबकि वर्तमान शिक्षा पद्वति (अंग्रेजी शिक्षा पद्वति) का उद्देश्य यही है।[19] 1944 सन् में गाँधीजी ने सुझाव दिया था कि बुनियादी शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत कर दिया जाय और यह सही अर्थों में जीवन की शिक्षा बने। इस प्रकार उसमे पूर्व बेसिक, उत्तर बेसिक और प्रौढ़ शिक्षा शामिल होनी चाहिए। संक्षेप में, बुनियादी शिक्षा द्वारा सामाजिक संवंधो में क्रांतिकारी परीवर्तन होगें। यह योजना शोषण और सामाजिक वर्ग संवंधी द्वेषो से मुक्त स्वावलम्बी, अहिंसक, जनतंत्र वादी सामाज व्यवस्था की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।[20]

बुनियादी शिक्षा

गाँधी जी ने कहा कि जन साधारण में फैली हुई व्यापक निरक्षरता भारत का कलंक है। वह मिटना ही चाहिए। बेशक, साक्षरता की महिमा का आरम्भ और अन्त वर्णमाला के ज्ञान के साथ ही नहीं हो जाना चाहिए। लिखने–पढ़ने और अंकगणित का सुक्ष्म ज्ञान देहातियों के जीवन का स्थाई अंग बनाना है और यह हो सकता है। उन्हें ऐसा ज्ञान होना चाहिए जिसका उन्हें रोज उपयोग करना पड़े। ग्रामवासियों को गाँव का भूगोल, गाँव का इतिहास और साहित्य का ज्ञान सिखाइये जिसे उन्हें रोज काम में लाना पड़े। जिन पुस्तकों से उन्हें दैनिक उपयोग की कोई सामग्री नहीं मिलती, वे उनके लिए किसी

काम की नहीं हैं।[21] शिक्षा का उद्देश्य बतलाते हुए महात्मा जी का कहना था कि '' कॉंग्रेस जनों ने इस विषय की घोर उपेक्षा की है। यदि प्रौढ़ शिक्षण मुझे सौंप दिया जाय तो मैं अपने प्रौढ़ विद्यार्थियों में सबसे पहले अपने देश की महत्ता और विशालता का भाव जागृत करुँगा। देहाती लोगों को विदेशी शासन और उसकी बुराइयों का सही ज्ञान नहीं है। विदेशियों के शासन को वे खत्म करना तो चाहते हैं लेकिन छुटकारा पाने का इलाज उन्हें नहीं सूझता ''।[22] इसलिए मेरा मानना है कि सबसे पहले प्रौढ़ों को मौखिक रूप से सभी राजनीतिक शिक्षा दी जाये। कार्यकर्ताओं के मार्गदर्शन की भी व्यवस्था होने चाहिए क्योंकि स्वराज के लिए प्रौढ़ शिक्षा भी अनिवार्य है।[23]

श्रीमती नारायणी देवी लड़कियों को शिक्षा की ओर अग्रसर करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रही। श्रीमती मणि बेन जिन्हें बांगड में ''बा'' के नाम से जाना जाता है, इन्होंने श्री भोगीलाल पंडयाजी के सहयोग से आदिवासी लड़कियों के लिए छात्रावास चलाया एवं वहां पढ़ने वाले विद्यार्थियों को मणि वैन अपने हाथ से खाना बनाकर खिलाती थी।

श्रीमती रतन शास्त्री ने 1930 में अपने पती श्री हीरालाल शास्त्री के साथ मिलकर ''जीवन कुटीर'' की स्थान की जिसमें रात्रिकालीन शालाओं का आयोजन किया जाता था। इनके द्वारा 6 अक्टूबर, 1935 को वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना की गई जो आज भारत के एक तरह का विश्वविद्यालय है।

अस्पृश्यता निवारण में गाँधीजी का योगदान

गाँधी जी ने अस्पृश्यता निवारण तथा हरिजनोत्थान को अपने कार्यक्रम का एक प्रमुख अंग बनाया और कहा कि ''जब तक हम अछूतों को गले नहीं लगायेगें, हम मनुष्य नहीं कहला सकते ''।[24] अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अविभाज्य अंग नहीं है, बल्कि एक ऐसा अभिशाप है जिसके साथ युद्ध करना प्रत्येक हिन्दू

का पवित्र कर्तव्य है। इसलिए ऐसे सब हिन्दुओं को, जो इसे पाप समझते हैं इसके लिए प्रायश्चित करना चाहिए। इसके लिए उन्हें अछूतों के साथ भाईचारा रखना चाहिए, प्रेम और सेवा की भावना से उनके साथ संबंध स्थपित करना चाहिए, ऐसे कार्यों से अपने को पवित्र हुआ मानना चाहिए, उनके कष्ट दूर करने चाहिए, उन्हें युगों की दासता से उत्पन्न हुई जर्जता और दूसरी बुराईयों पर विजय प्राप्त करने में धीरजपूर्वक मदद देनी चाहिए और दूसरे हिन्दुओं को वैसा ही करने की प्रेरणा देनी चाहिए।[25]

अब हिन्दू धर्म के इस कलंक और अभिशाप को मिटाने की आवश्यकता पर विवेचना करना और जरूरी है। कांग्रेस जनों ने इस मामलें में बेशक बहुत कुछ किया है। परन्तु मुझे यह कहते दुःख होता है कि बहुत से कांग्रेस जनों ने इसे केवल राजनीतिक आवश्यकता ही समझा है और जहाँ तक हिन्दुओं का संबंध है उन्होंनें इसे हिन्दू धर्म के अस्तित्व के लिए कोई अनिवार्य चीज नहीं माना। जहाँ तक हरिजनों का सवाल है, हर हिन्दू को उनके काम को अपना ही काम समझ लेना चाहिए और भंयकर बहिष्कार में उनके मित्र बन जाना चाहिए।[26] गाँधी जी ने अस्पृश्यता को कलंक मानते हुए कहा– ''आजकल हिन्दू धर्म में जो अस्पृश्यता देखने में आती है, वह उसका एक अमिट कलंक है। मैं यह मानने से इंकार करता हूँ कि वह हमारे समाज में स्मरणातीत काल से चली आयी है। मेरा ख्याल है कि अस्पृश्यता की यह घृणित भावना हम लोगों में तब आयी होगी, जब हम अपने पतन की चरम सीमा पर होंगे। और तब से यह बुराई हमारे साथ लग गयी और अब भी है। मैं मानता हूँ कि यह एक भंयकर अभिशाप है ''।[27]

पुनः फरवरी 1933 में हरिजन में लिखा –''हम आज जैसी अस्पृश्यता भारत में देख रहे हैं, वह एक भयंकर अभिशाप है और उसके हर एक प्रांत में यहाँ तक कि हर एक जिले में अलग – अलग कितने ही रूप हैं। उसने अस्पृश्यों एवं स्पृश्यों दोनों को नीचे गिराया है। उसने करोड़ो मनुष्यों का

विकास रोक रखा है, उन्हें जीवन की सामान्य सुविधाएं भी नहीं दी जाती। इसलिए इस बुराई को जितनी जल्दी निर्मूल कर दिया जाये, उतना ही हिन्दू धर्म भारत और शायद समग्र मानव जाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा ''।[28] यदि हम भारत की आबादी के पाँचवे हिस्से को स्थायी गुलामी की हालत में रखना चाहते हें और उन्हें जान बूझकर राष्ट्रीय संस्कृति के पुलों से वंचित रखना चाहते हैं तो स्वराज एवं स्वतंत्रता अर्थहीन शब्दमान होगा। आत्मशुद्धि के इस महान आन्दोलन (स्वतंत्रता – संग्राम) में हम भगवान् की मदद की आकांक्षा रखते है, लेकिन उसकी प्रजा में एक अंश को हम मानवता के अधिकारों से वंचित रखते हैं। यदि हम स्वंय मानवीय दया से शून्य है, तो उसके सिंहासन के निकट दूसरों की निष्ठुरता से मुक्ति पाने की याचना हम नहीं कर सकते।[29] और यदि यह कहा जाए कि आर्यों ने अपनी प्रगति यात्रा में किसी मंजिल पर किसी वर्ग विशेष को दंड के तौर पर समाज से बहिष्कृत कर दिया हो, परंतु वह दंड उस वर्ग की संतान को देने रहने का कोई कारण नहीं हो सकता।[30]

गाँधी जी ने अछूतों के उद्धार के लिए उन्हे **हरिजन** नाम दिया और '**हरिजन सेवा का कार्यक्रम**' बनाया था। एक का उद्धार दूसरा नहीं कर सकता, स्वयं खाये बिना पेट नहीं भरता, स्वंय मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता, यह गाँधी जी जानते थे। उनकी हरिजन सेवा का कार्यक्रम सवर्णों के उद्धार के लिए भी था। वे मानते थे कि पीढ़ियों से समाज के वर्ग को अस्पृश्य मानने वाले सवर्णों को प्रायश्चित के रूप में हरिजन सेवा करनी चाहिए। लोगों को सुख शांति प्राप्त हो और वे स्वच्छ, स्वस्थ जीवन जी सके, इसलिए अस्पृश्यता अपने हाथ और शरीर मलिन 'मैले' करते रहते है। अस्पृश्य यदि सफाई का काम नहीं करेंगें तो ब्राह्मण स्वच्छ, साफ सुथरा जीवन कैसे बिता सकेंगे? उच्च वर्ग के लोगों का स्वच्छ और पवित्र जीवन अस्पृश्यों की ही देन है। गाँधी जी मानते थे

कि जब सफाई कर्मचारियों के हाथ में भगवद्गीता और ब्राह्मणों के हाथ में झाड़ू आयेगा तब अस्पृश्यता गिरकर सामाजिक समता निर्माण होगी।

अस्पृश्यता समाप्त कर एकात्म और एकसमान समाज का निर्माण करना, गाँधी जी का ध्येय था। गाँधी जी अपने को भंगी, कातनेवाला, बुनकर और मजदूर कहते थे। अदालत में मुकदमें के समय उन्होंनें अपना व्यवसाय यही बताया था। वे स्वेच्छा से भंगी बने थे। अस्पृश्यता निवारण का प्रयत्न उनके जीवन का अभिन्न अंग था। इस काम के लिए प्राण अर्पण करने तक तैयार थे। वे पुनर्जन्म नहीं चाहते थे, पर होना हो तो अस्पृश्य का ही हो, यही उनकी इच्छा थी। सन् 1916 में अहमदाबाद की सभा में मस्तक आगे करके और गर्दन पर हाथ रखकर अत्यन्त गंभीरता के साथ उन्होंनें घोषणा की थी कि यह सिर अस्पृश्यता निवारण के लिए अर्पित है।[31]

झाड़ूँ गाँधी जी की दृष्टि में क्रांति का प्रतीक था। उनका मानना था कि समता और एकरूपता रहित समाज द्वारा क्रांति नहीं लायी जा सकती। ऐसा समाज किसी भी परतंत्रता या गुलामी से लड़ नहीं सकता। पुत्र के जीवन में माँ का जो स्थान हैं वही समाज के जीवन में सफाई करने वाले कामगार का है। वे कहते थे– ''मैं भंगी को अपनी बराबरी का मानता हूँ और सवेरे उसका स्मरण करता हूँ। अस्पृश्यता निवारण का अर्थ है अखिल विश्व पर प्रेम करना और उसकी सेवा करना। यह अहिंसा का ही एक अंग है। अस्पृश्यता समाप्त करने का मतलब है मानव समाज की भेदभाव की दीवारों को ढहा देना, इतना ही नहीं, जीवमात्र की उच्चता–निम्नता को समाप्त करना। अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का कलंक है। अस्पृश्यता मानना स्पृश्य लोगों का महापातक है। अस्पृश्यता के खिलाफ मेरी लड़ाई (संघर्ष) अखिल मानव जाति की अशुद्धि से लड़ाई है। कोई भंगी राष्ट्रसभा का कारोबार सम्भालेगा, ऐसा जिस दिन दिखाई देगा, तब मुझे सच्चा आनंद होगा ''।

अपने हरिजन आन्दोलन के दौरान गाँधी जी को पग –पग पर कट्टरपंथियों और प्रतिक्रियावादियों के विरोध का सामना करना पड़ा। गाँधी जी पर हिन्दूवाद पर हमला बोलने का आरोप लगाया गया। अपने हरिजनोत्थान आन्दोलन के दौरान गाँधी जी हमेशा कुछेक मूलभूत चीजों पर जोर देते रहे। इनमें पहला था हरिजनों पर अत्याचार के खिलाफ गाँधी जी की आवाज दिन–दिन प्रखर होती जा रही थी। वह कहते थे, ''हरिजनों की सामाजिक हैसियत कुष्ठ रोगियों जैसी है। आर्थिक दृष्टि से वे दरिद्र है। धार्मिक स्तर पर उनकी हालत यह है कि उनके अपने ही हिन्दुभाई उन्हें मन्दिरों में जिन्हें हम झूठ–मूठ में ईश्वर का घर मानते हैं, घुसने नहीं देते। सार्वजनिक स्कूलों, सड़को, अस्पतालों कुओं इत्यादि का भी वे इस्तेमाल नहीं कर सकते। नगरों और गांवो में इन्हें ऐसी जगह बसाया जाता है, जहाँ किसी भी तरह की कोई सुविधा नहीं है। दूसरा मुद्दा जिसपर वह बहुत जोर देते थे, वह था छुआछूत को जड़ से समाप्त करना इसके लिए सबसे पहले उन्होंनें मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश के अधिकार की मांग की। गाँधी जी का समूचा आंदोलन उनकी रणनीति, मानवता व मानवीय चेतना पर आधारित थी। लेकिन वह अपनी बात को वजन देने के लिए हिंदू शस्त्रों का भी उल्लेख करते हैं। उनका कहना था कि समाज में छुआछूत की कुरीति का जो स्वरूप है, उसका हिंदू शास्त्रों में नहीं कोई जिक्र है। हिंदू शास्त्र इसे मान्यता नहीं देते। उनका कहना था कि यदि किसी शास्त्र में इस कुरीति को मान्यता भी दी गई हो, तो भी हरिजनों को चिंता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सत्य किसी पुस्तक का बंधक नहीं है। यदि शास्त्र मानव गरिमा की अवहेलना करते हैं तो उन्हें नकार दिया जाना चाहिए।[32]

अछुतोद्धार कार्यक्रम को संगठनात्मक रुप देने के लिये उन्होंनें हरिजन सेवक संघ की स्थापना 30 सितंबर 1932 को की। यह हरिजन कहे जाने वालों को सभी अयोग्यताओं ओर कठिनाईयों से मुक्त करने का प्रयास करता

था। प्रारंभ से ही स्पष्ट हो गया था कि यह संगठन कांग्रेस का अंग नहीं होगा, वरन् उससे स्वतंत्र एक अराजनीतिक संगठन होगा और इसकी प्रवृत्तियाँ अस्पृश्यता निवारण और हरिजन कल्याण तक ही सीमित रहेगी। 30 सितम्बर 1932 को ही मुम्बई में एक सभा, जिसमें एक सर्वसम्मत तरीके से एक प्रस्ताव पास किया गया। उसमें कहा गया हिन्दुओं की एक सार्वजनिक सभा निश्चय करती है कि दिल्ली में प्रधान कार्यालय बनाकर एक अखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण संघ स्थापित किया जाये, जिसके शाखाएं विभिन्न प्रान्तों में अस्पृश्यता निवारण का प्रचार करने के लिए प्रयत्न करें और इसके कार्यक्रम तुरन्त हाथ में लिया जाए।

राजस्थान में भी अस्पृश्यता की समस्या अत्यधिक गहरी थी। राजस्थान हरिजन सेवक संघ के निर्देशन एवं नियंत्रण में अनेक हरिजनोद्धार समितियों का गठन किया गया। जिसमें महिलाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही। इन महिलाओं में श्रीमती जानकी देवी बजाज ने महत्वपूर्ण कार्य किया। इन्होंने बांगड़ क्षेत्र से अस्पृश्यता विरोधी अभियान शुरू किया। उन्हें यह प्रेरणा साबरमती के ''आनन्दमठ'' आश्रम से मिली थी जहां अछूत समझे जाने वाले लोग भी रहते थे। इसके लिए इन्होंने –

- सभी सार्वजनिक कुएँ, धर्मशालाएँ सड़के, पाठशालाएँ, शमशानघाट आदि दलित वर्गों के लिए खुले घोषित कर दिये जाए।
- सभी सार्वजनिक मन्दिर दलित वर्गों के लिए खोल दिए जायें, बशर्ते कि काम को लागू करने के दबाव डालकर नहीं बल्कि समझाने समझाने बुझाने के द्वारा लोगों को राजी किया जाए।
- संघ की उद्देश्य पूर्ति हेतु घनश्याम दास बिड़ला को अध्यक्ष तथा श्री अमृतलाल बिट्ठलदास ठक्कर को मंत्री नियुक्त करती है।[33]

हरिजन सेवक संघ के कार्यों को मोटे तौर पर दो भागों में बांटा जा सकता है।

- सवर्ण हिन्दुओं की भावना में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना जिससे वे स्वेच्छापूर्वक और स्वाभाविक रूप से हरिजनों को सभी नागरिक अधिकारों का उपयोग करने दें। और
- हरिजन ब्राह्ममण अर्थात् हरिजनों की शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना।

हरिजन सेवक संघ के कार्य के साथ महात्मा गाँधी का नाम स्वभावतः जुड़ जाता है। हरिजन कार्य के धन इकट्ठा करना तो उनकी प्रत्येक यात्रा का एक महत्वपूर्ण अंग था। जिस काम को 'हरिजन' कहे जाने वालों के लिए समाज ने छोड़ा था उस काम को गाँधी जी ने प्रतिष्ठा प्रदान की। अपने अंतिम वर्षों में तो गाँधी जी ने हरिजनों के बीच ही रहना पसंद किया।

अस्पृश्यता निवारण कार्य को गति प्रदान करने के लिए गाँधी जी ने 1933–34 में सारे भारत का भ्रमण किया। इस यात्रा का आयोजन श्री ठक्कर बापा ने किया था जिससे देशभर में हरिजन कार्य के लिए वातावरण बना था। उनके प्रयास से स्कूल में दाखिला मिलने लगा। सैकड़ो प्रारंभिक एवं रात्रि पाठशालाएं चलायी और छात्रावास खोलें। औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए कई स्थानों पर उद्योग शाला स्थापित की। योग्य एवं साधनहीन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां दी गई।[34] जब गाँधीजी अस्पृश्यता की निन्दा करते हैं तो उनके ध्यान में विशेष रुप से भारत में प्रचलित अस्पृश्यता होती है। गाँधी जी केवल मनुष्यों की समता में ही नहीं संसार के सभी प्रमुख धर्मों की समता में भी विश्वास करते हैं।[35]

खादी

राजस्थान के रचनात्मक कार्यक्रम का एक पक्ष खादी का प्रचार–प्रसार करना था। राजस्थान में वस्त्र स्वावलम्बन की दृष्टि से सबसे उल्लेखनीय कार्य राजस्थान में हुआ। इस कार्य में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन

महिलाओं में जानकी देवी बजाज, मणि बैन, सुशीला देवी, नारायणी देवी, प्रियवंदा देवी, कमला देवी, कोकिला देवी, रानी देवी, शान्ति देवी आदि महत्वपूर्ण थी।

गाँधी जी का राष्ट्रीय जीवन में आगमन ऐसे समय में हुआ जब भारत का प्रबुद्ध वर्ग साम्राज्यवादी शोषण के दुष्परिणामों से पूर्ण रुप से अवगत हो चुका था। ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों के प्रति देश में व्यापक असंतोष व्याप्त था। भारत ब्रिटिश नियंत्रित अर्थव्यवस्था से त्रस्त हो चुका था और वह एक ऐसे कार्यक्रम की खोज में था जो देश पर से साम्राज्यवादी आर्थिक बंधंनो को तोड सकता, यही कारण है कि गाँधीजी ने सर्वप्रथम विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर सर्वोपरि बल दिया। यहीं से गाँधीजी की अर्थ नीति का सुत्रपात होता है। चरखा को केन्द्रविन्दु बनाने के पीछे गाँधी जी का दावा था कि अन्न के उपरांत वस्त्र का ही महान महत्व है। यह स्वालंबन की प्रक्रिया प्रत्येक व्यक्ति के स्वालंबन, परिवार के स्वालंबन, गाँव के स्वावलम्बन, से चलकर राष्ट्रीय स्वावलंबन में बदलती है। प्रत्येक मनुष्य के लिए खादी को गाँधी जी ने प्रतिदिन का यज्ञ माना, शिक्षण का माध्यम माना, जीवन की सुरक्षा और श्रम की प्रतिष्ठा माना। चर्खा पेट भर अन्न, तन भर वस्त्र स्वाभिमानपूर्वक अपने घर में बैठकर अर्जित करने की शक्ति देता है।[36]

गाँधी जी की पैनी दृष्टि इसी चर्खे पर पड़ी और इसके धागे को उन्होंनें सोना चाँदी से भी श्रेष्ठ माना। सूत की करेंसी भी चलायी, उत्पादक श्रमिकों को प्रतिष्ठा प्रदान की। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति को जगाकर उन्होंनें विदेशी वस्त्र को बाजार से हटा दिया। उन्होंनें कहा कि भारतवर्ष के लिए चर्खा आवश्यक और व्यवहारिक है, इसे तुरन्त अपनाया जा सकता है, क्योंकि इसके लिए न तो अधिक पूंजी और न तो खर्चीले कच्चे माल की आवश्यकता है। भारतवर्ष के गरीब और अशिक्षित नागरिक के पास जितना कौशल और बुद्धि है उतनी ही इस चर्खा को चलाने में पर्याप्त है।[37]

खादी के उपयोग से जहाँ एक ओर स्वदेशी की भावना जाग्रत होती है वहीं दूसरी ओर उसमें लगे करोड़ो बेरोजगारों गरीबों को आय की प्राप्ति जैसा महत्वपूर्ण तथ्य निहित होता है। जो इस विचार से स्पष्ट हो जाता है कि ''खादी का यही संदेश है कि हमें इस बात का दृढ़ संकल्प करना चाहिए कि हम अपने जीवन की सभी जरूरतों को हिन्दुस्तान की बनी चीजों से और उनमें भी हमारे गाँव में रहने वाली आम जनता के मेहनत और अक्ल से बनी चीजों के जरिये पूरा करेंगें ''।[38] इस प्रकार कहा जा सकता है कि खादी को केवल एक वस्त्र के रूप में नहीं बल्कि एक विचार के रूप में अपनाने की आवश्यकता का सुझाव दिया गया है, जिससे जहाँ एक और स्वदेशी की भावना का विकास होता है, देश में उत्पादित कच्चे माल का सही अर्थों में उपयोग संभव होता है, देश के करोड़ो लोगों, को अपनी कुशलता एवं क्षमता के अनुसार रोजगार की प्राप्ति होती है वहीं दूसरी ओर वितरण की असमानता जैसी गंभीर समस्या का सफलतापूर्वक समाधान स्वतः ही होता है, क्योंकि यह विकेन्द्रित व्यवस्था पर आधारित होता है, जिसको इस प्रकार से स्पष्ट किया गया है ''खादी वृत्ति का अर्थ है, जीवन के लिए जरूरी चीजों की उत्पत्ति तथा उनके बंटवारे का विकेन्द्रीकरण। इसमें विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का स्वतः समावेश होता है जिसके परिणामस्वरूप साधनों का समुचित उपयोग रोजगार, समान वितरण एवं आत्मनिर्भरता जैसे कई महत्वपूर्ण उद्देश्यों को एक साथ प्राप्त किया जाना संभव होता है। गाँधी जी ने कहा – ''हिन्दुस्तान के सात लाख गाँवों को चूसकर और बर्बाद करके हिन्दुस्तान के तथा ग्रेट ब्रिटेन के जो दस पाँच शहर मालामाल हो रहे हैं। उनके बदले हमारे सात लाख गाँव पूर्णतया स्वावलंबी बनें।[39]

खादी एवं अखिल भारतीय चरखा संघ

गाँधीजी ने प्रारंभ से ही खादी को कांग्रेस के साथ जोडने की कोशिश की। शुरु में खादी का काम कांग्रेस स्वंय एक समिति के माध्यम से करती

थी। परन्तु बाद में यह महसूस किया गया कि खादी पूर्ण रूप से आर्थिक कार्यक्रम हैं और इसे व्यवसाय के तौर तरीके से चलाना ठीक होगा। अतः उसको एक उद्योग के रूप में विकसित करने की दृष्टि से कांग्रेस ने इस काम के लिए एक स्वायत्त संस्था के निर्माण की बात सोची। पटना में 1925 में चरखा संघ की स्थापना की गयी। इसकी स्थापना के मूल में ग्रामोद्योग का विकास ही था। चरखा संघ देशभर में खादी का काम, हाथ कताई तथा हाथकती हाथबुनी सामग्री पर जोर दिया। चरखा संघ के संगठन में प्रान्तीय खादी का काम चलाने के लिए शुरू से ही प्रत्येक प्रांत के लिए एक एक प्रतिनिधि नियुक्त किए गए।

चरखा संघ के कार्य को मोटे तौर पर तीन कालों में बांटा जा सकता है। गाँधी ने असहयोग आन्दोलन के बहिष्कार आन्दोलन में विदेशी वस्त्र का बहिष्कार मुख्य मुद्दा रखा। इस कार्यक्रम के तहत स्वंयसेवक घर – घर जाकर लोगों को चरखा देते थे। विदेशी कपड़ों को इकट्ठा करते थे और सम्पूर्ण समुदाय इकट्ठा उनकी होली जला देता था। 1921 के शुरूआती दौर में गाँधी जी ने देशव्यापी दौरा किया। गाँधी जी जिस भी स्टेशन पर पहुँचते लोगों की भीड़ लग जाती थी। और वे उनसे उनका तुरन्त कम से कम अपना शिरोवस्त्र हटाने को मना लिया करते थे। शीघ्र ही टोपियों, दुपट्टों और पगड़ियो का ढेर लग जाता था। जैसे ही आग लगती थी, वैसे ही आग की लपटें ऊपर उठती, हुई दिखाई देती थी। विदेशी वस्त्र बेचने वाली दुकानों के सामने धरना देना बहिष्कार के प्रमुख रूपों में से एक था। 1920–1921 में विदेशी वस्त्रों का आयात मूल्य 102 करोड़ रू0 था। लेकिन 1921–1922 में यह घटकर 57 करोड़ रू0 रह गया। अपने अगले आन्दोलन सविनय अवज्ञा में भी गाँधी जी ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार को मुख्य मुद्दा बनाया और इस दौरान विदेशी वस्त्र के बहिष्कार को महान सफलता मिली। इसी संदर्भ में एच0एन0 ब्रेल्सफोर्ड ने कहा 1930 की शरद तक कपास के कपड़ो का आयात

पूर्व वर्ष के इन्हीं महीनों के आयात की तुलना में तिहाई या चौथाई के बीच रह गया था। बंबई में अंग्रेजी व्यवसायियों की सोलह मिलें बंद हो गयी थी और 32 हजार मजदूर बेकार थे। इसके विपरीत भारतीय व्यवसायियों की मिलें दुगुनी गति से कार्य कर रही थी।[40] गाँधीजी के अनुसार चरखा पूर्ण जीवन का तत्व दर्शन और अहिंसा का जीवित प्रतीक भी है।[41]

गाँधी जी ने सभी धर्मों के प्रति आदर एवं सद्भावना पर बल देते हुए बताया कि – ''अपने धर्म से भिन्न धर्म का पालन करने वाले लोगों के साथ निजी दोस्ती कायम करें और अपने धर्म के लिए उनके मन में जैसा प्रेम हो ठीक वैसा ही प्रेम वह दूसरे धर्म से भी करे।[42] रॉलेक्ट एक्ट के विरोध में जो आन्दोलन चला उस दौरान हिन्दू मुस्लिम एकता का अभूतपूर्व प्रदर्शन हुआ, जिससे भारतीय राष्ट्रवाद को काफी बल मिला, आगे असहयोग आंदोलन में भी आन्दोलन की मुख्य विशेषता हिन्दू – मुस्लिम एकता थी। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है – ''सर्वत्र हिन्दु–मुस्लिम जय का बोलबाला था।[43]

महात्मा गाँधी ने अपने भाषण में अहिंसात्मक असहयोग तथा हिन्दू मुसलमानों की एकता पर अधिक जोर दिया। उन्होंनें कहा कि ''मैं आप लोगों से इतना ही कहता हूँ किसी प्रकार का असंतोष तथा उदंडता हम लोगों के मन्तव्य में बाधक होगी। आप लोग संयुक्त प्रांत के सरकार की ज्यादतियों को देखिए। यह सूबा इस दमन नीति में अन्य सूबों से बढ़ा चढ़ा है। किन्तु मैं फिर भी आप लोगों से शांतिपूर्ण रहने को कहूँगा। यदि आप लोग पचास हजार ऐसे काम करने वालों की एक फौज तैयार कर लें जो स्वतंत्रता की रक्षा का फाटक बनने को तैयार रहें तो मैं आशा करता हूँ कि कोई फौज इसे न हरा सकेगी और तीन महीने के अंत में या तो यह सरकार को सुधार देगी या समाप्त कर देगी। मेरा फिर से यही कहना है कि हिन्दू–मुसलमानों की एकता पर बड़ा ध्यान रखना चाहिए। दोनों से मेरा यही कहना है कि एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रखें। हिन्दुओं से मेरा यह कहना है कि यदि वे गाँवों को बचाना

चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि बिना किसी विचार या लालच के खिलाफत के मामले में मुसलमानों की मदद करें'' ।[44]

मद्य–निषेद्य

एक सच्चे सत्याग्रही के लिए मानसिक स्तर पर सबल होना बहुत जरुरी है और मद्य पान उस सबलता के रास्ते में रुकावट था। इसका प्रबल विरोध करते हुए गाँधीजी ने कहा – '' यदि मुझे एक घंटे के लिए भारत का डिक्टेटर बना दिया जाए तो मेरा पहला काम यह होगा कि शराब की दुकानों को बिना मुआवजा दिये हुए बंद करवा दिया जाए और कारखानों के मालिको को अपने मजदूरों के लिए मनुष्योचित परिस्थितियॉ निर्माण करने तथा उनके हित में ऐसे मनोरंजन गृह खोलने के लिए मजबूर किया जाय, जहॉ मजदूरों को ताजगी देने वाले निर्दोष पेय और उतने ही निर्दोष मनोरंजन प्राप्त हो सके '' ।[45]

गाँधी जी का विचार था कि यह बुराई स्वंय की दृढ़ता से हटेगी न कि सरकारी प्रयास से। हाँ सरकार इसके प्रसार में केवल गतिरोध उत्पन्न कर सकती हैं, जैसा कि उन्होंनें कहा – ''मद्य निषेध का काम मुख्यतः हमें ही करना होगा। सरकार इस मामले में अधिक से अधिक यह कर सकती हैं कि ताड़ी के परवाने देना बंद कर दें, परन्तु वह शराबी से उसका दुर्व्यसन शायद ही छुड़वा सकती है'' ।[46] आगे उन्होंनें कहा '' अगर हमें अहिंसक प्रयास से आगे अपने लक्ष्य तक पहुँचना हैं, तो जो लाखों स्त्री पुरूष नशीली चीजों के अभिशाप के शिकार बने हुए हैं, उनके भाग्य को हम भावी सरकार के भरोसे नहीं छोड़ सकते '' ।

इस बुराई को मिटाने में डॉक्टर लोग बहुत कारगर हाथ बटा सकते हैं। उन्हें मदिरा और अफीम के व्यसनियों को इस अभिशाप से मुक्त करने के तरीके ढूंढ निकालने होंगे। इस सुधार को आगे बढ़ाने के काम में स्त्रियों और विद्यार्थियों के लिए विशेष अवसर हैं। प्रेमपूर्ण सेवा के अनेक कार्यों से वे व्यसनियों पर ऐसा काबू पा सकते हैं। जिससे इस बुरी आदतें को छोड़ देने

की उनकी पुकार सुनने को वे मजबूर हो जायें। कांग्रेस कमेटियां विश्राम घर खोल सकती हैं, जहाँ थके हुए मजदूर आराम कर सकते हैं, उन्हें स्वास्थ्यप्रद और सस्ता जलपान तथा उपयुक्त खेल खेलने को मिल सकते हैं। ये सब काम मनोहर और ऊँचा उठाने वाले स्वराज्य का अहिंसक तरीका नया ही तरीका है। इसमें पुराने मूल्यों का स्थान नये मूल्य ले लेते हैं। हिंसक मार्ग में ऐसे सुधारों के लिए स्थान नहीं हो सकता। रचनात्मक कार्यकर्ता कानून द्वारा मदिरा निषेध का मार्ग तैयार नहीं करते थे, वे उसे आसान और सफल जरूर बनाते हैं। शराब और नशीले द्रव्य ये शैतान के दो हाथ है, जिनके प्रहारों से वह अपने असहाय गुलामों को बेजान और विमुढ़ बना डालता है।[47]

पुनः इस संदर्भ में गाँधी जी ने कहा– '' शराब बंदी के सवाल को हाथ में लिये आज मुझे ज्यादा नही।तो 30 वर्ष जरूर हो ही गए है। मुझे मद्य के प्रति घोर अरूचि अपनी माँ से मिली थी जब उन्होंनें मुझे यह प्रतिज्ञा करा कर कि मैं मद्यपान नहीं करूँगा, विदेश भेजा था। विदेश से ही मेरी प्रबल इच्छा रही कि मद्य निषेध का काम किया जाए और भारतीयों को इस अभिशाप से बचाया जाए ''। आज मैं निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जन साधारण में केवल प्रचार करने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि वे जानते ही नहीं हैं कि वे क्या कर रहे हैं। जब तक दवा को छोड़कर बाकी कामों के लिए शराब पर पूरा प्रतिबंध लगाया जाए। तब तक मैं उनको इस तरह लत से कैसे बचा सकता हूँ ?

शराब आदमी के नैतिक आधार को खोखला कर देती है कि पीनेवाला विवश हो जाता है। शराब हमें मूढ़ और जड़ बनाती है। शराब हमें उत्तेजित करती है, इस हद तक कि हम भगवान की गोद से गिरकर शैतान की गोद में आ जाते हैं। इसलिए मुझे लगता है कि अगर विधायकों को अफीम और शराब प्राप्त होने वाले राजस्व को छोड़ने के लिए राजी किया जा सकते तो मैं आज ही वैसा करूँ। अगर इस राजस्व के बिना हम अपने बच्चों को शिक्षा भी न दे

सके तो मैं देश के सभी बच्चों की शिक्षा का बलिदान करने को तैयार हूँ। अगर आप शराब जनित सारी समस्या पर विचार करेंगे तो चकरा जाएंगे। यह किसी एक आदमी के बूते का काम नहीं है। लेकिन इसे समुद्र की एक तुच्छ बूंद समझे और सच्चाई से काम करें, तो मुझे कोई संदेह नहीं कि भारत में वह दिन अवश्य आएगा जब मद्यपान का अभिशाप मिट जाएगा।[48] मद्यपान अभिशाप हैं और जनता को इसकी जानकारी होनी चाहिए कि शराब उन्हें हर स्तर पर खोखला कर रहा है।[49]

गाँधीजी ने इसे मुख्य रचनात्मक मार्च मानते हुए कार्यकर्ताओं से कहा कि ''मेरी तो यह स्पष्ट राय है कि दुनियाभर के देशों में सम्पूर्ण मद्य निषेद्य के लिए भारत बिल्कुल अनुकूल देश है। इसका कारण बहुत सीधा सादा है। इस देश के दो मुख्य धर्मों में हिन्दू और इस्लाम दोनो धर्मों में शराब की मनाही है। भारत में रहने वाले लाखों लोगों के यदि मत लिये जाए तो मुझे विश्वास है कि बहुत ही बड़े भाग के लोग सम्पूर्ण मद्य निषेध के पक्ष में राय देंगें। राज्य की आमदनी में कमी भले हो, अगर शराब की लत किसान वर्ग में घुस गयी तो हमारा सर्वनाश हो जाएगा। खासकर युवा वर्ग को बहुत कष्ट सहने होंगे।[50]

गाँधीजी के अनुसार ''आर्थिक समानता के लिए कार्य करने का मतलब है पूँजी तथा मजदूरी के बीच के झगड़ो को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया जाए। इसी परिप्रेक्ष्य में उनका ट्रस्टीशिप का विचार आर्थिक समानता की स्थिति को प्राप्त करने का एक उपयोगी उपकरण है।'' गाँधी जी का यह विचार था कि ''जब तक मुट्ठी भर धनवानों और करोड़ो भूखे तथा नंगे रहने वालों के बीच बेइन्तहा अन्तर बना रहेगा, तब तक अहिंसा के बुनियाद पर चलने वाली राज्य व्यवस्था कायम नहीं की जा सकती। '' अगर मैं पूँजीपति और मजदूर की मूलभूत समानता को मान लेता हूँ, जैसा कि मुझे करना चाहिए तो मुझे पूँजीपति के विनाश का लक्ष्य नहीं रखना चाहिए। मुझे उसके हृदय परिवर्तन की कोशिश करनी चाहिए। मेरे असहयोग से उसकी आँखें खुल

जायेंगी और वह अपने अन्याय को समझ लेगा। यह आसानी से प्रत्यक्ष सिद्ध किया जा सकता है कि पूँजीपति के विनाश का परिणाम अंत में मजदूर का विनाश ही होगा।[51]

पुनः गाँधी जी ने अपने विचार इस तरह व्यक्त किये कि ''आर्थिक समानता सर्वोदय द्वारा इस सिद्धान्त पर काम करेगा कि अमीरों के पास जो अनावश्यक दौलत हैं, उसके वे संरक्षक हैं ''। कारण, इस सिद्धान्त के द्वारा वे अपने पड़ोसी से एक पैसा भी ज्यादा नहीं रख सकते। सवाल है, यह स्थिति कैसे पैदा ही जाए? इस हिंसात्मक कारवाई से समाज का फायदा कम नुकसान ज्यादा होगा।[52]

मजदूर, किसान

रचनात्मक कार्यक्रम मे मजदूरों, किसानों और विद्यार्थियों का संगठन शामिल होना चाहिए। मजदूरों में रचनात्मक कार्य करने वालों का प्राथमिक उददे्श्य होना चाहिए कि वे अपना नैतिक और बौद्धिक विकास करने के साथ हीं अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के कार्य में लग जाए।[53]

मजदूरों में भाषण देते हुए गाँधी जी ने कहा कि '' बरसों से जो बात कहता रहा हूँ, वह यह हैं कि श्रम, पूँजी से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ हैं। मैं श्रम ओर पूँजी का ब्याह करा देना चाहता हूँ। वे दोनो मिलकर आश्चर्यजनक काम कर सकते हैं। परन्तु यह तभी हो सकता जब मजदूर इतने समझदार हो जाये कि वे आपस में सहयोग करें और सम्मानपूर्ण समानता की शर्तों पर पूँजीपतियों के साथ सहयोग करें। पूँजीपति मजदूरों पर नियंत्रण इसलिए करते हैं कि वे मेल की कला जानते हैं। बिखरी हुई पानी की बूँदे यों ही सूख जाती हैं लेकिन जब वे दूसरे के साथ मिलकर महासागर बनाती हैं, जिसकी चौड़ी छाती पर बड़े–बड़े जहाज चलते हैं। इसी तरह अगर संसार के किसी भाग में सारे मजदूर आपस में मिल जाये तो वे ऊँची मजदूरी के लालच में नहीं फंसेंगे या

लाचार होकर थोड़े से पैसे की तरफ आकर्षित नहीं होंगे। मजदूरों का सच्चा और अहिंसक संगठन ऐसे चुम्बक का काम करेगा, जो सारी आवश्यक पूँजी को अपनी ओर खींच लेगा। फिर तो पूँजीपति संरक्षक बनकर ही रह सकेंगे। जब वह सुखद दिन आयेगा तब पूँजीपति और मजदूरों में कोई भेद नहीं रहेगा। तब मजदूरों को काफी भोजन, अच्छे और साफ सुथरे मकान, उनके बच्चों को हर प्रकार की जरूरी शिक्षा, स्व–शिक्षा के लिए काफी अवकाश और उचित डॉक्टरी सहायता मिलेगी ''।[54]

गाँधी जी ने पुनः कहा– ''मेरी नम्र राय में यदि मजदूरों में संगठन प्रयासों में हमेशा सफलता मिल सकती है। पूँजीपति कितने ही अत्याचारी क्यों न हो अगर उन्हें पता चल जाए कि उनकी पूँजी बिना श्रम के सहारा पाये कुछ नहीं कर सकती तो उन्हें अपना उचित स्थान तुरन्त मिल जाए ''।[55]

गाँधी जी ने रचनात्मक कार्यक्रम में किसान को स्थान दिया है ताकि देश का सामान्य नागरिक ग्राम–स्वराज की दिशा में कदम बढ़ाये। भारत गाँव में बसता है और पूरी आबादी का 82 प्रतिशत आज गाँवों में निवास करता है, इसलिए जब तक गाँवों में बसने वाले करोड़ों लोगों का विकास नहीं होगा तब तक देश का विकास संभव नहीं है।[56] गाँधी जी ने कहा कि हमें हमेश गरीब किसानों की बात ध्यान में रखनी चाहिए, हमारा दिल हमेशा उनके साथ रहना चाहिए। उसके प्रति यह कृतज्ञता ज्ञापन करना भौतिक रूप से वाजिब है, यह आपको करते रहना चाहिए।[57]

ग्रामीण क्षेत्र के विकास के साथ ही कृषकों की सेवा तथा उनके उत्थान का विचार प्रस्तुत किया। भारत एक कृषि प्रधान राष्ट्र है। यहॉ की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। उनकी निर्भरता मुख्य रूप से कृषि पर ही है। कृषि क्षेत्र में निरन्तर कार्य न मिल पाने के कारण बेरोजगारी, अदृश्य बेरोजगारी, गरीबी आदि विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा उनका जीवन स्तर निम्न बना रहता है। जिसमें सुधार करना मूल उद्देश्य

होना चाहिए। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में लघु कुटीर गृह उद्योगों को विकसित करना उचित कदम है क्योंकि बिना कृषकों के उत्थान किये कृषि क्षेत्र को विकसित किये भारत के सर्वांगीण विकास की कल्पना निराधार है।[58]

किसान उत्थान के लिए उनका संगठन होना चाहिए तभी किसान केवल मजदूर नहीं बने रहेंगे और वे मालिक बन सकते हैं। कृषि क्षेत्र में मजदूर कोई न रहे सभी मालिक बन जायें चाहे छोटे स्तर पर ही मालिक क्यों न हो।

आदिवासियों की सेवा भी गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग है। गाँधी जी ने ऐसे लोगों को समाज का अन्तिम व्यक्ति माना है जो विपन्नता की स्थिति में जीवन व्यतीत करते हैं। गाँधी जी के अनुसार " तब तक स्वराज को पूर्ण नहीं कहा जा सकता है जब तक कि सभी प्रकार की सामाजिक सुविधायें समाज के सभी लोगों को समान रूप से प्राप्त न करा दी जायें। समाज के अन्तिम व्यक्ति को भी पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त हो, सुविधायें मिलें तथा उन्हें समाज का महत्वपूर्ण अंग माना जाये। आदिवासियों की स्थिति को सुधारने के लिए उनके ऊपर पर्याप्त ध्यान दिया जाना नितान्त आवश्यक है ताकि वह उचित मानवीय जीवन व्यतीत कर सकें। उनके लिए रोजगार की व्यवस्था भोजन, वस्त्र तथा आवास की समुचित व्यवस्था कराना सभी लोगों का पवित्र कर्तव्य है।[59] गाँधी ने वनजातियों के बारे में कहा कि वे उतने ही सभ्य हैं जितने देश के दूसरे लोग। इसलिए उनको भी वह अधिकार व आगे बढ़ने का अवसर मिलना चाहिए जो बाकी देशवासियों को है।[60]

आदिवासी सेवा रचनात्मक कार्यक्रम का मुख्य अंग है। यद्यपि कार्यक्रम में इसका सोलहवॉ स्थान है, महत्व में इसका स्थान कम नहीं है। हमारा देश बहुत विशाल है यहॉ कई जातियॉ रहती हैं लेकिन वह अपने आपको एक देश का समझे यह जरूरी है। अगर ऐसा नहीं होगा तो सब अपने आपको एक दूसरे से अलग समझेंगे।[61] असहयोग आन्दोलन वापस ले लिए जाने से शुरू में बारदोली काँग्रेस कार्यकर्ताओं का मनोबल गिरा पर जल्द ही ये लोग

रचनात्मक कार्य में जुट गये। 1922 ई0 में गाँधी जी ने इनसे कहा था कि आप लोगों ने आदिवासी नीच और अछूत जातियों के लिए कुछ नहीं किया है। गाँधी जी के सुझाव पर इन लोगों ने अछूतों और आदिवासियों के बीच जिन्हें कालिपराज (अश्वेतजन) कहा जाता था, काम करना शुरू किया सवर्णो या उच्च जातियों को उजली पराज कहा जाता था। तालुके की 60 फीसदी आवादी कालिपराजों की थी। कॉंग्रेस के इन स्वयं सेवी कार्यकर्ताओं ने जो स्वयं सवर्ण जाति के थे। कालिपराज यानी अछूत और आदिवासी जनता के बीच छः आश्रम खोले। ये आश्रम पूरे तालुके में भिन्न–भिन्न स्थानों पर खोले गये। इनके माध्यम से आदिवासियों और पिछड़े वर्गो में शिक्षा प्रसार व अन्य कार्य किये गये।

आजादी की लड़ाई गाँधी जी के लिए मुख्य ध्येय था। गाँधी जी का अन्तर्विरोध यह है कि ऐतिहासिक परिस्थिति राज्य के लक्ष्य पर केन्द्रित थी, जबकि गाँधी जी किसी शक्तिशाली राज्य की स्थापना नहीं चाहते थे। वे तो पूरे समाज के लिए समान अधिकार वाले राज्य की स्थापना चाहते थे।[62]

गाँधी जी ने विद्यार्थियों के लिए रचनात्मक कार्य को जरूरी बताते हुए कहा कि अगर विद्यार्थी अपने को सच्ची स्वराज सेना में बदलना चाहते हैं तो उन्हें व्याख्यान वाजी से हटकर रचनात्मक कार्य में लग जाना चाहिए। विद्यार्थियों रिपोर्ट में यह भी जिक्र होना चाहिए कि उन्होंने कितनी बॉधे बॉधी, कितनी खादी बुनी और कितनी रात्रि शालाओं आदि का संचालन किया।[63] विद्यार्थियों के संगठन के बारे में गाँधी जी ने कहा कि यदि उनका एक ठोस संगठन हो तो वह सेवा का एक शक्तिशाली साधन बन सकता है लेकिन आन्दोलन उन्हीं विद्यार्थियों के लिए है जो अपनी पढ़ाई पूरी कर चुके हैं। उन्हें राजनीतिक दलबन्दी में नहीं फॅसना चाहिए। उन्हें रचनात्मक एवं उत्पादक कार्य में फॅसना चाहिए।[64]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का राजस्थान में काफी प्रभाव रहा। असहयोग आन्दोलन से लेकर भारत छोड़ों आन्दोलन तक लगभग समस्त आन्दोलनों में इस क्षेत्र की महिलाओं ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों की महिलाओं की आंदोलन में भागीदारी अत्यन्त उत्साहवर्धक थी। जहाँ एक ओर शहरी क्षेत्र की महिलायें जुलूस निकालने, खादी कार्यक्रम, विदेशी वस्त्रों की होली जलाने आदि कार्यक्रमों में भाग लेती थी, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण महिलाएं जंगल सत्याग्रह में भाग ले रही थीं। महिलाओं ने आन्दोलन के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं का भी डटकर मुकाबला किया। इनके सम्मुख तो समस्याओं का अम्बार ही लगा हुआ था। पुरूष वर्ग में कई ऐसे भी थे जो घर से बाहर निकल कर नारे लगाने वाली, जेल जाने वाली, तथा शराब की दुकान में पिकेटिंग करने वाली महिलाओं को अच्छा नहीं समझते थे। इन समस्याओं के अलावा इन्हें पारिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इन महिलाओं को उस समय आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता जब इनके पति जेल में डाल दिये जाते। फिर भी हजारों प्रकार की मुसीबतों का सामना करते हुए महिलाओं ने देश की आजादी में अपना सहयोग दिया।

निःसंदेह गांधीजी की प्रेरणा से राजस्थान की महिलाओं में जो जागृति आई वह अभूतपूर्व थी। पुरूष प्रधान समाज के बंधनों के बावजूद उन्होंने जिस त्याग और निष्ठा से सत्याग्रह किया, जेलों में रही तथा पुलिस अत्याचार का सामना किया वह इनके साहस और शक्ति का प्रमाण था। गांधी जी ने जिस उत्साह का संचार इन महिलाओं में किया उससे ये सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में आगे बढ़ती गई। अनेक महिलाओं ने अपने पतियों के साथ राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया। पुरूषों के समान राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर इन्होंने महिला उत्थान तथा महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में गांधी दर्शन के प्रभाव को सार्थक कर दिया।

संदर्भ

1 प्रसाद, डॉ. अवध प्रसाद, रचनात्मक कार्य एवं संस्थाए, पृ. 15
2 गोपीनाथ धावन, सर्वोदय तत्व दर्शन, पृ. 207
3 प्रसाद, डॉ. अवध, रचनात्मक कार्य एवं संस्थाए, पृ. 18
4 विनोबा, सर्वोदय, पृ. 28
5 यंग इण्डिया, 5 मई 1930
6 ग्रेस ने, दि पावर ऑफ नान–वायोलेंस, पृ. 306
7 हरिजन, 18 जनवरी 1942, पृ. 4
8 सम्पूर्ण गाँधी वांगमय, खण्ड –6, पृ. 299–300
9 सम्पूर्ण गाँधी वांगमय, खण्ड – 7, पृ. 51
10 संकलन, भाषण एवं लेख, पृ. 1024
11 यंग इंडिया, 24 जून, 1932
12 यंग इंडिया, 11 फरवरी, 1920
13 हरिजन, 27 फरवरी,1936
14 स्पीचेज एण्ड राइटिंगस् ऑफ महात्मा गाँधी , पृ. 24
15 भारतीय महिला विश्वविद्यालय अहमदाबाद में दिये गए भाषण का अंश, प्रजाबंधु 27–02–16
16 गुजराती। प्रथम वर्धा शिक्षा परिषद में दिये गये वक्तव्य का अंश, मार्च 1956 का संस्करण
17 गाधी जी, शिक्षण और संस्कृति, पृ. 18–19
18 तेन्दुलकर, डी. जी., महात्मा, खण्ड–1, पृ. 260
19 स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स आफ महात्मा गाँधी, 27 मई 1915
20 धावन, गोपीनाथ, सर्वोदय तत्व दर्शन, पृ.353
21 यंग इंडिया, अंक–3, 1921
22 तेन्दुलकर, डी. जी., महात्मा खंड–6, संसकरण–1953, पृ. 361–62
23 सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, खण्ड 67, पृ. 51
24 डॉ. ताराचन्द, भारतीयं स्वतंत्रता आन्दोन का इतिहास, भाग 3, पृ. 219
25 मंगल प्रभात, 1945, पृष्ठ–32
26 हरिजन, 17 नवम्बर 1933
27 स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी, पृ. 387
28 हरिजन, 11 फरवरी 1933
29 यंग इंडिया, 25 मई 1921
30 यंग इंडिया, 29 जुलाई 1926
31 चन्द्रशेखर धर्माधिकारी, खोज गाँधी की, पृ. 96
32 विपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृ. 134
33 प्रसाद, डॉ. अवध, रचनात्मक कार्य एवं संस्थाए, पृ. 56
34 हरिजन, 29 जनवरी, 1950
35 हरिजन, 06 मार्च, 1936
36 यंग इंडिया 18 जून, 1931
37 आर बी ग्रेग, इकानामिक्स ऑफ खदद्र, पृ. 153–157
38 हरिजन, 29 जून, 1946
39 चतुर्वेदी, डॉ डी. एन., तीसरी दुनियॉ का तीसरा रास्ताः गाँधी, पृ. 78

40 सम्पूर्ण गाँधी वांगमय, खण्ड–25, पृ. 261
41 चरखा संघ परिपत्र, 5 दिसम्बर, 1944, पृ. 2
42 प्रसाद, डॉ. अवध प्रसाद, रचनात्मक कार्य एवं संस्थाए, पृ. 12
43 डॉ. ताराचन्द, भारतीयं स्वतंत्रता आन्दोन का इतिहास, भाग 3, पृ. 214
44 आज हिन्दी, लखनऊ, 10 सितम्बर 1921
45 यंग इंडिया, 25 जून, 1931
46 यंग इंडिया, 13 अगस्त 1927
47 गाँधी जी, रचनात्मक कार्यक्रम, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, 1941, पृ. 10–12
48 सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, भाग 26, पृ. 389–390
49 यंग इंडिया, 26 मार्च 1925
50 महादेव भाई की डायरी, खण्ड–6 , पृ. 65–66
51 गाँधी, कंस्ट्रकटिव प्रोग्राम, पृ. 40
52 गोपी नाथ धावन, सर्वोदय तत्व दशर्न, पृ. 344
53 गाँधी, कंस्ट्रकटिव प्रोग्राम, पृ. 40
54 यंग इंडिया, 27 अक्टुवर, 1947
55 हरिजन, 25 जून, 1938
56 यंग इण्डिया, 27 मार्च 1921
57 सम्पूर्ण गाँधी वांगमय, खण्ड–27, पृ.174
58 गाँधी, कंस्ट्रकटिव प्रोग्राम, पृ. 22
59 चतुर्वेदी, डॉ डी. एन., तीसरी दुनियॉ का तीसरा रास्ताः गाँधी , पृ. 64
60 सम्पूर्ण गाँधी वांगमय, खण्ड–21, पृ. 30
61 गाँधीजी, रचनात्मक कार्यक्रम, पृ. 23
62 जोशी, पी. सी. जोशी, नैतिक मनुष्यता के परोपकार, गाँधी और हिन्द स्वराज, पृ. 14
63 हिन्दी नवजीवन, 20–6–21
64 हरिजन सेवक, 7 जनवरी 1946

षष्टम अध्याय

सक्रिय राजनीति और महिलाओं की भागीदारी

19वीं – 20वीं शताब्दी की बदलती राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित और प्रेरित होकर तत्कालीन राजस्थान में राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियां प्रारम्भ हुई। उल्लेखनीय है कि राजस्थान में केन्द्रशासित प्रदेश अजमेर के अलावा 19 देशी रियासतें थी इन रियासतों में उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, शाहपुरा में गुहिल, जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ़ में राठौड़, कोट बूंदी में हाडा–चौहान, सिरोही में देवड़ा चौळान, जयपुर और अलवर में कछवाहा, जैसलेर और करौली में यदुवंशी, झालावाड़ में झाला राजपूत, टों में मुसलमान, भरतपुर और धौलपुर राज्य में जाट राज्य विद्यमान थे।

राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी को सक्रिय करने में गांधी जी को भी महत्ती सफलता प्राप्त हुई। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में जितनी बड़ी संख्या में समाज के विविध वर्गों की स्त्रियों ने भाग लिया। इससे राजनीतिक संघर्ष का अनुमान लगाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में नेहरूजी ने कहा कि जेल में स्त्रियों की सक्रियता की खबर सुनकर सभी सत्याग्राही रोमांचित हो उठे। राजस्थान में इस क्षेत्र में गतिविधियां और सक्रियता निरन्तर चलती रहे।

प्रजामण्डलों की स्थापना

राजस्था में राजनीतिक चेतना एवं महिलाओं की इसमें सक्रियता को प्रजामण्डलों एवं अन्य राजनीतिक संस्थाओं ने अत्यधिक प्रभावी बनाया। इस क्षेत्र में बने संगठन मारवाड़ लोक परिषद 1928, 24 अप्रैल, 1938 को मेवाड़ प्रजामण्डल, 1931 में जयपुर प्रजामण्डल की स्थापना, 1931 में कोटा प्रजामण्डल, 1938 में अलवर कांग्रेस प्रजामण्डल, 1938 में शाहपुरा प्रजामण्डल एवं भरतपुर प्रजामण्डल की स्थापना भरतपुर के बाहर रेवाड़ी में की गई।

उल्लेखनीय है कि प्रजामण्डल आन्दोलन रियासतों में अखिल भारतीय कांग्रेस के पूरक आंदोलन के रूप में चलाया गया था। इनमें स्त्रियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया, भाग लेने वाली स्त्रियों में श्रीमती विमला देवी चौधरी,

भगवती देवी, रतन शास्त्री, जानकी देवी, गीता बजाज, महिमा देवी किंकर, नारायणी देवी वर्मा, रानी देवी, रजिया तहसीन, सुशील देवी, कमला जैन, तारा बहन, सुकीर्ति देवी, दुर्गा देवी, रामप्यारी देवी, नगेन्द्र बाला, गंगा बाई, कमला स्वाधीन, किशोरी देवी, वीर बाला भावासार, नारायणी देवी, अंजना देवी आदि प्रमुख रही।[1]

प्रजामण्डल आंदोलन

ब्रिटिश भारत का प्रशासन ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त गवर्नर जनरल, गवर्नर व अन्य अधिकारियों के हाथ में था जबकि रियासती भारत में राजाओं का निरंकुश शासन था। सन् 1857 का असफल स्वतंत्रता संग्राम जनमानस में स्वतंत्रता की ललक उत्पन्न करने में अवश्य कारगर सिद्ध हुआ। 1885 में ब्रिटिश भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी की स्थापना के बाद स्वतंत्रता आंदोलन एक नया स्वरूप लेने लगा, लेकिन प्रारंभ में रियासतों की जनता को इस राष्ट्रीय धारा के साथ नहीं जोड़ा गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और महात्मा गांधी की यही नीति थी कि रियासतों के मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाए एवं रियासतों के नेता स्थानीय स्तर पर ही अपनी समस्याओं से निपटें।

लेकिन सन् 1938 में सुभाष चन्द्र बोस की अध्यक्षता में कांग्रेस के हरिपुरा आन्दोलन में रियासतों की जनता को अपने–अपने राज्यों में उत्तरदायी शासन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रत संगठन बनाकर आंदोलन करने और जनजागृति फैलाने का आह्वान किया गया। स्वयं जवाहर लाल नेहरू ने अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के अध्यक्ष के रूप में कार्य करना स्वीकार किया। 1938 के बाद राजस्थान की लगभग सभी रियासतों में प्रजामण्डलों की स्थापना हुई और सभी रियासतों में उत्तरदायी शासन की माँग को लेकर आंदोलन किये जाने लगे। राज्य में विभिन्न प्रजामण्डल आंदोलनों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

मेवाड़ में प्रजामण्डल आंदोलन

उदयपुर में प्रजामण्डल आंदोलन की स्थापना का श्रेय श्री माणिक्य लाला वर्मा को जाता है। उनके प्रयासों से उदयपुर में 24 अप्रैल, 1938 को श्री बलवन्त सिंह मेहता की अध्यक्षता में मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना की गई। विजयादशमी के दिन प्रजामण्डल कार्यकर्ताओं ने सत्याग्रह प्रारंभ किया।

क्रांतिकारी रमेशचन्द्र व्यास को पहला सत्याग्रही बनकर गिरफ्तार होने का श्रेय प्राप्त हुआ। श्री माणिक्य लाल वर्मा ने मेवाड़ का वर्तमान शासन नामक पुस्तिका छपवाकर वितरित करवाई जिसमें मेवाड़ में व्याप्त अव्यवस्था एवं तानाशाही की आलोचना की गई। लोगों में जागृति लाने हेतु 'मेवाड़ प्रजामण्डल' मेवाड़वासियों से एक अपील नामक पर्चे भी बांटे गये। सरकार ने डाक पर सेंसर लगा दिया। 24 जनवरी 1939 को श्री माणिक्यलाल वर्मा की पत्नी नारायणी देवी वर्मा एवं पुत्री को प्रजामण्डल आंदोलन में भाग लेने के कारण राज्य से निष्कासित कर दिया गया। मेवाड़ में भयंकर अकाल पड़ने के कारण प्रजामण्डल ने गाँधीजी के आदेश पर 3 मार्च, 1939 को सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। इसके बाद प्रजामण्डल ने बेगार एवं बलेठ प्रथा के विरुद्ध अभियान चलाया फलस्वरूप मेवाड़ सरकार को इन दोनों प्रथाओं पर रोक लगानी पड़ी। यह मेवाड़ प्रजामण्डल की पहली नैतिक विजय थी। 25–26 नवम्बर 1941 को श्री माणिक्यलाल वर्मा की अध्यक्षता में पहला अधिवेशन आयोजित किया गया, जिसका उद्घाटन आचार्य जे.बी. कृपलानी ने किया।

मेवाड़ प्रजामण्डल ने कांग्रेस द्वारा 9 अगस्त, 1942 को शुरू किये गये 'भारत छोड़ो आंदोलन' में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारंभ किया। नारायणी देवी वर्मा, उनकी पुत्री आदि कई महिलाओं व सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया गया। मेवाड़ प्रजामण्डल को मेवाड़ सरकार द्वारा गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। 31 दिसम्बर, 1945 एवं 1 जनवरी, 1946 को उदयपुर के सलेटिया मैदान में अखिल भारतीय देशी लोक राज्य परिषद का छठा अधिवेशन पं. जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षत में हुआ जिसमें प्रस्ताव पारित कर देशी रियासतों के शासकों से बदलती राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप अविलंब उत्तरदायी शासन की स्थापना की अपील की गई। 8 मई, 1946 को मेवाड़ सरकार ने ठाकुर गोपाल सिंह की अध्यक्षता में संविधान निर्मात्री समिति का गठन किया। 3 मार्च 1947 को मेवाड़ के भावी संविधान की रूपरेखा की घोषणा की गई। 23 मार्च, 1947 को मेवाड़ के वैधानिक सलाहकार के. एम. मुंशी द्वारा

संवैधानिक सुधारों की नई योजना प्रस्तुत की गई जिसमें 56 सदस्यीय विधानसभा के गठन का प्रावधान था।

मेवाड़ में नये दीवान एस. बी. रामामूर्ति की नियुक्ति के बाद उनके परामर्श से महाराणा ने मोहन सिंह मेहता को मुंशी संविधान में संशोधन करने हेतु नियुक्त किया। 11 अक्टूबर, 1947 को संशोधन प्रस्तुत किये गये जिनके पश्चात् मेवाड़ प्रजामण्डल ने विधानसभा चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया। 3 मई 1948 को महाराणा ने अंतरिम सरकार बनाने एवं विधानसभा निर्वाचन के बाद उत्तरदायी सरकार का गठन करने की घोषणा की परन्तु इसी दौरान 18 अप्रैल 1948 को उदयपुर राज्य का राजस्थान में विलय हुआ।[2]

मारवाड़ में प्रजामण्डल आंदोलन

1934 में जयनारायण व्यास, आनन्दमल सुराणा आदि ने राज्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना एवं नागरिक अधिकारों की रक्षा करने के उद्देश्य से जोधपुर में जोधपुर प्रजामण्डल का गठन किया। 1937 में दीपावली के दिन जोधपुर प्रजामण्डल एवं सिविल लिबर्टीज यूनियन को अवैध घोषित कर दिया गया। 1938 में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन के बाद 16 मई, 1938 को जोधपुर में 'मारवाड़ लोक परिषद्' की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था।

फरवरी 1939 में सरकार द्वारा जयनारायण व्यास पर लगाये गये प्रतिबंध हटाने के बाद वे जोधपुर आये एवं मारवाड़ में प्रजामंडल आंदोलन की बागडोर संभाली। व्यासजी पर ये प्रतिबंध हटवाने में बीकानेर महाराजा गंगासिंह जी का बड़ा योगदान था। 26 जून, 1940 को मारवाड़ लोक परिषद् के तत्वाधान में तथा मारवाड़ शासन के मध्य समझौता हुआ जिसमें सरकार ने लोक परिषद् को जन प्रतिनिधि सभा के रूप में मान लिया एवं महाराजा की छत्र छाया में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के उद्देश्य को स्वीकार कर लिया तथा कार्यकर्ताओं को रिहा कर दिया गया। 28 मार्च, 1941 को मारवाड़ में उत्तरदायी शासन दिवस मनाया गया।

26 जनवरी, 1942 को लोक परिषद् के तत्वाधान में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। श्री व्यास ने नगरपालिका अध्यक्ष से इस्तीफा देकर राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु संघर्ष को पुनः प्रारंभ किया। उन्होंने उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष व 'संघर्ष क्यों' आदि पुस्तिकाएँ वितरित करवाई तथा 11 मई से दूसरा सत्याग्रह आरंभ किया गया। श्री बालमुकुन्द बिस्सा का जेल में अव्यवस्था व अन्याय के विरूद्ध भूख हड़ताल करने के कारण स्वास्थ्य खराब हो जाने से 19 जून, 1942 को मृत्यु हो गई। इसकी देश में स्वतंत्र कड़ी प्रतिक्रिया हुई।

लोक परिषद् के आंदोलन में मारवाड़ की महिलाएँ भी महिमा देवी किंकर के नेतृत्व में बराबर से भूमिका निभा रही थी। 9 अगस्त, 1942 को गाँधीजी के भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रारंभ होने के कारण मारवाड़ के प्रजामंडल आंदोलन में और तेजी आ गई। जयनारायण व्यास की पुत्री रमादेवी, अचलेश्वर प्रसाद शर्मा की पत्नी कृष्णा कुमारी आदि के नेतृत्व में महिलाओं ने आंदोलन को बढ़ाया। श्री लालचंद जैन ने वीर और उत्साही युवकों को संगठित करने हेतु एक गुप्त संगठन 'मारवाड़ क्रांति संघ' बनाया।

21 जून, 1947 को युवा एवं अनुभवहीन महाराजा हनुवन्त सिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे जो स्वयं उत्तरदायी सरकार के विरोधी थे। 3 मार्च, 1948 को श्री जयनारायण व्यास के प्रधान मंत्रित्व में एक मिली जुली लोकप्रिय सरकार का गठन किया गया। 30 मार्च 1949 को जोधपुर रियासत का राजस्थान में विलेय हो गया।

जयपुर प्रजामण्डल आंदोलन

सर्वप्रथम 1931 में श्री कपूरचन्द पाटनी एवं श्री जमनालाल बजाज के प्रयासों से 'जयपुर प्रजामण्डल' की स्थापना की गई। जयपुर प्रजामंडल का पुनर्गठन 1931 में स्थापित जयपुर प्रजामण्डल को राजनैतिक क्षेत्र में अधिक प्रभावी भूमिका निभाने एवं जनता में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से 1936 में सेठ जमनालाल बजाज के प्रयासों से व श्री हीरालाल शास्त्री के सहयोग से जयपुर राज्य प्रजामंडल का पुनर्गठन किया गया।

जयपुर के श्री चिरंजीलाल मिश्र को उसका अध्यक्ष तथा श्री शास्त्रीजी को उसका मंत्री बनाया गया। सन् 1938 में श्री जमनालाल बजाज जयपुर प्रजामंडल के अध्यक्ष निर्वाचित किये गये। उनकी अध्यक्षता में जयपुर में 8 व 9 मई 1938 को प्रजामंडल का विशाल अधिवेशन हुआ। 18 मार्च 1939 को जयपुर में श्रीमति दुर्गावती देवी शर्मा के नेतृत्व में महिला सत्याग्रहियां के प्रथम जत्थे ने गिरफ्तारी दी। जयपुर प्रजामंडल के तत्कालीन अध्यक्ष श्री हीरालाल शास्त्री एवं रियासत के प्रधानमंत्री सर मिर्जा इस्माइल के मध्य 1942 में एक समझौता हुआ, जिसके तहत महाराजा ने राज–काज में जनता को शासित करने की अपनी नीति का उल्लेख किया। प्रजामंडल इस उत्तर से संतुष्ट हो गया।[3]

भारत छोड़ो आंदोलन एवं जयपुर प्रजामंडल श्री हीरालाल शास्त्री एवं मिर्जा इस्माइल के मध्य 1942 में हुए समझौते से संतुष्ट होकर जयपुर प्रजामंडल के अध्यक्ष हीरालाल शास्त्री ने जयपुर प्रजामंडल को भारत छोड़ो आन्दोलन से पूर्णतः अलग (निष्क्रिय) रखा। जयपुर प्रजामंडल का एक वर्ग भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भूमिका का निर्वहन करना चाहता था जिसमें बाबा हरिशचन्द्र, रामकरण जोशी, दौलतमल भण्डारी आदि शामिल थे। उन्होंने 1942 में एक नये संगठन 'आजाद मोर्चे' का गठन कर जयपुर में भारत छोड़ो आंदोलन का शुभारंभ कर दिया।

1945 में जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से आजाद मोर्चे का प्रजामण्डल में विलेय हो गया। मार्च 1946 में विधानसभा में टीकाराम पालीवाल द्वारा प्रस्तुत राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित करने का प्रस्ताव पास कर दिया गया। इसके बाद जयपुर प्रजामंडल के अध्यक्ष देवीशंकर तिवाड़ी को राज्य प्रजामंडल में शामिल किया गया। इस प्रकार जयपुर राज्य राजस्थान का पहला राज्य बना जिसने अपने मंत्रिमंडल में गैर सरकारी सदस्य नियुक्त किया।

1 मार्च 1948 को जयपुर के प्रधानमंत्री वी.टी. कृष्णामाचारी ने संवैधानिक सुधारों की घोषणा की तथा मंत्रिमण्डल का गठन किया गया। सर वी.टी. कृ

ष्णामाचारी, हीरालाल शास्त्री को मुख्य सचिव एवं देवीशंकर तिवाड़ी, टीकाराम पालीवाल एवं दौलतमल भंडारी को प्रजामण्डल की आरे से सचिव बनाया गया। वृहद् राजस्थान के निर्माण (30 मार्च, 1947) तक यही लोकप्रिय मंत्रिमंडल कार्य करता रहा।[4]

भरतपुर प्रजामंडल आंदोलन

भरतपुर में जनजागृति में महाराजा किशनसिंह (1919–29 ई.) के उदार शासन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 1928 में मेकेंजी को रियासत का दीवान बनाया। मैकेन्जी की दमनकारी नीति पुलिस अत्याचार एवं मौलिक अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबंध के विरूद्ध में 1928 में भरतपुर राज्य प्रजा संघ की स्थापना की गई।

भरतपुर प्रजामण्डल का गठन – भरतपुर राज्य में महाराजा की छत्रछाया में लोकतांत्रिक प्रशासन की स्थापना के उद्देश्य से मार्च 1938 ई. में श्री किशन लाल जोशी के प्रयासों से भरतपुर राज्य प्रजामंडल की स्थापना की गई। इसके अध्यक्ष श्री गोपीलाल यादव को बनाया गया।

भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारंभ होने के बाद 10 अगस्त 1942 को भरतपुर में हड़ताल रखी गई। भरतपुर प्रजा परिषद् के अधिकांश नेताओं एवं कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। महिला सत्याग्रहियों का नेतृत्व श्रीमती सरस्वती बोहरा कर रही थी। 3 अक्टूबर, 1947 को भरतपुर के लक्ष्मण मंदिर पर आयोजित सभा में महाराजा ने लोकप्रिय मंत्रिमंडल बनाकर उसमें चार मंत्रियों को शामिल करने एवं 11 सदस्यों की संविधान निर्मात्री समिति के गठन की घोषणा की।

दिसम्बर, 1947 को प्रजा परिषद् के मास्टर आदित्येन्द्र एवं गोपीलाल यादव को, हिन्दू महासभा के हरिदत्त शर्मा को एवं जमींदार किसान सभा के ठाकुर देशराज्य को मंत्रिमंडल में शामिल किया गया। तीन माह बाद 18 मार्च 1948 को भरतपुर का मत्स्य संघ में विलेय हो गया और सामंती राजशाही शासन का अंत हुआ।

बागड़ क्षेत्र में प्रजामंडल आंदोलन

राजस्थान की रियासतों में राजनैतिक चेतना के सृजन का श्रेय सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज को जाता है। महर्षि तीन बार राजस्थान में आए, क्योंकि वे यहाँ के राजाओं तथा जागीरदारों को प्रेरित कर उनके माध्यम से शासन में सुधार तथा जनता में सामाजिक और राजनैतिक जागृति लाना चाहते थे। अत्याचारी सामन्ती व्यवस्था एवं उसके संरक्षक निरंकुश राजतंत्र तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध राजस्थान में सर्वप्रथम विद्रोह का झण्डा बुलन्द करने के श्रेय यहाँ के आदिवासी भीलों एवं किसानों को है। भील नेता गुरू गोविन्द गिरि ने जनजातियों में जागृति उत्पन्न की। गुरू गोविन्द गिरि महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं से प्रभावित थे। 1938 में हुए काँग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन के बाद राजस्थान की विभिन्न रियासतों में नागरिक अधिकारों एवं उत्तरदायी सरकारों की स्थापना के लिए अनेक आंदोलन हुए। वागड़ क्षेत्र की जनजागृति एवं राजनैतिक आंदोलनों पर महात्मा गाँधी की अहिंसक सत्याग्रह की अवधारणा का गहरा प्रभाव पड़ा। इस क्षेत्र में राजनैतिक जागृति रचनात्मक कार्यों के माध्यम से हुई है।[5]

डूँगरपुर में प्रजामंडल आंदोलन

डूंगरपुर प्रजामंडल की स्थापना 1944 में हुई। इनकी अध्यक्षता भोगीलाल पाण्ड्या के नेतृत्व में की गई।

स्त्रियों की राजनीतिक सक्रियता

राजस्थान में महिलाओं की सक्रियता अत्यधिक रही। ये महिलाएं ने अनेक अवसरों पर जेल गई और अपनी राजनीतिक सक्रियता का परिचय दिया। श्रीमती विमला चौधरी पर जलियावाला काण्ड का गहरा प्रभाव था। इस कारण 1921 से वे आन्दोलन में सक्रिय हो गई। और उन्हें 1922 में जेल भी जाना पड़ा। 1936 से 1945 तक वे अजमेर में कांग्रेस सेवादल की 'कप्तान' के रूप में महिलाओं का नेतृत्व किया। 1936 में श्रीमती चौधरी डूंगरपुर में माणिक्य लाल वर्मा से मिलकर आन्दोलन में सक्रिय रही। श्रीमती भगवती देवी विश्नोई

को 1938 में भीलवाड़ा में प्रजामण्डल में सक्रियता के कारण गिरफ्तार कर ली गई। और 10 दिवस का का कठोर कारावास दिया गया।

श्रीमती विश्नोई 1942 के भारत छोड़ो का सारे देश में तहलका मचा। तब श्रीमती गुप्ता भी सक्रिय हो गई। इन्होंने सीमलवाड़ा तहसील पर सर्वप्रथम तिरंगा फहराया। इसलिए उन्हें बन्दी बनाकर डूंगरपुर जेल में रखा गया।

जेल में इन्हें पाश्विक अत्याचार सहने पड़े। थोड़े दिन बाद इन पर मुकदमा चलाकर डूंगरपुर रियासत से निष्कासित कर दिया गया। तभी वे अपने पति के साथ श्री जय नारायण व्यास के सम्पर्क में आई और जोधपुर में रचनात्मक कार्यों में संलग्न हो गई।

श्रीमती रतन शास्त्री अपने पति के साथ जयपुर प्रजामण्डल की सामान्य कार्यकर्ता बनी। जब जयपुर सत्याग्रह में प्रजामण्डल के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। तब श्रीमती रतन शास्त्री जयपुर से बाहर रहकर अन्य सदस्यों के साथ सत्याग्रह का कुशलतापूर्वक संचालन करती रही। लेकिन जब गांधी ने सत्याग्रह को पीछे लेने का आदेश दिया तो श्रीमती रतन शास्त्री बहुत दुखी हुई। तब श्रीमती रतन राधाकृष्ण बजाज के साथ दिल्ली चली गई। श्रीमती रतन शास्त्री ने गाँधीजी से पूछ बैठी कि आपने सत्याग्रह स्थगित करने का आदेश क्यों दिया।

1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय श्रीमती रतन शास्त्री ने वनस्थली विद्यापीठ से अनेक कार्यकर्त्ताओं और महिलाओं को दिल्ली, उत्तरप्रदेश और अन्य प्रदेशों में जाकर आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए भेजा। वनस्थली विद्यापीठ श्रीमती रतन शास्त्री के कारण आन्दोलनकारियों का आश्रय स्थल बन गई।[6]

श्रीमती श्यामलता व्यास व्यवसाय से वकील होते हुए भी 1937 में प्रजामण्डल की सदस्यता ग्रहण कर 1947 तक जिला प्रजामण्डल की अध्यक्ष रही। इनके नेतृत्व में अनेक स्त्रियों ने राजनीतिक गतिविधियों में पदार्पण किया।

श्रीमती सावित्री देवी भाटी ने 1940 में मारवाड़ लोक परिषद द्वारा प्रारंभ किये गये सामन्त शाही के विरूद्ध आन्दोलन में पहली बार भाग लिया। इसी कारण इनको 18 अगस्त 1947 को गिरफ्तार कर लिया गया। इन पर 3 मुकदमे चलाये गये। 16 महीनों बाद इनको जेल से रिहा कर दिया गया।

गीता बजाज ने 1942 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बी.ए. में प्रवेश लिया। उसी समय देश में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारंभ हो गया। उनके शिक्षक डॉ. गोरेला ने विद्यार्थियों को आह्वान किया कि वे भी इस आन्दोलन में सक्रिय हो जाये। इस पर गीता जी ने भी आन्दोलन में कूद पड़ी। इसके कारण उन्हें विश्वविद्यालय से निष्कासित होना पड़ा। किन्तु श्रीमती गीताजी ने परिणाम की चिन्ता किये बिना ही 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय हो गई। दिल्ली में वे पकड़ी गई। उन्हें सजा मिली और लाहौर जेल में अनेक कष्ट सहने पड़े। 16 महीने की सजा के उपरान्त उनकी जेल से रिहाई हो गई।

21 जून 1938 को भरतपुर की स्थानीय पुलिस ने राज्य प्रजामण्डल के आह्वान पर आन्दोलन कर रही महिला सत्याग्रहियों को जेल में भरना प्रारंभ कर दिया। जेल में बंद ये महिलायें थी त्रिवेणी देवी, कृष्णा देवी, कृष्णा प्यारी, शीला देवी, श्रीमती भगवती देवी आदि। उनके साथ अनेक महिलायें रही। भरतपुर में 1921, 1930 और 1931 के स्वतंत्रता आन्दोलन उल्लेखनीय है। जब जनता में राजशाही और ब्रिटिश साम्राज्य दोनों से लोहा लिया। श्रीमती त्रिवेणी देवी 11 अप्रैल 1939 को प्रजामण्डल के नेतृत्व में झण्डा फहराया एवं प्रेसीडेन्ट स्टेट कौसिंल को प्रजामण्डल का मांग पत्र दिया। जयपुर में सत्याग्रह का आयोजन 1939 में हुआ था, इसमें महिलाओं को योगदान महत्वपूर्ण रहा। इन महिलाओं में रामप्यारी देवी, सुशीला देवी, श्रीमती महिमा देवी, राजेश्वरी देवी, सुमित्रा सिंह, अन्जना देवी मोदी आदि महत्वपूर्ण महिलायें थी।[7]

15 मार्च 1939 को जयपुर राज्य की पुलिस ने सत्याग्रही महिलाओं पर लाठियाँ बरसाई। एवं घोड़े दौड़ाये यह अत्याचार की क्रूर कहानियाँ है। इसके विरोध में महिलाओं ने पुलिस के अत्याचारों को मर्दो की भांति सहन किया,

लाठियों के असहाय प्रहार के कारण अनेक महिलायें घायल भी हुई थी। परन्तु तिरंगे झण्डे को नहीं झुकने दिया। आखिर पुलिस को हतास होना पड़ा। खूनी अत्याचार अहिंसा के आगे झुक गया। जयपुर सत्याग्रह में शेखावाटी की महिलाओं की अहम् भूमिका रही। इन्होंने जयपुर के जौहरी बाजार क्षेत्र में व्यापक जुलूस निकाले। गिरफ्तारियाँ भी दी गई। इन महिलाओं में श्रीमती दुर्गा देवी, वीरबाला भावासार, फूला देवी एवं श्रीमती देवी शर्मा सम्मिलित थी। इनका प्रथम जुलूस 18 मार्च 1939 को निकाला गया।

यद्यपि श्रीमती फूला देवी, श्रीमती दुर्गा देवी और उनकी पुत्र वधू श्रीमती शमाकोरी देवी जिसकी गोद में 6 माह का बालक था। श्रीमती गौरी देवी, श्रीमती सिणगारी देवी प्रतापपुरा, श्रीमती मोहरी देवी, पातुसरी, ने भी आगे बढ़कर गिरफ्तारियाँ दी। और 4 महिने तक केन्द्रीय–कारागर जयपुर में रही थी। इसके अलावा गोविन्दगढ़ चरखा संघ के तत्वाधान में श्रीमती रमादेवी, श्रीमती शारदा देवी, श्रीमती सुमित्रा सिंह, श्रीमती विधावती, श्रीमती भारती देवी, श्रीमती केसर देवी, श्रीमती शिवदेवी आदि ने गिरफ्तारियाँ दी। इस प्रकार सांमती शासन पद्धति एवं शोषणात्मक अत्याचार पूर्ण परिस्थिति से मुक्ति लेने के लिए पुरूषों के साथ हजारों स्त्रियों ने संघर्ष में भागीदारी निभाई।

इसी क्रम में 4 जून 1941 को झुन्झुनु क्षेत्र में प्रजामण्डल का वार्षिक सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें वनस्थली विद्यापीठ की छात्राओं ने जुलूस निकाला। इसी समय श्रीमती सुभद्रा देवी की अध्यक्षता में झुन्झुनु में एक महिला सम्मेलन हुआ। जिसमें हजारों महिलाओं ने भाग लिया। इससे उन महिलायें राजनीतिक रूप से मोर्चा बन्दी करने लगी थी। इससे राजस्थान में व्यापक राजनीतिक चेतना का विकास हुआ।

1942 के बम्बई अधिवेशन में अखिल भारतीय कांग्रेस ने निर्णय किया कि देश की स्वतंत्रता के लिए गाँधीजी के नेतृत्व में जन संघर्ष शुरू किया जाये। कांग्रेस महासमिति ने गाँधीजी को इस नाजुक घड़ी में आन्दोलन का नेतृत्व करने की प्रार्थना की। और दूसरी तरफ देश की जनता के नाम एक अपील

जारी की। जिसमें लिखा था कि जन आन्दोलन के दौरान प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह एक अनुशासित सिपाही की तरह गाँधीजी के आदेशों का पालन करे। इसी अवसर पर रियासतों के प्रजामण्डल के नेताओं के सम्मेलन को सम्बोधित करते हुये, गाँधीजी ने कहा कि ब्रिटिश भारत के भावी संघर्ष का नारा होगा। ''अंग्रेजों भारत छोड़ो'' और रियासतों में नारा होगा कि ''राजाओं अंग्रेजों का साथ छोड़ों'' उन्होंने कहा कि प्रत्येक क्षेत्र में प्रजामण्डलों को राजाओं को चुनौती देनी होगी। कि ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध विच्छेद करे और अत्याचार तुरन्त बंद करे।[8] यदि वे इस मांग को नहीं मानते है तो प्रजामण्डलों को चाहिये कि वे तुरन्त संघर्ष प्रारंभ कर दे। इस प्रकार यह पहला अवसर था कि ब्रिटिश भारत के साथ रियासतों को भी जन संघर्ष शुरू करने का आह्वान किया गया था।

आन्दोलन की प्रगति के दूसरे दिन ही प्रातः 5 बजे से पूर्व ही गाँधीजी एवं चोटी के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। गाँधीजी ने गिरफ्तारी से पूर्व स्वतंत्रता संग्राम में ''करो या मरो'' का आह्वान किया। राजस्थान में महिलाओं ने बड़े नेताओं कि गिरफ्तारी के बाद पूरक आन्दोलन के रूप में जन–संघर्ष आरंभ रखा। इसमें भाग लेने वाली महिलाओं में गीता बजाज, कमला बेनीवाल, रतन शास्त्री, कोकिला देवी, विमला देवी चौधरी, नारायणी देवी वर्मा, कमला स्वाधीन, अंजना देवी, भागीरथी देवी, आदि प्रमुख रही।

आन्दोलन सभी देशी रियासतों में महिलाओं के नेतृत्व में स्थानीय स्तर पर प्रारंभ किया गया। जैसलमेर, जयपुर, बीकानेर, सीकर, धौलपुर, करौली, अलवर, झुन्झुनु में महिलाओं ने बड़े पैमाने पर जुलूस धरना, एवं हड़ताल के कार्यक्रम आयोजित किये गये। आन्दोलन की प्रगति के कारण जगह–जगह जुलूस, सभाओं एवं हड़तालों का आयोजन हुआ। सभाओं एवं हड़तालों का आयोजन हुआ। विद्यार्थी विश्वविद्यालय छोड़कर आन्दोलन में आ गये। इसी क्रम में श्रीमती गीता बजाज को सरकार ने दमन चक्र के द्वारा इसे दबाने का

प्रयास किया। आजादी की इस अंतिम लड़ाई में राजस्थान में महिलायें अग्रणी रही।

भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू होने के साथ ही शाहपुरा प्रजामण्डल ने राजाधिराज को अल्टीमेटम दे दिया। कि वे अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद कर दे। इसके बदले प्रजामण्डल कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। और उन्हें शाहपुरा से दूर ढिकोला के किले में बंद कर दिया गया। बाद में इन्हें अजमेर जेल भेज दिया गया। इसी प्रकार राज्य की सभी बड़ी रियासतों जयपुर, कोटा, बीकानेर, जैसलमेर में भी इस आन्दोलन का क्रूरतम रूप सामने आया। महिलायें इन गतिविधियों में आगे रही। वे न केवल आन्दोलन का संचालन करती थी। अपितु एक गुप्तचर की भांति सूचना प्रेषित की भूमिका भी निभा रही थी। महिलायें आन्दोलन काल में आन्दोलन एवं देश भक्ति से प्रेरित गीत गाकर भी इन आन्दोलनकारियों को जागृत करती रहती थी।

यदि दुख पड़ने पर हृदय का भेद जाहिर कर दिया
डरपोक बनकर शत्रु पग पर, शीश अपना धर दिया।
दो रोज के उपवास में ही, धीरता जाती रही,
रोने लगे टूक दण्ड से, गंभीरता जाती रही।
यदि कष्ट सहने के लिए, तन मन सभी असमर्थ है,
तो देशभक्तों छोड़ दो, आशा तुम्हारी व्यर्थ है।

इस प्रकार स्त्रियों ने न केवल रचनात्मक कार्यक्रमों में अपितु सक्रिय राजनीति में भी भाग लिया। स्त्रियाँ कठोर सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण घर की चारदीवारी से बाहर नहीं आई। वे अब धीरे–धीरे राजनीति में भी सक्रिय होने लगी थी। गाँधीवादी आन्दोलनों के विभिन्न प्रतिक्रियाओं में भाग लिया।

जैसे– जुलूस निकालना, सरकारी कार्यों की अवज्ञा करना, हड़ताल करना, छोटे बच्चों को लेकर जेल जाना आदि। उस समय की रूढ़िवादी वातावरण में महिलाओं की ऐसी भूमिका उनके त्याग, साहस एवं बलिदान की

परिचायक थी। इस प्रकार की गतिविधियों में भाग लेना इन महिलाओं के लिए सहज व सरल नहीं था।

महिलाओं ने विभिन्न स्तरों पर आन्दोलनों में योगदान दिया। और न केवल इनमें भागीदार बनी रही अपितु वे इसमें नेतृत्व भी करती थी विद्यालयों में पढ़ने वाली छात्राओं ने भी इनमें योगदान दिया। इसमें प्रमुख गीता बजाज, नारंगी देवी रहीं। यद्यपि इन स्त्रियों की संख्या कम थी। किन्तु इनका प्रभाव व्यापक एवं दूरगामी था। इनकी इस पहल ने न स्त्रियों के लिए विकास एवं प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया।

ग्रामीण स्तर पर ग्राम संघो की स्थापना

ग्रामीण समुदाय की आत्मनिर्भरता, नैतिक एवं आर्थिक समग्रता तथा बृहद भारतीय संरचना के एक स्वायत अंग के रूप में स्वीकार करने भारतीय ग्रामीण समुदाय के परम्परागत दृष्टिकोण का समर्थन किया। स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्रीय पुनर्निर्माण, नियोजन और राजनीतिक जागरूकता से सम्बन्धित कार्यक्रमों के निर्धारण में भी भारतीय ग्रामीण समुदाय को एक आधारभूत इकाई माना गया है। यद्यपि दूसरी और ड्यूमा और पोकाक जैसे विचारक भी है जो भारतीय ग्रामीण समुदाय को एक स्वतंत्र इकाई स्वीकार करने में संदेह व्यक्त करते है। भारतीय संस्कृति धार्मिक, दार्शनिक और संस्थागत प्रतिमानों की समग्रता है, जिसका केवल छोटा सा अंश ग्रामीण समुदाय द्वारा अभिव्यक्त होता है।[9]

इनमें किसी भी प्रकार का संदेह व्यक्त नहीं किया जाना चाहिये। कि भारतीय गाँवों में परिवर्तन नहीं आया है। गाँधी दर्शन में सबसे अधिक प्रमुखता उनके समाज परिवर्तन के सिद्धान्तों को मिली है। जिसमें केवल भारत को ही नहीं बल्कि विश्व मानव को भी आकर्षित किया है।

गाँधीजी ने ग्राम संघों की स्थापना का वर्णन अपने ग्राम स्वराज्य की अवधारणा में दर्शाया गया है। गाँधीजी के स्वराज्य की अवधारणा अपने आप में एक विस्तृत एवं सम्पूर्ण अवधारणा है। जिसका नकारात्मक पहलू भी है। ये

दोनों अपने आप में महत्वपूर्ण है। एक दूसरे से सम्बन्धित है। एक–दूसरे के पूरक है। उन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। गाँधीजी ने अपने राजनैतिक जीवन के 30 वर्षों में भारत को ब्रिटिश शासक से मुक्ति दिलाने में लगा दिये। वह ब्रिटिश शासन को भारत के लोगों की स्वशासन की क्षमता के विपरीत, अस्वभाविक एवं अत्याचारी भी मानते हैं। वह चाहते थे कि जिनका जल्दी हो सके, अंग्रेज भारत को छोड़कर चले जाये।

भारतीय समाज मूल रूप से एक ग्रामीण एवं कृषक समाज है। इतिहास के अतीत काल से लेकर अब तक भारतीय जनसंख्या का बहुसंख्यक भाग ग्रामीण क्षेत्र में निवास करता है। भारतीय संस्कृति की अक्षुणता एवं प्रभावशीलता का एक प्रमुख कारण ग्रामीण समुदाय एवं उसकी परम्परागत संरचनात्मक विशेषतायें रही है। वस्तुतः भारतीय ग्राम एक भौतिक तथ्य या पारिस्थितिकीय इकाई नहीं, बल्कि एक सामाजिक वास्तविकता रही है। भारतीय ग्राम के संबंध में परम्परागत धारणा में इसे एक आत्मनिर्भर इकाई में अवलोकित किया गया है। प्रारंभिक समय में भारतीय ग्राम को एक स्वतंत्र चलित लघु गणतंत्र माना है। उनके अनुसार ग्रामीण समुदाय पूर्णतया आत्मनिर्भर रहा है। संसार में उसका कोई सम्पर्क नहीं रहा है। शेष सभी वस्तुयें परिवर्तित रही है परन्तु ग्रामीण समुदाय स्थिर रहे हैं। राजवंशों के उत्थान–पतन होते रहे हैं। क्रान्तिया होती रही है। ग्रामीण समुदाय पहले जैसे बने रहे हैं। गाँधी के स्वराज्य की अवधारणा अपने आप में एक विस्तृत तथा सम्पूर्ण अवधारणा है। जिसका नकारात्मक पहलू भी है। ये दोनों अपने आप में महत्वपूर्ण है। एक दूसरे के पूरक भी है। उन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। गाँधी ने अपने राजनीतिक जीवन में 30 वर्ष भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्ति दिलाने में लगा दिये। वह ब्रिटिश शासन को भारत के लोगों की स्वशासन की क्षमता के विपरीत अस्वाभाविक एवं अत्याचारी भी मानते थे। वह चाहते थे कि जितना जल्दी हो सके। अंग्रेज भारत को छोड़ चले जाये।

1942 के कांग्रेस का बम्बई अधिवेशन में भागीदारी

क्रिप्स मिशन की वजह से भारतीयों ने यह धारणा बैठा दी थी कि ब्रिटिश सरकार जनता की आंखों में धूल झोंकने की चाल खेल रही थी। सरकार द्वारा भारत को युद्ध का आधार बनाने की घोषणा करने से तो सारे देश में राजनीतिक अशान्ति व्याप्त हो गई। महात्मा गाँधी ने इसी समय अंग्रेजों से भारत छोड़ने का आह्वान किया। 9 जून 1942 को लुई फिशर ने महात्मा गाँधी से कहा– ''अंग्रेजों के लिए भारत छोड़ने या न छोड़ने के बीच दूसरा कोई रास्ता नहीं है''। 8 अगस्त 1942 को बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसकी अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद द्वारा की गई थी।

8 अगस्त 1942 को बम्बई कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस महासमिति ने महात्मा गाँधी का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। प्रस्ताव में कहा गया कि भारत में ब्रिटिश शासन के तुरन्त अन्त के लिए और मित्र राष्ट्रों के आदर्श की पूर्ति के लिए यह अविलम्ब आवश्यक है कि देश में ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाये। यह स्पष्ट कर दिया गया कि स्वतंत्र भारत अपने सम्पूर्ण विशाल साधनों से महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों का साथ देगा। कार्य समिति ने गाँधीजी के नेतृत्व में आन्दोलन चलाने की घोषणा की। तत्पश्चात गाँधीजी ने अपने ऐतिहासिक भाषण में जनता को सन्देश देते हुये एक प्रमुख नारा दिया–

करो या मरो (Do and Die) आन्दोलन छेड़ने से पूर्व महात्मा गाँधी एक बार पुनः सरकार से समझौता वार्ता कर लेने के पक्ष में थे। परन्तु जब सरकार ने पूर्ण उपेक्षा का रूख अपना लिया तो गाँधीजी द्वारा आन्दोलन को प्रारंभ कर दिया गया। दूसरे ही दिन 9 अगस्त को प्रातःकाल महात्मा गाँधी और विभिन्न कांग्रेसी नेताओं को बन्दी बना लिया। और कांग्रेस को अवैध संगठन घोषित कर दिया गया।[10]

सभाओं और जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। कांग्रेसं कार्यालयों पर ताले लगा दिये गये। यद्यपि 'भारत छोड़ो आन्दोलन' अहिंसा पर आधारित

था। लेकिन सरकार के इन अत्याचारों से उत्तेजित होकर कई जगह हिंसात्मक घटनायें भी घटित हो गई। क्रान्तिकारी लोगों ने गुप्त रूप से रेल्व स्टेशन डाकघरों व पुलिस थानों आदि को जलाकर आन्दोलनों में भाग लिया।

सरकार ने बर्बरतापूर्वक जनता का दमन किया। 'गांधी की जय', 'गाँधी को छोड़ दो' के नारे पूरे देश में धरनो, जुलूसों के माध्यम से गूंज उठे। अंग्रेजों भारत छोड़ो' के नारे भी इस आन्दोलन में गूंज रहे थे। शांतिपूर्वक किये जा रहे जुलूसों पर सरकार द्वारा लाठी बरसाई गई। जिनमें हजारों महिलायें व पुरूष घायल हो गये। इस आन्दोलन में महिलाओं ने भी सक्रिय रूप से भाग लिया।

संदर्भ

1 पालिवाल, देवीलाल, राजस्थान में सामन्तवादी, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1990, पृ. 58

2 प्रसाद कमल कान्त एवं लुईस प्रकाश, राजस्थान के दलितों का मुक्ति संघर्ष, भारतीय समाजिक संस्थान, दिल्ली, 2001, पृ. 48

3 पेमाराम, शेखावाटी किसान आंदोलन का इतिहास, श्री गणेश सेवा समिति, जसनगर, नागौर, 1990, पृ. 55

4 पानगड़िया, बी.एल., राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007, पृ. 15

5 परिहार, डॉ. विनीता, राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2002, पृ. 53

6 निर्विरोध, डॉ. तारादत्त, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा–पं. ताडकेश्वर शर्मा, राजस्थान स्वर्ण जयन्ती समारोह समिति, जयपुर, 2001, पृ. 56

7 नीरज, जयसिंह, शर्मा बी.एल., राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, (अष्टम संस्करण), 2001, पृ. 58

8 देशराज, शेखावाटी के जनजागरण एवं किसान आन्दोलन के चार दशक, जयपुर, 1961, पृ. 56

9 डंडिया, मिलापचंद, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा–पं. अर्जुनलाल सेठी, राजस्थान स्वर्ण जयन्ती समारोह समिति, जयपुर, 2002, पृ. 12

10 काला, गुलाब चन्द, राजस्थान परिचय ग्रन्थ, जयभूमि कार्यालय, जयपुर, 1954, पृ. 32

सप्तम अध्याय

महिला कार्यकर्त्ताओं का संक्षिप्त जीवन वृत्त

किसी भी देश, राज्य या समाज के निर्माण में उसके महिलाओं का मूल्यवान योगदान होता है। अतीत से सीख एवं प्रेरणा लेकर वर्तमान एवं भविष्य में अग्रसर होने की शाश्वत परम्परा इतिहास को अनुप्राणित करती रही है। भारतीय स्वतंत्रता–आन्दोलन का इतिहास स्वतंत्रता कि लिए भारतीयों के संघर्ष की अदभुत गाथा है। इस संघर्ष में पुरूषों और महिलाओं ने समान रूप से भाग लिया। भारतीय महिलाओं का योगदान इसमें इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि उनका सामाजिक उत्थान हुए बहुत लंबा समय व्यतीत नहीं हुआ था। घर का मोर्चा हो या राजनीति का रणक्षेत्र, महिलाओं ने जिस साहस, सहिष्णुता और वीरता से स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भूमिका निभाई, वह इतिहास की धरोहर है। राजस्थान में महिला कार्यकर्त्ताओं का संक्षिप्त विवरण निम्न है–

श्रीमती जानकी देवी बजाज

श्रीमती जानकी देवी बजाज का जन्म उच्च मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम श्री गिरधारीलालजी था। बाल्य अवस्था में श्रीमती जानकी जी को शिक्षा प्राप्त नहीं हो पायी यद्यपि उनका बचपन बड़े लाडप्यार से बीता। छोटी आयु में ही उनका विवाह श्री जमनालाल बजाज के साथ हो गया। इस कारण प्रारम्भ में पीहर पक्ष में एवं बाद में ससुराल पक्ष में भी जानकीजी को शिक्षा प्राप्त नहीं हो पायी। क्योंकि उस समय के राजस्थान अथवा राजपूताना में सामाजिक नियम सम्बन्धी अवधारणा में कठोर प्रतिबंध थे।

यद्यपि बचपन में शिक्षा के अभाव के बावजूद भी श्रीमती जानकी देवी ने अपने ससुराल प्रवास के द्वारा लिखना पढ़ना सीख लिया जैसा कि उल्लेखनीय है कि श्री जमनालाल बजाज गांधीजी के पाँचवें पुत्र के रूप में विख्यात हैं। फलस्वरूप श्रीमती जानकी देवी को घर में राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधियाँ

देखने को मिली एवं गांधीजी के यह स्पष्ट निर्देश थे कि रचनात्मक कार्य सम्बन्धी सभी कार्य पद्धतियों का प्रारम्भ सबसे पहले घर से करना चाहिए। इसलिये उस जमाने में पर्दा, गहने पहनना आदि बातों का त्याग करना सामाजिक दृष्टि से बहुत बड़े निर्णय हुआ करते थे। लेकिन श्रीमती जानकी देवी बजाज ने अपने शरीर के समस्त गहने पर्दा प्रथा आदि का त्याग कर खादी पहनना प्रारम्भ कर दिया। उस जमाने में खादी भी बहुत मोटी होती थी। इसलिये पहनने वाले को प्रारंभ में बहुत तकलीफ होती थी। श्रीमती जानकी देवी बताती हैं कि जब मैंने पहली बार अपने बच्चों को खादी पहनायी थी तो उनके शरीर पर छाले हो गए थे।

लेकिन इन समस्त व्यक्तिगत बाधाओं को छोड़कर श्रीमती जानकी देवी ने न केवल खादी पहनना प्रारंभ किया बल्कि अपने स्थानीय स्तर पर महिलाओं का एक संगठन बनाया। जिसमें सभी महिलाओं से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिये चंदा इकट्ठा किया जाता था एवं श्रीमती जानकी देवी के अनुसार सभी बहनों के लिये चरखा उपलब्ध करवाना ऐसे आदि कार्यों में श्रीमती जानकी देवी अत्यधिक व्यस्त रहती थी।

जब कांग्रेस के सभासद बनने की बात आई तब श्रीमती जानकीजी भी उसमें सक्रियता से जुट गईं। महिलाओं को घर–घर जाकर सदस्य बनाना शुरू कर दिया। इस कार्य से श्रीमती जानकी देवी बजाज को काफी परेशानियाँ भी हुई लेकिन सबसे अधिक सदस्य हरिजन मौहल्लों में ही बने। ये लोग राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रचार और अनेक कार्य किया करते थे। श्रीमती जानकीजी प्रत्येक शनिवार को एक सभा बुलाती थी उसमें सभी को कांग्रेस की बाते समझाती थी। इसी समय विदेशी कपड़ों की होली की बात सामने आई। जमनालालजी ने कहा कि गांधीजी कहते हैं कि विलायती कपड़ा राक्षस के रूप में अपने देश में पड़ा है। इस पाप को हिन्दुस्तान में से निकालना है। अपने घर में भी प्रयास रहे कि विलायती कपड़ा न बच पाये।

गांधीजी की बात का श्रीमती जानकीजी पर गहरा प्रभाव पड़ा। श्रीमती जानकी सोचने लगी कि इस काम को कहाँ से शुरु करू क्योंकि घर में, दुकान में, मंदिर में सभी जगह विलायती कपड़े पड़े हैं। लेकिन विलायती कपड़ों की होली का समय नजदीक आ गया। मानो यह श्रीमती जानकी देवी की परीक्षा की घड़ी थी। लेकिन वे इस परीक्षा में सफल हुई और बड़े पैमाने पर विलायती कपड़े की होली जलायी गई। जिसमें जमनालालजी के विवाह के विशेष कपड़े भी शामिल थे। इस प्रकार श्रीमती जानकी देवी बजाज ने स्वयं का राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रियता का परिचय दिया।

श्रीमती जानकी देवी गांधीजी की गिरफ्तारी के समय भी 15 मार्च, 1923 को जबलपुर के सफल झण्डा सत्याग्रह में शामिल हुई। श्रीमती जानकी देवी ने कलकत्ता जाकर मारवाड़ी समाज में राष्ट्रीय योगदान देने में सक्रिय भूमिका निभाई।

जब श्री जमनालालजी और गांधीजी जेल में थे उस समय भी जमनालालजी के पास बातें पहुँचने लगी कि बिहार के लोगों पर सरकार दमन चक्र चला रही है। इस कारण वे भी कष्ट में हैं लेकिन जब उन्हें मालूम होता है कि उनके आत्मीय लोग बाहर काम कर रहे हैं, तब उन्हें बड़ी खुशी होती है और उत्साह बढ़ाने के लिये वे उन्हें चिट्ठिया भेजते थे। एक पत्र में श्री जमनालाल ने श्रीमती जानकी देवी बजाज को लिखा कि कल तक तो तुम जमनालाल बजाज की पत्नी के रूप में जानी जाती थी लेकिन जब मैं जेल से छूटकर आऊँगा तब लोग कहेंगे कि देखो श्रीमती जानकी देवी के पति आये हैं। इससे श्री जानकी देवी को उत्साह मिला और वे फिर से अपने कार्य में सक्रियता से जुट गयीं। एक बार गांधीजी ने भी यरवदा जेल से श्रीमती जानकी देवी को पत्र लिखा, जो इस प्रकार थाः—

चि. जानकी बहन

तुम्हारा पत्र मिला! अब उत्साह क्यों न होगा? अब तो आप भाषण करती हो, अखबारों में नाम आता है। समय—समय पर जानकी बाई का नाम अखबारों

में देखता हूँ तब उससे ऐसा ही लगना चाहिए कि जमनालाल और हम जेल में ही रहे। मुझे तो विश्वास था कि तुम्हारे दिखाई देने वाले अविश्वास के पीछे पूरा आत्मविश्वास था। ईश्वर उसमें प्रगति करे।

बापू के आशीर्वाद!

इसके अलावा श्रीमती जानकी देवी ने सीकर एवं जयपुर में भी राष्ट्रीय आंदोलन की सक्रियता में योगदान दिया।

बजाज परिवार राजस्थान के सीकर का रहने वाला था। सीकर राजा, राव राजा, कहलाते थे। उनके अधिकार भी जागीरदारों से अधिक थे। यद्यपि बजाज परिवार वर्धा में बस गया था। फिर भी सीकर आना जाना रहता था और वहाँ उनका एक मकान भी थी। जो 'कमरा' के नाम से प्रसिद्ध था। वहाँ के सार्वजनिक कार्यों में भी बजाज परिवार एवं श्री जमनालाल बजाज का होता था। जमनालालजी की ओर से वहाँ एक दवाखाना एवं हरिजन स्कूल चलता था।

यद्यपि सीकर रावराजा एवं जयपुर राज्य में हमेशा मनमुटाव रहता था। एक बार तो अंग्रेज रेजिडेन्टों ने इसे और भी अधिक 'रंज' दे दिया और दोनों ओर से जमनालाल बजाज के पास पत्र भेजे गए कि आप आकर समस्या का समाधान करवायें। लेकिन जमनालालजी जयपुर प्रजामण्डल के अध्यक्ष थे। जयपुर राज्य को उनका, संस्था और कार्यकर्त्ताओं का बदला प्रभाव अच्छा नहीं लगता था। भीतर ही भीतर नाराजगी बढ़ती जा रही थी। एक बार जमनालालजी प्रजामण्डल कार्यकारिणी की बैठक हेतु जयपुर आ रहे थे। बैठक अकाल सहायता से सम्बन्धित थी। लेकिन सवाई माधोपुर में ही पुलिस के गोरे अधिकारियों ने जमनालालजी के जयपुर प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

इन्हीं बातों को लेकर जयपुर का प्रसिद्ध सत्याग्रह आंदोलन प्रारम्भ हो गया। इसमें करीब 500 स्त्री–पुरुषों ने भाग लिया। एक बार तो जमनालालजी की अनुपस्थिति के कारण श्रीमती जानकी देवी ने प्रजामण्डल आंदोलन की कार्यकारिणी की अध्यक्षता की और आंदोलन के लिये आवश्यक कार्य निर्देश

तैयार किए गए। इस प्रकार श्रीमती जानकी देवी बजाज ने राष्ट्रीय आंदोलन एवं रचनात्मक कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाई।

श्रीमती रामप्यारी बाई

सिरोही राज्य में हुए स्वतन्त्रता संग्राम एवं प्रजामण्डल आंदोलन में महिलाओं की अहम भूमिका रही। इस आंदोलन में प्रमुखतः रामप्यारी बाई, श्रीमती भगवती देवी, श्रीमती सविता देवी, कुसुम बाई, श्रीमती उमंग कंवर, मंगली बाई, दिवाली बाई, श्रीमती रूकमणी देवी, श्रीमती शांति देवी, श्रीमती हाँजी देवी, गुमरी देवी एवं श्रीमती गोकली बाई प्रमुख रही।

श्रीमती रामप्यारी बाई धर्मपत्नी श्री राजाधिराज श्री राजमलजी शाह ने छोटी बच्चियों का एक समूह अथवा एक संगठन बना रखा था जिसमें श्रीमती रामप्यारी अध्यक्षता करती एवं संगठन की कार्यसूची के अनुसार वे उन्हें आजादी के पाठ, आजादी के नारे एवं स्वतन्त्रता सम्बनी गीता सिखाती थी। जो प्रतिदिन या समय–समय पर प्रभात फैरियों के समय गाए जाते थे। शाम को होने वाले प्रजामण्डल सभाओं में भी यह गीत गाये जाते थे। इन गीतों में एवं कविताओं में प्रमुखतः श्री गोकुल भाई भट्ट द्वारा बताए गये गीत एवं श्री खुशालसिंहजी शाह उर्फ कालूजी द्वारा लिखे गीत होते थे।

श्रीमती रामप्यारी बाई इन राष्ट्रीय विचारों एवं भावनाओं से ओत–प्रोत गीतों के माध्यम से राष्ट्रीय जनजागरण अभियान चलाती थी। उसके बाद पीछे से पुरुष भी गाते थे। इन गीतों में मुख्यतः जिनके अंश क्रमशः–

महिलाएँ – हम काली काली काली हैं।
हम सफेद साड़ी वाली हैं।
हम प्रजामण्डल वाली हैं।
हम सिरोही की रहने वाली हैं।

पुरुष – हम काले काले काले हैं।
हम सफेद टोपी वाले हैं।

हम प्रजामण्डल वाले हैं।

हम सिरोही के रहने वाले हैं।

यद्यपि इन गीतों एवं कविताओं के पीछे प्रेरणा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आंदोलन की थी किन्तु फिर भी श्रीमती रामप्यारी बाई ने साहित्य के मायम से जनजागरण का कार्य किया जो कि ऐतिहासिक रहा। श्रीमती रामप्यारी बाई का मानना था कि साहित्य समाज का दर्पण होता है जो समाज से ऊर्जा ग्रहण करता है एवं उसे ऊर्जा प्रदान भी करता है चूंकि कविता गीत साहित्य के अभिन्न अंग होते हैं।

श्रीमती गोकली बाई

श्रीमती गोकली बाई धर्मपत्नी श्री पूनमचन्द पीताम्बर, हाथल, सिरोही रियासत के रहने वाली थी। इन पर राष्ट्रीय आंदोलन एवं गाँधीजी का गहरा प्रभाव पड़ा था। श्रीमती गोकली बाई राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित थे। इनकी प्रमुख सहयोगियों में सिरोही रियासत से प्रमुखतः श्रीमती रामप्यारी बाई रही।

सन् 1937 में श्रीमती गोकली बाई ने राष्ट्रीय विचारों से प्रेरणा पाकर बम्बई के विले–पार्ले की राष्ट्रीय शाखा को स्वाधीनता संग्राम के लिये 50,000/– रूपये का दान दिया था। जो उस समय एक बहुत बड़ी धनराशि होती थी। इसके पीछे श्रीमती गोकली की सोच यह रही कि वे राष्ट्रीय आंदोलन को तीव्र गति से आगे बढ़ता हुआ देखना चाहती थी। इसके अतिरिक्त भी श्रीमती गोकली बाई अनेक सामाजिक संस्थाओं को समय–समय पर चंदा देती रही हैं।

श्रीमती गोकुल बाई भट्ट ने एक लेख ''सिरोही का चेतना स्त्रोत'' में लिखा था कि जब 22 जनवरी 1939 को हम सतों (प्रजामण्डल के प्रमुख सदस्यों) को सिरोही के आजाद मैदान में सभा करते हुए गिरफ्तार कर लिया गया तो सिरोही नगरी के सभी अबला वृद्ध, सभी रंग दिखाने लगे, कोई घबराये नहीं, दबे नहीं बल्कि आंदोलन और भी तीव्र हो गया। कौन किसका मार्ग दर्शन करता, भीड़ में यह कुछ समझ नहीं आ रहा था। इस प्रजामण्डल

आंदोलन में महिलाऐं भी पीछे नहीं रही वो भी कंधा से कंधा लगाकर चल रही थी। इसी आंदोलन के दौरान महिलाओं ने एक नया तिरंगा झण्डा बनाया और सम्पूर्ण नगर को जयनादों से गुंजायमान कर दिया। प्रजामण्डल आंदोलन में जिन्दाबाद की आवाजें सिरोही दरबार की नींद हराम करने लगी। जुलूस, नारे दिनभर चलते रहे। साथ–साथ सरकारी दमनचक्र भी चलता रहा फिर भी प्रजामण्डल की स्थापना अर्द्धरात्रि को कर दी गई। श्री भट्ट के इस लेख से ज्ञात होता है कि सिरोही ही महिलाओं का भी प्रजामण्डल आंदोलन में कितना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

21 अक्टूबर, 1939 को जब सिरोही के भण्डार परगने में तिरंगा झण्डा फहराया गया तो उस झण्डे पर कब्जा करने के लिये गाँव के ठाकुर ने लाठिधारियों ने हमला बोल दिया। इस बिगड़ी हुई परिस्थितियों में श्रीमती गोकली बाई ने गांव के पुरुषों के साथ गांव की महिलाओं को भी संगठित कर ठाकुरों का विरोध करते हुए तिरंगे झण्डे की रक्षा की थी।

11 मई, 1946 को सिरोही राज्य प्रजामण्डल का तृतीय अधिवेशन शिवगंज में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन की सम्पूर्ण व्यवस्था का कार्यभार श्रीमती गोकली बाई ने संभाला एवं इस अधिवेशन की स्वागताध्यक्ष गंगा स्वरूप, श्रीमती मंगनी बाई, कुकु चौपड़ा को बनाया गया। श्रीमती मंगनीबाई के स्वागत भाषण का प्रकाशन ''स्वराज्य समिति शिवगंज अधिवेशन'' द्वारा करवाया गया।

सिरोही के रोहीड़ा ग्राम निवासी श्रीमती सावत्री बेन ने भी श्रीमती गोकली बाई के साथ कांग्रेस सेवादल गुजरात में कार्य करने के उपरान्त राष्ट्रपिता गांधीजी के महिला आश्रम, वर्धा में भी अपनी सेवाएँ प्रदान की।

अभिलेखागार कार्यालय, बीकानेर द्वारा जोधपुर के सूचना केन्द्र में लगाई गई एक प्रदर्शिनी में एतत् विषयक जानकारी (भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन में राजस्थान की महिलाओं का योगदान) हेतु बांटे गए आलेख प्रपत्र में विशेष रूप से उल्लेखित कर लिखा है कि सिरोही के राजनैतिक अधिवेशनों में महिलाओं

का स्थान अग्रगण्य रहता था। वे वहाँ पर अध्यक्षा एवं स्वागतायक्ष के लिये भी चुनी जाती थी तथा अधिवेशन की कार्यवाही में प्रमुख रूप से भाग लेकर महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास कराने में भागीदार होती थी।

श्रीमती सावत्री देवी भाटी

राजस्थान का स्वतन्त्रता आंदोलन भारत के अन्य राज्यों के स्वतन्त्रता आंदोलनों की अपेक्षा कुछ भिन्न प्रकार का था। क्योंकि यहाँ की प्रजा पूर्ण रूप से यहाँ के राजाओं, सामन्तों, जागीरदारों अथवा ठाकुरों द्वारा डाली गई गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई थी। ऐसी ही मनमाफिक परिस्थितियाँ जोधपुर रियासत में थी।

1942 में जब जोपुर मारवाड़ लोक परिषद द्वारा जिम्मेदार हुकुमत की मांग सम्बन्धी गतिविधियों में श्रीमती सावत्री देवी भाटी ने बढ़–चढ़कर भाग लिया साथ ही श्रीमती भाटी ने मारवाड़ में महिलाओं को लोकपरिषद् की कार्यकर्ता बनाने एवं उनमें देशभक्ति की भावना जागृत करने का कार्य किया। श्रीमती भाटी की इन गतिविधियों से नाखुश होकर सरकारी दमनचक्र अभियान ने उन्हें डराया धमकाया, लेकिन श्रीमती भाटी की गतिविधियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि वह और अधिक संघर्ष के साथ अपने कार्य में निरन्तर लगी रही। श्रीमती भाटी के इस आंदोलन में बहुत सारी महिलाएँ उनके साथ हो गई।

इससे पूर्व श्रीमती भाटी ने गाँधीजी से आशीर्वाद प्राप्त किया एवं 9 अगस्त, 1942 को गाँधीजी एवं अखिल भारतीय आंदोलन ''भारत छोड़ो'' बढ़ चढ़कर भाग लिया। परिणाम स्वरूप सरकारी दस्ता उनसे नाराज होकर 18 अगस्त, 1942 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया, साथ ही उन पर तीन आरोप लगाकर श्रीमती भाटी को तीन अलग–अलग सजाएं 6 माह एवं 3–3 माह की सुनाई गई। इस प्रकार श्रीमती भाटी 10 महीने एवं 16 दिन बाद जेल से रिहा हुई। जेल से रिहा होने के उपरान्त श्रीमती भाटी महिलाओं को संगठित करने एवं भावनात्मक परिवर्तन लाने का कार्य करती रही।

श्रीमती महिमा देवी

श्रीमती महिमा देवी का सम्बन्ध जोधपुर रियासत से था। श्रीमती महिमा देवी ने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं में अग्रणी रूप से सम्मिलित होकर भाग लिया इस कारण सरकार ने इन्हें सरकार विरोधी गतिविधियों के कारण 6 महीने की सजा सुनाई गई। श्रीमती महिमा देवी कि जब सजा पूरी होने आई तो जोधपुर के इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस ने एक गोपनीय पत्र क्रमांक एस.बी.सी./3723, 7 अगस्त, 1943 के द्वारा जोधपुर के प्रधानमंत्री से पूछा कि श्रीमती महिमा देवी जो सरकार विरोधी गतिविधियों के विरुद्ध सजा काट रही हैं उन्हें सजा पूरी होने के उपरान्त जेल से रिहा किया जाये अथवा नहीं?

इस पर प्रधानमंत्री ने उत्तरोत्तर पत्र क्रमांक डब्ल्यू.सी.ए.–सी/3875, 8 सितम्बर, 1943 को लिखा कि श्रीमती महिमा देवी जो कि पहले भी सरकार विरोधी सफल गतिविधियाँ कर चुकी है। जैसा कि आपको ज्ञात हो कि इस देश में स्वतन्त्रता का भूत सवार हो चुका है अतः मुझे नहीं लगता कि श्रीमती महिमा देवी जेल से रिहा होकर अपनी गतिविधियाँ बंद कर देगी। इस पत्र के कारण श्रीमती महिमा देवी को रिहा नहीं किया गया। परिणाम स्वरूप आंदोलन ने गति पकड़ी और जैसा कि गांधीजी ने भी 'करो या मरो' का नारा दिया था इस पर 26 जुलाई, 1942 को गंगादास व्यास की अध्यक्षता में एक आम सभा का आयोजन किया गया जिसमें श्रीमती सुशीला देवी ने अपने भाषण में कहा कि 'अंग्रेजी शासन इतना–इतना प्राणघाती हो गया कि सुशीला के एक मात्र व्यक्त विचार के कारण उस महिला सत्याग्रही के बच्चे का डॉ. ने ईलाज करने से मना कर दिया।' (वीर अर्जुन 30 जुलाई, 1942)

इस घटना के बाद श्रीमती महिमा देवी की अनुपस्थिति में श्रीमती सुशीला देवी ने और भी अधिक बुलन्द इरादों के साथ आंदोलन में सक्रिय हो

गई। राजपूताना विद्यार्थी कांग्रेस की भरतपुर में बैठक आयोजित की गई जिसकी कार्य समिति में श्रीमती सुशीला देवी को मंत्री पद पर चुना गया। दिनांक 3 अप्रैल 1947 को जोधपुर में एक मौन जुलूस असेम्बली के विरोध में निकाला गया जिसमें सरकार को काले झण्डे दिखाये गए। इस जुलूस में श्रीमती सुशीला देवी एवं श्रीमती महिमा देवी के अलावा सुश्री गौरी जोशी, गिरिजा व्यास, सावित्री देवी एवं सिरे कँवर व्यास आदि महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

श्रीमती गीता बजाज

राजस्थान के सीकर जिले के निमकाथाना के श्री माधोलाल चौधरी की पुत्री गीता बजाज का नाम महाशिवराशि के दिन 15 मार्च, 1919 को खण्डवा (मध्यप्रदेश) में हुआ। दो भाईयों और आठ बहनों के परिवार में वह चौथी सन्तान थी। नीम का थाना के स्कूल में तीसरी कक्षा तक पहुँचते ही 15 वर्ष की छोटी सी उम्र में गीता बजाज के हाथ पीले कर दिये गये थे। पति थे सीकर जिले के ही कांशी का बास नामक ढाणीनुमा गांव के श्री गिरधारीलाल बजाज के भतीजे और बीजराजजी बजाज के सबसे बड़े बेटे। गीता बजाज विवाह के बाद पति के साथ वर्धा गई जहाँ बापू (गाँधीजी) का आशीर्वाद और सान्निध्य प्राप्त हुआ। लेकिन विधाता को कुछ और ही मंजूर था। कोई दो ढाई वर्ष बाद ही पति की मृत्यु हो गई और 17 वर्ष की अल्प आयु में ही गीता बजाज को क्रूर नियति ने वैधत्व की ज्वाला में झौंक दिया। उस दारुण घड़ी में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का संवेदना संदेश गीताजी के जीवन में एक नई रोशनी लेकर आया। बापू के शब्दों ने उन्हें न केवल जीने की लालसा दी बल्कि जीवन में देश और समाज के लिये कुछ कर गुजरने की प्रेरणा और उत्कृष्ट इच्छाशक्ति भी। गाँधीजी ने लिखा था–

''चि. गीता जैसा तुम्हारा नाम है, वैसा ही तुम्हारा रहना हो, विधवापन और सध्वापन मन मर्जी की चीज है। मरना जीना किसी के हाथ में नहीं है, इसलिये शान्त रहो और अपने को सेवार्पण करो''।

गीताजी ने वैसा ही किया, पति विछोह के अपने रंज और गम को भूलकर उन्होंने अथक मेहनत कर अच्छी शिक्षा प्राप्त की। एक जवान अनपढ़ विधवा के मार्ग में जो विपदाएँ, कठिनाईयाँ और मुसीबतें आ सकती थी, वे आई, पर सभी का सामना करते हुए गीता बजाज अपना रास्ता स्वयं बनाते चली गई। पति को खोने के तीन महीने बाद उन्होंने उनकी निशानी एक पुत्री को जन्म दिया। ऐसे में पढ़ाई शुरू कर दी पर उनका शैक्षिक जीवन टूटता और जुड़ता रहा। बड़े भाई स्व. श्री गोपाल चौधरी उनका सम्बल बने। निराशा के घोर क्षणों में उन्होंने बहन को सहारा दिया, उसका मनोबल नहीं टूटने दिया। वनस्थली विद्यापीठ से आठवीं कक्षा पास की। बनारस से मैट्रिक और पिलानी से इण्टरमीडियट किया। 1942 के कांशी विश्वविद्यालय में बी.ए. में प्रवेश लिया ही था कि देश 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन गाँधीजी के नेतृत्व में प्रारम्भ हो गया। देश में आजादी के दिवानों ने ''करो या मरो'' का नारा गुंजायमान कर दिया। इसी समय काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. गेरोला के विद्यार्थियों को आह्वान किया ''स्वतन्त्रता के युद्ध में कूद पड़ों'' यह सुनकर गीता बजाज भी बैठी नहीं रह सकीं और आजादी के इस यज्ञ में अपने हिस्से की आहूति देने के लिये चल पड़ी। परिणाम वही हुआ जो होना था, बनारस विश्वविद्यालय से निष्कासन।

गीता बजाज के जीवन में राजनीतिक पृष्ठभूमि पहले से ही थी। पीहर की और पूज्य पिताश्री की उन्मुक्त विचारधारा और बापू के स्वतन्त्रता संग्राम से प्रभावित उनकी कार्यवृत्ति और अपने दोनों चाचा राजस्थान के ख्याति प्राप्त कर्मठ कांग्रेसी नेता और महात्मा गाँधी के सहयोगी स्व. रामनारायण चौधरी और स्वाधीनता सेनानी कप्तान दुर्गा प्रसाद चौधरी के देश प्रेम से आच्छादित साहसिक क्रिया–कलाप और दूसरी और ससुराल पक्ष से जुझारू व्यक्तित्व के धनी स्व. जमनालालजी बजाज। इस सबके साथ बापू की रचनात्मक कार्यवृत्ती के घनिष्ठ संयुक्ति। साथ ही साबरमति आश्रम, वनस्थली विद्यापीठ, हटूंडी और नारेली आश्रम और जयपुर राज्य प्रजा मण्डल के प्रभाव ने स्वतन्त्रता संग्राम में

तन और मन से कूद पड़ने की प्रेरणा दी। परिणाम की चिन्ता न करते हुए सन् 1947 के भारत छोड़ो आंदोलन में अंग्रेजी दास्ता से देश मुक्ति का बीड़ा उठाए स्व. बी.बी. कोहलकर, डॉ. राधेश्याम, स्व. सादिक अली, श्रीमती अरुणा आसफ अली और अन्य हस्तियों का साथ पाकर वह आजादी के संघर्ष में सक्रिय हो गई। श्रीमती गीता बजाज ने भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान महिला संगठन का कार्यभार सम्भाला एवं छिपकर रहते हुए भी क्रांतिकारी आंदोलनकारियों का आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से भरपूर सहयोग किया। लिबास और स्वरूप बदलकर (अधिकतर सिर पर साफा बांधे पुरुष वेश में) यह बहादुर और निर्भिक महिला आजादी के संग्राम में जुटी रही। आखिरकार श्रीमती गीता बजाज दिल्ली में पकड़ी गई और सजा मिली। सजा के रूप में गीता बजाज को लाहौर की काल कोठरी में बन्द कर दी गई एवं जेल में इन्हें अनेक प्रकार के अत्याचारों का सामना करना पड़ा। श्रीमती गीता बाजा की जेल से रिहाई के उपरान्त तपेदिक एवं आंत रोग से ग्रसित हो गई। इसी कार्य अवधि के दौरान देश आजाद हो गया। वर्ष 1948 में बनारस विश्वविद्यालय से बी.ए. पास किया।

श्रीमती गीता बजाज बीमारी की वजह से भुवाली और सैनेटोरियम अस्पताल में भर्ती रहीं। अन्त में जयपुर में आंतों का ऑपरेशन हुआ। इसके बाद उनका शरीर जर्जर हो गया था पर आत्मा और भावना सबल थी। डॉक्टरी सलाह पर जयपुर की बाहरी बस्ती मोती डूंगरी क्षेत्र में रही। निर्धन, पिछड़े हुए, संस्कारहीन, शिक्षा से अछूते, मिट्टी में लोटते, खेलते बच्चों ने आकर्षित किया। बापू के शब्द ''अपने नाम गीता के अनुरूप कार्य करो'' तो सदा तन मन में अंकित थे ही। अतः 1952 में गुरु पूर्णिमा के दिन बालकों के लिये बाल शिक्षा मंदिर की स्थापना की। अन्य स्वाधीनता सैनानियों की तरह देश की आजादी के साथ गीता बजाज को एक मंजिल तो मिल गई थी पर उनका सफर जारी रहा। अपनी दूसरी मंजिल की तरफ निःस्वार्थ शिक्षा के माध्यम से देश और समाज की सेवा की।

शिक्षा सेवा का संचालन उन्होंने गाँधीजी के आदर्श और सिद्धान्तों के अनुरूप किया। शिक्षा का माध्यम भी राष्ट्रभाषा हिन्दी को रखा। देश और समाज की सेवा के बदले में उन्होंने किसी से कुछ नहीं चाहा। उम्र के साथ–साथ रोग से कमजोर और कुछ अति निकटजनों के आकस्मिक निधन का सदमा तो वे किसी तरह सह गई पर नियति का क्रूर खेल उनके मस्तिष्क की नस फटने से 3 अगस्त, 1915 को उनकी मृत्यु हो गई।

श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत

राजस्थान में बहुपत्नी प्रथा के प्रचलन के साथ ही बढ़ते विवाहों की संख्या ने समृद्ध व सुविधायुक्त राजपरिवार वर्ग द्वारा अपने महलों में एक विशेष स्थान जनानी ड्योढी, रनिवास, रवला या अन्तःपुर नाम से बनाना मध्यकालीन राजस्थानी संस्कृति का एक अभिन्न अंग ही नहीं बल्कि पर्याय बन गया था। स्त्री मर्यादित रहे, पर्दे में ही सम्मानजनक हो सकती है, परिवार की प्रतिष्ठा की धुरी है। जैसे आदर्श वाक्यों ने इस वर्ग की नारी को कितना एकाकी व बन्धनयुक्त कर दिया था, इसका गवाह इतिहास है। उसके स्वच्छन्द उड़ान की एक मात्र आधारशिला– शिक्षा भी केवल व्यवहारिक शिक्षा तक सीमित रह गई थी किन्तु धीरे–धीरे 19वीं–20वीं शताब्दी के चिन्तकों, धर्म सुधारकों तथा नव विचारों से सराबोर होने वाले पुरुष वर्ग की कुछ उदारता ने नारी की स्थिति पर कुछ प्रभाव डाला। आधुनिक कहे जाने की होड़ ने राजाओं, महाराजाओं ने अपनी पुत्रियों की शिक्षा–दीक्षा पर ध्यान देना प्रारम्भ किया। रनिवास जाने में ही सही, अंग्रेजी व संस्कृत पढ़ाने के लिये शिक्षकों की नियुक्ति की जाने लगी। अंग्रेजीयत के प्रभाव में नारी की मर्यादा का प्राचीन अर्थ नवीन अर्थ धारण करने लगा और महत्वकांक्षा का दम भरने लगा।

ऐसी ही एक महत्वकांक्षी महिला की ऊँची उड़ान और धरातल की पकड़ दोनों देखने को मिलती है। जिसका नाम है रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत। पिता रावत विजयसिंह, मेवाड़ (उदयपुर) का भीष्म पितामह कहे जाने वाले राव चूण्डा के वंशज थे व माता झाली नंदकवरी जो देलवाड़ा (आबू) के राज राणा

झाला जालिमसिंह की पुत्री थी। जिनके वंशज खानवा युद्ध में राणा सांगा के साथ लड़कर वीरगति को प्राप्त हुए थे। दोनों पक्षों की ओर से ओज, तेज, स्वाभिमान व महत्वकांक्षा इन्हें विरासत में मिली थी। पिता चूंकि आधुनिक परिवेश से प्रभावित थे इसलिये पर्दे के प्रचलन के बावजूद पुत्री लक्ष्मी के लिए अंग्रेजी व संस्कृत भाषा पढ़ाने के लिये शिक्षकों का प्रबंध किया।

शस्त्र व घुड़सवारी विद्या भी सिखाई गई। बचपन से ही साहित्य व इतिहास के कलेवर से ओत प्रोत ''बात'' सुनने व उसके मरम को पहचानने के लिये मनन करना प्रारम्भ कर दिया। प्रशासनिक बारीकियां भी पिता के संग रहते हुए जानी। दैनिक वर्तमान, चाँद तथा हफ्तेवार–भविष्य जैसी पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादकीय पृष्ठों को पढ़कर सामाजिक चेतना व क्रांतिकारी विचारों से उद्वेलित होती रही।

1934 में बीकानेर राज्य के खास के खास चार ताजीमी ठिकानों में से एक ठिकाना रावतसर के रावत तेजसिंह के साथ इनका विवाह हुआ। उन्हें पूरी तरह पर्दे में रहना पड़ा। परन्तु सौभाग्य से पति तेजसिंह के प्रगतिशील विचारों ने लक्ष्मीजी को पाठ्य सामग्री व लेखन सामग्री उपलब्ध करवायी। लक्ष्मीजी की महत्वकांक्षा परवान चढ़ने लगी। छुटपुट लेख लिखने प्रारम्भ किए। चिट्ठी के माध्यम से नामी विद्वानों से सम्पर्क जुड़ा। महात्मा गाँधी से मिलने शिमला गई। उन दिनों अजमेर सीधा ब्रिटिश नियंत्रण में था, राजपूताने की रियासतों का शरणस्थली बना हुआ था। देशी रजवाड़ों की तुलना में अजमेर में पर्दे का चलन कम था। अन्ततः लक्ष्मीजी ने यहाँ रहकर कार्य करने की ठानी। यहाँ रहते हुए कई समाज सुधारकों व राजनीतिज्ञों से सम्पर्क हुआ। 1947 में देश की आजादी के साथ ही कुछ खास करने के इरादे से रानीजी सामाजिक, राजनीतिक व साहित्य के क्षेत्र में कूद पड़ी। 1955 में विधानसभा का चुनाव लड़ा। आप ऐसी पहली महिला राजपूत हैं, जिसने सक्रिय राजनीति में कदम बढ़ाकर अन्य महिलाओं का मार्ग प्रशस्त किया। इतना ही नहीं 11 वर्षों तक विधानसभा में सभापति के रूप में सक्रिय भूमिका निभाई। सर्वोपरी क्षण उनके

जीवन का वह सुखद अवसर था। जिसमें इनके राजस्थान को ही नहीं राजस्थानी भाषा की अनमोल वकालात के पारितोषिक रूप में राष्ट्रपति द्वारा इन्हें पद्मश्री की पदवी प्रदान की गई।

1958 ई. में हिरोशिमा में विश्व शांति सम्मेलन में एकत्रित हुए दुनिया के डेलिगेट्स में से श्रद्धांजली देने के लिए रानीजी को चुना गया। 1970 में न्यूर्याक के निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया। अमेरिका की शिकागो विश्वविद्यालय में राजस्थान के वस्त्र आभूषण पर अपना व्याख्यान देकर अपने राजस्थान के प्रति लगाव व निष्ठा को प्रदर्शित किया।

इतना ही नहीं राजस्थान में शांति एकजुटता परिषद और भारत मैत्री संघ जैसी संस्थाओं की स्थापना की व इनकी अध्यक्ष बनी। विदेश भ्रमण की श्रृंखला इतनी लम्बी रही की सारगर्भित बात यही कही जा सकती है कि भारत के निकट पड़ौसी राज्य, एशिया का सबसे बड़ा देश रूस, यूरोप के बड़े–बड़े महानगरों से अनुभव प्राप्त करके उसे संस्मरणों के रूप में लिखकर राजस्थानी साहित्य को समृद्ध किया। वह शायद परिवार से सदैव जुड़ी रही। सम्पन्नता में जीती रही, परन्तु जनमानस को उन्होंने कभी नहीं बिसराया। आम आदमी के संघर्ष को उन्होंने सदैव याद रखा। सदन में राजनीति की चादर ओढ़कर भी उन्होंने उनकी पीड़ा–निवारण के लिये निरन्तर आवाज बुलन्द की। नारी सशक्तिकरण की सजीव मूर्ति होकर उन्होंने सदन में रहते हुए ऐसे मूल बिन्दू उठाये जिनका लाभ बाद में मिला।

जीवन बीमा निगम में औरतों को कम आंकना, मजदूरियों को कम वेतन दिया जाना। बैंकों में पिता के होते हुए माता के संरक्षक बनने पर रोक जैसी बातें उन्हें चुभती थी। इसके लिए निरन्तर संघर्ष किया। इतना ही नहीं वतन की सुरक्षा के लिये जान न्यौछावर कर देने वाला सैनिक भी उनकी नजर से छुटा नहीं। उसके वेतन वृद्धि की मांग यह दर्शाती है कि वास्तव में वे जनमानस की सशक्त कड़ी थी।

राजनैतिक जीवन जीते–जीते उन्हें यह अनुभव हो चुका था कि सच्ची सेवा साहित्य रचना में है। ऐसा साहित्य जो अपनी भाषा में, लोकोक्तियों में हो, लोक वातावरण में हो, लोक जीवन के विभिन्न पहलुओं में हो। लोक संस्कृति का वर्णन, तीज त्यौहारों का उल्लेख उन्होंने एक आम नारी के रूप में किया। जिसमें रीति–रिवाज, परम्पराएँ, उन्होंने चुनौतियों, श्रृंगार रस का वर्णन एक चल चित्र की भांति आंखों के समक्ष तैरने वाला किया।

इतना ही नहीं उन्हें प्रकृति की चितराम व संगीत की महिमा कर्ती भी कहा जा सकता है। सच तो यह है कि ऊँचे–ऊँचे गढ़ पर बने महलों से लेकर घास–फूंस की झाड़ियों तक का साहित्यिक सफर लगभग 220 पुस्तकों के रूप में आपने इतनी तन्मयता से पूरा किया कि पता ही नहीं चला। एक सुविधायुक्त परिवार की महिला कब जन संस्कृति का दर्पण बन गई। आज वे हम सबके लिए लोक संस्कृति की जीती जागती तस्वीर ही नहीं, एक संस्था है।

श्रीमती विमला देवी

शेखावाटी क्षेत्र के निवासी कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी की पत्नी श्रीमती विमला देवी ने भी राजनीतिक जनजागृति के माध्यम से स्वाधीनता आन्दोलन को गति प्रदान की। दैनिक नवज्योति की रीति–नीति के बारे में वे कप्तान साहब को निरन्तर सलाह देती रही। कप्तान साहब जब जेल गए तो स्वयं ने ''दैनिक नवज्योति'' का दायित्व अपने ऊपर लेकर उसकी ज्योति को प्रज्ज्वलित किया। इसके लिए इन्हें भयंकर कठिनाइयों का सामना करन पड़ा। यहाँ तक कि सारा जेवर बिक गया, एक वक्त के खाने के लाले भी पड़ गए, लेकिन अपने अदम्य साहस और धैर्य से आजादी की कलम को बचाएं रखा। यह राजस्थान के स्वाधीनता के इतिहास में और विशेषकर स्वतंत्र प्रेस के इतिहास का गौरव है।

श्रीमती अंजना देवी चौधरी

श्रीमाधोपुर में जन्मी श्रीमती अंजना देवी का सन् 1911 में नीमकाथाना के श्री रामनारायण चौधरी से विवाह हुआ, अनेक सामाजिक परिवेश पूर्ण कठिनाइयाँ झेलते हुऐ उनके पति ने उन्हें अक्षर ज्ञान कराया। यह एक कठिन कार्य था क्योंकि उस समय यह मान्यता थी कि पढने़ वाली लड़कियाँ जल्दी विधवा हो जाती हैं। सन् 1920 में अंजना देवी की महात्मा गाँधी से भेंट हुई तथा इसके बाद वे अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर देश सेवा हेतु जुट गई। उन्होंने पत्रकारिता की रीति–नीति में अपने पति को महत्वपूर्ण सहयोग दिया। अजमेर से नीमकाथाना तक समाचार–पत्र, सूचनाएँ, पोस्टर्स आदि लाकर बांटना उस समय देशद्रोह का अपराध माना जाता था, जिसे अंजना देवी ने किया। कई बार उनकी तलाशी ली गई और उनकी सामग्री को जब्त कर लिया गया। बिजौलिया एवं बेंगूँ किसान आन्दोलन के दौरान इन्होंने सत्याग्रही किसान महिलाओं का मार्गदर्शन किया तथा सन् 1932 से सन् 1935 तक राष्ट्रीय सत्याग्रह आन्दोलनों के अवसर पर दो बार जेल गई। सन् 1938 में प्रजामण्डल की स्थापना के बाद ये गाँधी जी के रचनात्मक कार्यों से जुट गई तथा अपनी देवरानी श्रीमती विमला देवी के साथ मिलकर दक्षिण राजस्थान में आदिवासी जनजागृति के कार्य में योगदान दिया।

श्रीमती कमला देवी

राजस्थान की महिलाओं ने भी पत्रकारिता जैसे क्षेत्र के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाया। सन् 1939 में श्रीमती कमलादेवी ने जयपुर से प्रकाशित पत्र 'प्रकाश' का संपादन–प्रकाशन किया। इन्हें राजस्थान की किसी साहित्यिक पत्रिका की पहली महिला संपादक माना जाता है। अपने पहले संपादकीय में ही इन्होंने महिलाओं की शोचनीय स्थिति के सम्बन्ध में लिखा और स्वाधीनता आन्दोलन में महिलाओं को सक्रिय योगदान के लिए आह्वान किया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का राजस्थान में काफी प्रभाव रहा। असहयोग आन्दोलन से लेकर भारत छोड़ों आन्दोलन तक लगभग समस्त आन्दोलनों में इस क्षेत्र की महिलाओं ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों की महिलाओं की आंदोलन में भागीदारी अत्यन्त उत्साहवर्धक थी। जहाँ एक ओर शहरी क्षेत्र की महिलायें जुलूस निकालने, खादी कार्यक्रम, विदेशी वस्त्रों की होली जलाने आदि कार्यक्रमों में भाग लेती थी, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण महिलाएं जंगल सत्याग्रह में भाग ले रही थीं।

महिलाओं ने आन्दोलन के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं का भी डटकर मुकाबला किया। इनके सम्मुख तो समस्याओं का अम्बार ही लगा हुआ था। पुरूष वर्ग में कई ऐसे भी थे जो घर से बाहर निकल कर नारे लगाने वाली, जेल जाने वाली, तथा शराब की दुकान में पिकेटिंग करने वाली महिलाओं को अच्छा नहीं समझते थे। इन समस्याओं के अलावा इन्हें पारिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इन महिलाओं को उस समय आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता जब इनके पति जेल में डाल दिये जाते। फिर भी हजारों प्रकार की मुसीबतों का सामना करते हुए महिलाओं ने देश की आजादी में अपना सहयोग दिया।

निःसंदेह गांधीजी की प्रेरणा से राजस्थान की महिलाओं में जो जागृति आई वह अभूतपूर्व थी। पुरूष प्रधान समाज के बंधनों के बावजूद उन्होंने जिस त्याग और निष्ठा से सत्याग्रह किया, जेलों में रही तथा पुलिस अत्याचार का सामना किया वह इनके साहस और शक्ति का प्रमाण था। गांधी जी ने जिस उत्साह का संचार इन महिलाओं में किया उससे ये सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में आगे बढ़ती गई। अनेक महिलाओं ने अपने पतियों के साथ राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया। पुरूषों के समान राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर इन्होंने महिला उत्थान तथा महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में गांधी दर्शन के प्रभाव को सार्थक कर दिया।

उपसंहार

सन् 1905 में बंग–भंग के पश्चात् देश में राजनीतिक जागृति का जो दौर आया, राजपूताना भी उससे अछूता नहीं रहा। प्रथम महायुद्धोपरान्त महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति में आगमन हुआ। तत्पश्चात् असहयोग आन्दोलन और अन्ततः सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के फलस्वरुप उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों के माध्यम से राजस्थान के राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन में भी जागृति आई। राजस्थान में महिलाओं ने इस जन जागृति में अत्यन्त की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। समाज की वेदना और संत्रास को वाणी देने तथा दमन और अत्याचारों के विरुद्ध आवाज बुलन्द करने एवं जन कल्याण की दिशा में मार्गदर्शन करने में प्रदेश के कर्त्तव्यनिष्ठ महिलाओं ने सदैव अपने साहस और दायित्व बोध का परिचय दिया। इसी का समीचीन एवं समुचित मूल्यांकन करने का प्रयत्न प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में किया गया है।

राजस्थान जैसा अपेक्षाकृत पिछड़ा राज्य, जो विभिन्न रियासतों में बँटा हुआ था तथा जहाँ सामन्ती अत्याचारों का सिलसिला बराबर चलता रहा था, न केवल राजनीतिक दृष्टि से वरन् सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से भी बहुत पिछड़ा हुआ था। सदियों से चली आ रही रुढ़िवादी प्रथाओं और अन्धविश्वासों ने यहाँ की धरती में गहरी जड़ें जमा ली थी। पर्दा प्रथा, बाल–विवाह आदि अनेक अनिष्टकारी कुरीतियों ने समाज के अधिकतर लोगों को, विशेषकर स्त्रियों को शुद्ध हवा में श्वास लेने का मौका ही नहीं दिया। अतः एक राष्ट्र का प्रत्यय समझाने, राष्ट्रीयता की भावना जगाने तथा राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने के लिए पहली आवश्यकता थी सामाजिक पुनरुत्थान करने की। सांस्कृतिक नव जागरण के लिए और समाज में व्याप्त त्रुटिपूर्ण और विकृत परम्पराओं के निष्कासन के लिए राजनेताओं ने कई आंदोलन चलाए। ऐसे आंदोलनों में यहाँ आर्य समाज का प्रभाव सबसे अधिक

रहा। आर्य समाज आंदोलन ने नारी शिक्षा, नारी की समानता, अछूतोद्धाार आदि में अपना अमूल्य योगदान किया। छुआछूत को मिटाने के लिए गाँधीजी द्वारा चलाए गए आन्दोलनों का असर भी राजस्थान में पडने़ लगा। दूसरी तरफ यहाँ आर्थिक शोषण के विरुद्ध कृषकों ने भी अपने आन्दोलन छेड़ दिए थे।

राजपूताना के निवासी सामान्यतः अन्धविश्वासी, रुढ़िवादी एवं पुरातनवादी थे तथा समाज में अनेक कुरीतियाँ व्यापक रूप से व्याप्त थी। इनमें सती प्रथा, समाधि, डाकन प्रथा, कन्यावध, दास–दासी प्रथा, त्याग प्रथा आदि प्रमुख थी। समाज में स्त्रियों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। उनमें पर्दा, निरक्षरता, बाल व अनमेल विवाह, बहुविवाह एवं लड़कियों के क्रय–विक्रय की स्थिति बनी हुई थी। विवाह व मृत्यु के अवसर पर लगभग सभी जातियों में अत्यधिक धन का व्यय होता था जिससे उन पर सदैव आर्थिक संकट बना रहता था।

दास प्रथा भी 20वीं शताब्दी में राजस्थान में एक प्रमुख सामाजिक कुरीति के रूप में विद्यमान थी। इस वर्ग की स्थिति तत्कालीन समाज में काफी शोचनीय थी। इस वर्ग का एकमात्र जीवन लक्ष्य अपने मालिकों को प्रसन्न रखना एवं उनके आदेशों का पालन करना बन गया था। इन्हें गोला–गोली, दावड़ी, वड़ारन, दरोगा, चाकर, हजूरिया, दास, खानजादा, चेला आदि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता था। सन् 1921 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में घरेलू दास–दासियों की संख्या 1,60,755 थी जिनमें आधे ऐसे दास थे जिनका जन्म ही अपने मालिकों के घरों में हुआ था।

यहाँ राज्य में बहुत से दास–दासी है, जिन्हें हुजूरी या दरोगा कहते हैं। राज्य परिवार के हाथों इनकी बड़ी दुर्गति हो रही है। उन्हें सम्पत्ति की भाँति अपनी मिल्कियत समझा जाता है। गुजारे के लिए प्रति व्यक्ति मासिक 4 रुपये मिलता है और रात–दिन नौकरी ली जाती है। दम मारने को भी फुर्सत नहीं

मिलती। ऐसी दशा में गुजारा हो तो कैसे हो। वे दूसरी जगह नौकरी कर नहीं सकते।

लड़कियाँ ज्यों–ज्यों बड़ी होती है अपने मालिक या मित्रों की विषय–वासना पूरी करने के लिए रख ली जाती हैं। वे उन्हें बेच या दूसरों को नजऱ भी कर देते हैं। अनियमित रूप से पैदा होने के कारण ये लोग तरीके से कानूनी शादी करने की माँग भी नहीं रख सकते। एक वैश्या को कुछ अधिकार मिले हुए होते हैं परन्तु एक दरोगिन को ये भी नहीं होते। यहाँ तक की कानून भी उनके विवाहों को जायज स्वीकार नहीं करता। मालिकों की मर्जी पर एक विवाहित दरोगिन भी अपने पति के कुटुम्ब से हटाई जा सकती है।

दास प्रथा के अलावा निःशुल्क श्रम अथवा बेगार की कुप्रथा भी तत्कालीन समाज में विद्यमान थी। अपने आरम्भिक स्वरूप में यह प्रथा यद्यपि स्वैच्छिक थी लेकिन कालान्तर में शासकों एवं जागीरदारों ने इसे हर समय की और जबरदस्ती की चीज बना डाली। धीरे–धीरे उनके नौकर–चाकर भी अपने को बेगार लेने के हकदार समझने लगे। जागीरदार लोग परम्परागत रूप से मुफ्त सेवाएं लेने लगे। ब्राह्मण और राजपूतों के अलावा बाकी अन्य जातियों को बेगार देनी पड़ती थी। चमार, माली, नाई, खाती तथा अन्य ऐसे लोगों से बिना कुछ दिए बेगार में आटा पिसवाना, पानी भरवाना, लकड़ी फड़वाना, ठिकाने के कागजों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना, घोड़ों व ऊंटों के लिए चारा मँगवाना आदि अनेक काम करवाये जाते थे। जागीरदार के यहाँ शादी–गमी में तो ऊँची जातियों से भी कई प्रकार की बेगार ली जाती थी। बेगार न देने पर सरेआम बेइज्जत करना, गढ़ में बुलवाकर या उसके घर पर उसको जूते से पिटवाना, मुर्गा बनाकर धूप में खड़ा करना आदि मामूली बातें थी।

महात्मा गाँधी, जिन्हें लोग प्यार से बापू कहते हैं, भारतीय राजनीतिक मंच पर सन् 1919 से सन् 1948 तक इस प्रकार छाए रहे कि इस युग को भारतीय इतिहास का गाँधी युग कहा जाता है। गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने

रचनात्मक कार्यक्रम को बहुत बढ़ावा दिया। वह केवल राजनैतिक स्वतंत्रता ही नहीं चाहते थे अपितु जनता की आर्थिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति चाहते थे। इस भावना से उन्होंने श्ग्राम उद्योग संघ्य, श्तालीमी संघ्य और श्गौ रक्षा संघ्य बनाए। उन्होंने समाज में शोषण समाप्त करने के लिए भूमि का समाजीकरण ही नहीं माँगा अपितु आर्थिक क्षेत्र के विकेन्द्रीकरण द्वारा इस प्रश्न को हल करना चाहा। खादी उनके आर्थिक कार्यक्रर्म की प्रतीक थी। सामाजिक सुधार के लिए भी गाँधीजी द्वारा अनेक प्रयत्न किए गए। उन्होंने जन्म, जाति, धर्म और धन आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार की असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास किया। अछूतों के उद्धार के लिए कार्य किया और उन्हें हरिजन (ईश्वर के लोग) की संज्ञा दी। नशाबन्दी के लिए और हिन्दु–मुस्लिम एकता के लिए भी उन्होंने अनेक प्रयत्न किए।

महिला जागरण में महात्मा गांधी के विचारों ने, महिला समाज को गति देने में उत्प्रेरक का काम किया। गांधी जी चाहते थे कि महिला शक्ति का उपयोग देश सेवा के लिए हो। गांधी जी ने उनकी आत्मा को सच्चे अर्थों में पहचाना। वे महिलाओं को त्याग, सहनशीलता, विनम्रता, श्रद्धा और विवेक की प्रतिमूर्ति मानते थे। उन्होंने जगह–जगह घूमकर महिलाओं तक स्वतंत्रता, समानता और नवजागृति का संदेश पहुँचाया। साथ ही उनका भारतीय स्वरूप भी अक्षुण्ण रखा। उन्होंने महिलाओं को उनके अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया तथा उनके आत्मविश्वास को प्रबल किया। उन्होंने परिवार भावना से बढ़कर व्यापक सामाजिक भावना के विकास के लिये प्रत्येक महिला के मानसिक विकास को आवश्यक माना और साथ ही विश्व भावना तक उसका प्रसार चाहा। इसके लिये उन्होंने भारतीय महिलाओ की प्रगति को अवरूद्ध करने वाली समस्त सामाजिक कुरीतियों पर करारी चोट ही नहीं की बल्कि उनके मार्ग की बाधाओं को दूर करने के लिये अपनी पूरी शक्ति लगा दी।

गांधी जी के जीवन का महत्वपूर्ण कार्य महिलाओं का उद्धार करना था। समाज के क्षेत्र में उनकी सबसे बड़ी सेवा महिलाओं के प्रति परम्परागत स्वरूप

में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना था। महिलाओं के मन में बहुत कुछ कर गुजरने के लिये जोश व शक्ति थी, परन्तु संगठन के अभाव में वे अपने हृदय के भावों को कार्य रूप में परिणित नहीं कर पा रही थीं। गांधी जी ने उनके जोश और उत्साह को एक सूत्र में पिरोकर उनमें दृढ़ इच्छा शक्ति तथा संगठन की भावना उत्पन्न की।

भारतीय महिलाओं में सत्याग्रह की भावना उत्पन्न करना गांधी जी का प्रधान लक्ष्य था। वे जानते थे कि महिलाएं बहुत अच्छी सत्याग्रही हो सकती थी। महिलाओं के संदर्भ में सत्याग्रह की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा था ' महिला की कोई रक्षा करने वाला नहीं है। वह खुद ही अपनी रक्षा कर सकती है। वह स्वावलम्बी बन सकती है या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर अन्त में यही निकलता है कि हॉ। यदि वह सत्याग्रह सीख ले तो पूरी तरह स्वतंत्र और स्वावलम्बी बन जाए।'' उन्होंने देश के नगरों एवं गांवों में घूम–घूमकर महिलाओं तक स्वतंत्रता, समानता और नवजागृति का संदेश पहुँचाया तथा उनके अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया। गांधी जी के विचारों का राजस्थान की महिलाओं पर विशेष प्रभाव पड़ा। महिलायें संगठित होकर प्रभात फेरी के माध्यम से जन–जागृति का कार्य करने लगी तथा घर–घर जाकर खादी का प्रचार करने लगी। राजस्थान में हरिजनोद्धार के कार्य में वे सहयोग प्रदान कर रही थीं। इस प्रकार गांधी जी के सत्याग्रह संबंधी विचारों का प्रभाव देश के अन्य भागों की महिलाओं के साथ साथ राजस्थान की महिलाओं पर भी पड़ा।

गांधी जी ने महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों की वकालत दो बिन्दुओं पर की। प्रथम यह कि महिलाएं पुरूषों से किसी तरह कम नहीं थी, अपितु कई मामलों में पुरूषों से श्रेष्ठ थीं। द्वितीय यह कि महिलाओं के राजनीति में आने से निश्चित रूप से महिला सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त होगा। उन्होंने महिलाओं में सत्य और अहिंसा के पालन का गुण देखा था। यही कारण है कि वे उनको राजनीति में सक्रिय कर स्वाधीनता आन्दोलन को सफल बनाना

चाहते थे। गांधी जी स्वाधीनता आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी के पूर्ण पक्षधर थे। वे महिलाओं की सभाओं में अपने भाषणों में, आन्दोलन में उनकी भागीदारी अनिवार्य बताते थे। साथ ही उन्हें यह कहकर प्रेरित करते थे कि देवियों और वीरांगनाओं की तरह आन्दोलन में उनकी अपनी अलग भूमिका थी और उनमें इस भूमिका को निभाने की शक्ति और हिम्मत भी थी। उन्होंने महिलाओं को विश्वास दिलाया कि आन्दोलन को उनके महत्वपूर्ण सहयोग की आवश्यकता थी।

इसमें संदेह नहीं कि भारतीय महिलाओं के संबंध में गांधी जी के विचार एवं महिला शक्ति के संबंध में उनका दर्शन समयानुकूल था। उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनके प्रयासों से समाज में व्याप्त अनेक बुराईयां जैसे बालविवाह, सती प्रथा तथा अंधविश्वास समाप्त हो रहे थे। ब्रिटिश शासन की शिक्षा नीति का लाभ भी अपेक्षाकृत कम महिलाओं को मिल रहा था। फिर भी गांधी जी की तुलना में ये सब कार्य महिलाओं पर दया करने जैसे थे। उनकी सुप्त शक्ति को जागृत करने का कार्य गांधी जी ने ही किया। जिस प्रकार उन्होंने महिलाओं में आत्मत्याग, सहनशीलता और दृढता के गुण देखे तथा महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने हेतु प्रेरित किया, वह एक प्रकार का चमत्कार ही कहा जा सकता है। उनकी प्रेरणा से महिलाओं में तीव्र गति से परिवर्तन होने लगे।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान महात्मा गांधी के आह्वान पर महिलायें राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिये उठ खड़ी हुई। घर का मोर्चा हो या राजनीति का रणक्षेत्र महिलाओं ने जिस साहस, सहिष्णुता और उत्साह से स्वतंत्रता संग्राम में अपनी भूमिका निभाई वह इतिहास की अमूल्य धरोहर है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने महिलाओं को एक मंच प्रदान किया। इन महिलाओं को संगठित एवं उत्साहित कर एक लक्ष्य गांधी जी ने प्रदान किया। 1920 में गांधी जी द्वारा चलाये गये असहयोग आंदोलन से महिलाओं को एक नयी

दिशा मिली। 1930 में गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम सविनय अवज्ञा आन्दोलन एवं 1942 में चलाये गये भारत छोड़ों आन्दोलन में भी महिलाओं ने तन–मन–धन से पूर्ण सहयोग दिया। उन्होंने संगठित रूप से कर्तव्य के प्रति समर्पित होकर सक्रियता से आन्दोलन में भाग लिया और अनेक यातनाओं को सहते हुए उस समय राजनीतिक कार्यक्षेत्र की बागडोर संभाली जब नेताओं को ब्रिटिश सरकार ने शिकंजों में जकड़कर रखा था।

जिस समय सम्पूर्ण राष्ट्र स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रवाह में बह रहा था राजस्थान उससे कैसे अछूता रहता? राष्ट्रीय आन्दोलन के समय इन महिलाओं ने खादी का प्रचार, विदेशी वस्त्रों की होली जलाना, विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दुकानों के समक्ष धरना देना आदि कार्यों में भाग लिया। स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का राजस्थान में काफी प्रभाव था। असहयोग आन्दोलन से लेकर भारत छोड़ों आंदोलन तक इस क्षेत्र की महिलाओं ने उत्साह से भाग लिया। तथा कथित रूप से पिछड़े हुए इस क्षेत्र की महिलाओं की भूमिका स्वाधीनता आन्दोलन में अति महत्वपूर्ण थी क्योंकि उन्नत क्षेत्र की महिलाओं की अपेक्षा पिछड़े हुए क्षेत्र की महिलाओं का स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेना या स्वाधीनता आन्दोलन में भाग ले रहे अपने परिवार के पुरूष सदस्यों को पूर्ण सहयोग देना निश्चित ही एक उल्लेखनीय उपलब्धि मानी जायेगी। निःसंदेह स्वाधीनता आन्दोलन में राजस्थान की महिलाओं का योगदान एवं उनका प्रभाव सराहनीय माना जायेगा और यह कहा जा सकेगा कि इस अंचल की महिलाओं ने पुरूषों की बराबरी कर नारी जागरण को और स्वाधीनता आन्दोलन को सार्थक कर दिखाया।

यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान में महिलाओं पर अनेक प्रकार के सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिबंध थे। आदिवासी बहुल क्षेत्र होने के कारण यहां की महिलाओं में शिक्षा का प्रसार भी अपेक्षाकृत कम था। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं जिस प्रकार एकजुट होकर प्रभात फेरी निकालती थी तथा चरखा चलाकर अपने परिवार का पोषण करती थीं उससे महिला सशक्तिकरण

की धारणा बलवती होती है। इतना ही नहीं जंगल सत्याग्रह तथा विदेशी वस्त्रों की दुकानों के समक्ष धरना देते हुए जिस प्रकार वे पुलिस प्रताड़ना को सहती रही तथा जेल जाकर भी जिनकी हिम्मत कम नहीं हुई, ये सब इस तथ्य को इंगित करते हैं कि तत्कालीन राजस्थान की महिलाएं अन्य क्षेत्रों की महिलाओं की तुलना में कम जागरूक नहीं थी।

गांधीजी के प्रेरणा से यहां की महिलाओं ने हरिजनोद्धार के लिए जिस उदारता से आभूषणों का दान दिया, असहयोग आंदोलन के दौरान शहरी महिलाओं ने गांधी जी से प्रेरित होकर अपने विदेशी वस्त्रों का जिस प्रकार त्याग किया, धरना देते समय और जेलों में रहकर उन्होंने जिस वीरता और साहस का परिचय दिया तथा अपने पतियों के जेलों में बंद रहने की अवधि में उन्होंने जिस सहनशीलता और हिम्मत के साथ अपने परिवार का पालन पोषण किया ये सब निःसंदेह यहां की महिलाओं के उत्थान के ज्वलंत प्रमाण कहे जा सकते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि राजस्थान सहित भारतीय महिलाओं के उत्थान में महात्मा गांधी का योगदान आधुनिक भारतीय इतिहास की एक गौरवशाली गाथा है।

प्रथम अध्याय ''प्रस्तावना'' है। महात्मा गाँधी ने मानव समाज की समस्याओं का व्यावहारिक समाधान करने का प्रयास किया है। गाँधी की समग्र मानव की अवधारणा सम्पूर्ण विश्व संस्कृति के लिए एक अद्भुत व अपूर्व योगदान है। समग्र मानव की यह अवधारणा हर्बर्ट मारक्यूज की तरह मनुष्य को एक आयामी (One Dimensional man) न मानकर चेतना की अनन्त सम्भावनाओं से युक्त बहु–आयामी प्राणी मानती है। गाँधी ने मानव जीवन के लिए समग्र दृष्टिकोण एवं विश्व दृष्टि (World View) की प्रस्तुति की है। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में कस्तूरबा को अपने सत्याग्रह के विचार की प्रेरणा देने वाली अपनी गुरू कहा है। उनका ध्यान महिलाओं की जुझारू क्षमता पर पहली बार दक्षिण अफ्रीका में गया। उन्होंने अनेक बार इसका उल्लेख किया है

कि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन में उन्होंने महिलाओं में आत्मत्याग और पीड़ा सहने की अद्भूत क्षमता देखी।

जहाँ तक पुरुष व स्त्री के कार्यगत क्षेत्रों का सवाल है, तो गाँधी कार्यगत विशिष्टता में विश्वास करते थे। एक ओर पुरुष का कार्य है कि वह परिवार के लिए रोटी का अर्जन करे, वहीं स्त्रियों का यह दायित्व है कि वह घर व बच्चों के पालन–पोषण में अपनी श्रेष्ठतम भूमिका अदा करे। गाँधी के दृष्टिकोण में स्त्रियों की भूमिका एक पालनकर्त्ता की थी। उनका मानना था– ''महिलाऐं मुख्य रूप से घर गृहिणी होती है, नौनिहालों की उत्तम परवरिश महिलाओं की मुख्य व एकाधिकारपूर्ण जिम्मेदारी होती है। बिना उनके लालन–पालन के मानवता के अस्तित्व कदापि संभव नहीं है।'' उन्होंने विवाह को महिलाओं के लिए अवश्यंभावी चीज मानने से इंकार कर दिया।

यद्यपि गाँधी सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियों की सक्रिय भूमिका के प्रबल पैरोकार नहीं थे फिर भी जब 1921 में महिला मताधिकार का मुद्दा उठा तो उन्होंने इसका पुरजोर समर्थन किया तथा सत्याग्रह आंदोलन व दांडी मार्च की सफलता में स्त्रियों की उत्साहपूर्ण व सक्रिय भागीदारी की निर्णायक भूमिका थी। ''गाँधी अहिंसक संघर्षों में महिलाओं की भूमिका को अपनी मूल अवधारणा के विपरीत नहीं मानते थे। वरन् इसके उलट उनका ख्याल था, सत्याग्रह में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित कर महिलाऐं सम्पूर्ण मानवता के पालन–पोषण की अपनी जिम्मेदारी को और अधिक सुविस्तृत व सुव्यापक करती है।'' कैथल में स्त्रियों की एक सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा– ''समाज की बुनियाद घर के अस्तित्व पर टिकी होती है तथा 'धर्म' के विकास का श्रेष्ठतम स्थान घर होता है।''

द्वितीय अध्याय ''स्त्रियों की स्थिति के विषय में गाँधीजी के विचार'' के अन्तर्गत आधुनिक भारत में गाँधीजी के पहले ही कुछ सुधारकों के व्यक्तिगत प्रयासों तथा कई सुधार संगठनों द्वारा किये गए कार्यों के परिणामस्वरूप स्त्रियों के उद्धार की समस्या के प्रति पर्याप्त जनचेतना उत्पन्न हो चुकी थी। गाँधीजी

ने इसे नयी स्फूर्ति एवं उत्साह प्रदान किया। स्त्रियों के संबंध में गाधीजी के दृष्टिकोण को उनके सामान्य जीवन दर्शन के संदर्भ में रख कर ही ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। अहिंसा और सत्य पर आधारित इस जीवन दर्शन में किसी प्रकार के भेदभाव अथवा ऊँच–नीच की भावना के लिए स्थान नहीं है।

गांधीजी महिलाओं के पुनरूत्थान के बहुत बड़े हिमायती थे। उनके चर्खा, नशाबन्दी, ग्रामोत्थान, तथा हरिजनों और महिलाओं के उत्थान के कार्यक्रमों ने राजनीतिक दासता के विरूद्ध संघर्ष के लिये एक मजबूत आधार तैयार किया। इस संघर्ष में उन्होंने महिलाओं को पुरूषों के बराबर का हिस्सेदार बनाया। किसी भी रूढ़िवादी समाज में महिलाओं के उद्धार का काम कोई सरल नहीं हुआ करता। महात्मा गांधी ने बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा तथा विधवाओं के प्रति होने वाले क्रूर अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाई।

नारी की दयनीय स्थिति गाँधीजी को बुरी तरह खली। उन्होंने देखा की नारी में आत्मबलिदान की, त्याग की, सहिष्णुता की, कष्ट–सहन की क्षमता थी, परंतु पुरूषों ने उसे दासी बनाकर उसकी उपेक्षा और अवहेलना की हद कर दी। साहस, शूरता और वीरता की तो बात ही क्या बेचारी आत्मरक्षा में भी समर्थ नहीं थी। उनका मानना था कि नारी पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए जो पुरूषों पर ना लगाया हो। लड़का और लड़की में कोई भेद नहीं होना चाहिए। उनके अनुसार जब तक नारी इस शोचनीय स्थिति में पड़ी रहेगी तब तक न तो नारी का उद्धार होगा और न कल्याण होगा, न नर का न तो सारे समाज की स्थिति सुधरेगी न देश या राष्ट्र की।

अपने पत्र यंग इंडिया में उन्होंने लिखा, 'पुरूषों द्वारा स्वनिर्मित सम्पूर्ण बुराईयों में सबसे घृणित, विभत्स व विकृत बुराई है। उसके द्वारा मानवता के आधे हिस्से (जो कि मेरे लिए स्त्री जाति है न कि कमजोर व पिछड़ी जाति) को उसके न्यायसंगत अधिकार से वंचित करना। यदि मैं स्त्री रूप में पैदा होता तो मैं पुरूषों द्वारा थोपें गए किसी भी अन्याय का जमकर विरोध करता तथा उनके खिलाफ विद्रोह का झण्डा बुलंद करता।'

गाँधीजी ने विवेकहीन परम्पराओं और अन्धविश्वासों पर प्रहार करते हुए दृढ़तापूर्वक यह घोषणा की कि जब तक भारतीय समाज में इन कुरीतियों का विरोध कर समानता को स्वीकार नहीं किया जाएगा तब तक भारत का उत्थान सम्भव नहीं है। गाँधीजी ने घोषित किया कि व्यक्ति को आत्मोन्नति के प्रयत्न करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये अपितु सबकी उन्नति को ही अपनी उन्नति समझना चाहिये।

तृतीय अध्याय ''राजस्थान में महिला जागृति'' है। 19वीं शताब्दी में राजस्थान क्षेत्र में सामंतवादी शासन पद्धति प्रचलित थी। सम्भवतः ही सामंतवाद अलोकतान्त्रिक एवं एक व्यक्ति का शासन होता है जिसमें स्वतन्त्रता, समानता, अधिकारों आदि का कोई सरोकार नहीं होता। उल्लेखनीय है कि सामन्तवादी विचारधारा मध्ययुगीन विचारों से प्रेरित एवं प्रभावित थी, जिसमें आधुनिक तत्वों के स्थान पर प्राचीन कालीन प्रथायें मान्यताऐं, परम्पराओं को व्यक्तिगत जीवन में अत्यधिक महत्व दिया जाता था एवं इन्हें लागू करने के लिए तत्कालीन समाज किसी भी सीमा तक जा सकता था। ऐसी विकट स्थिति में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, उन्हें राजनैतिक, सामाजिक एवं सम्पत्ति सम्बन्धी किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं थे। स्त्रियों को अनेक प्रकार की प्रथाएँ, परम्पराओं मान्यताओं को आरोपित कर रखा था। जैसे– बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, दहेज–प्रथा, विधवा का नरकीय जीवन, अशिक्षा आदि।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी में राजस्थान उन मध्यकालीन मूल्यों को समेटे हुआ था जिसमें लोकतन्त्र माननवाद, कल्याण, आदि अवधारणाओं का कोई स्थान नहीं था। राजस्थानी समाज में जागृति के स्थान पर केवल मात्र परम्पराओं के पालन में विश्वास किया जाता था जो कि प्रतिक्रियावादी थी। सामंतवाद एक ऐसी वैचारिक विचारधारा होती है। जिसमें किसी नवसृजित मूल्यों के सरोकार से कोई तादात्म्य नहीं होता। इन परिस्थितियों में स्त्रियों को

केवल घर की चार दीवारी तक सीमित कर दिया एवं उनकी समस्त प्रकार की गतिविधियां समाज के पुरूषों पर निर्भर रहती थी। इन सभी विविध कारणों से महिलाओं की अत्यन्त दयनीय स्थिति थी।

इस दौरान 19वीं शताब्दी के समाज–सुधार आन्दोलन के समाज सुधार कार्यों से महिलाओं में स्फूर्ति का विकास हुआ। इसके अलावा 19वीं शताब्दी में देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए गतिविधियाँ भी चल रही थी जिनसे महिलाओं को व्यापक प्रेरणा प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगी। और वे अपने सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के साथ–साथ राष्ट्रीय विचारधारा से जुड़ने लगी, धीरे–धीरे महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति इतनी अधिक जागरूक होती चली गई कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग करने लगी।

राजस्थान की महिलाएँ अपने शौर्य त्याग और बलिदान के लिए सदैव ही अग्रणी रही है, यहाँ कि महिलाओं ने पुरुषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर खेत–खलिहान और कारखानों में काम किया है। वहीं इन्होंने आन्दोलन में अत्याचारों में पुरुषों के साथ संघर्ष किया। राजस्थान की आम महिलाओं में जागृति का अंकुर 1925 में प्रस्फुटित हुआ। समाज सुधार आन्दोलन में घूंघट हटाना, नव जागृति के लोक गीत गाना, रूढ़िवादिता का त्याग और अंधविश्वासों के त्याग आदि अधिकांश कार्यक्रम महिलाओं के लिए आयोजित किए गए एवं जिस द्रुत गति से महिलाओं ने इन कार्यों को अपनाया आज उसी का परिणाम है कि आज इस राज्य की महिलाओं कि शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक गतिविधियाँ अत्यधिक अच्छी एवं उच्च प्राथमिकता वाली रही।

चतुर्थ अध्याय ''कृषक आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी'' है। राजस्थान के देशी राज्यों में भूमि का अधिकांश भाग जागीरदारों के नियंत्रण में था। अपेक्षाकृत खालसा क्षेत्र के किसानों की स्थिति अच्छी थी, क्योंकि वहाँ राजा का किसानों के सीधा सम्बन्ध था। इसके अतिरिक्त खालसा क्षेत्र में

स्थायी भूमि बन्दोबस्त की व्यवस्था सम्पन्न हो जाने के कारण किसानों की बहुत सी शिकायतों का समाधान हो चुका था। जागीर क्षेत्र में भूमि बन्दोबस्त न होने से वहाँ का किसान वर्ग लाग–बाग, बेगार और लगान की ऊँची दरों के कारण पूर्णतया दुःखी व चिन्तित था। जागीरदार अपने क्षेत्र में दिनोंदिन निरंकुश व स्वेच्छाचारी बनता जा रहा था। राजा का जगीरी क्षेत्र में न्यूनतम हस्तक्षेप था। ऐसी स्थिति में किसान वर्ग को जागीरदार व राजा से न्याय मिलने की सम्भावना नहीं रही, अतः उसने आन्दोलनों का सहारा लिया।

तत्कालीन राजस्थान में सिरोही (भील आन्दोलन) और अलवर (मेव आन्दोलन) राज्यों को छोड़कर अन्य सभी रियासतों में सामान्यतः आन्दोलन अहिंसात्मक तौर पर संचालित किये गये थे। राजस्थान में किसान आन्दोलनों की एक अन्य विशेषता यह थी कि इनका आधार जातिगत रहा। उदारहणार्थ, बिजौलिया आन्दोलन में धाकड़ जाति की महती भूमिका रही। सीकर और शेखावाटी के आन्दोलनों में जाट जाति का वर्चस्व रहा। मेवाड़ और सिरोही राज्यों के किसान आन्दोलनों के पीछे भील और गरासिया जातियों की शक्ति रही। इसी प्रकार अलवर और भरतपुर राज्यों के आन्दोलनों में मेवों की मुख्य भूमिका रही। आन्दोलनों को सुनियोजित रूप से संचालित करने का श्रेय जाति पंचायतों व जाति संगठनों को दिया जा सकता है। जातीय पंचायतों के निर्णय सभी के लिए अनिवार्य हो गया था क्योंकि ऐसा न करने पर उन्हें जातीय बहिष्कार का भय बना रहता था। एकता बनाये रखने के लिए देवी–देवताओं को साक्षी बनाकर अथवा गंगाजल हाथ में रखवाकर उन्हें शपथ दिलाई जाती थी। भील और गरासियों का ''एकी'' तथा जाटों का ''प्रजापति'' महायज्ञ संगठनों का आधार जाति ही थी।

राजस्थान में प्रायः सभी जागीरदार राजपूत जाति से सम्बन्धित थे और किसान वर्ग में विभिन्न जातियाँ थीं, जिनमें मुख्यतः जाट जाति के लोग थे। सामाजिक दृष्टि से शासक वर्ग किसान वर्ग को हीन दृष्टि से देखता था तथा नीचा समझता था। सामाजिक असमानता के कारण राजपूतों और जाटों के

बीच कटुता का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। राजस्थान में किसान आन्दोलनों को यह एक सामाजिक पहलू था। राजस्थान के किसान आन्दोलनों का नेतृत्व प्रायः बाहर के लोगों ने ही किया था। बिजौलिया, बेगूँ और बून्दी आन्दोलनों में अजमेर में स्थित सेवा संघ की महती भूमिका रही। विजयसिंह पथिक, रामनारायण आदि नेताओं ने उक्त आन्दोलनों का संचालन किया था। शेखावाटी व सीकर के आन्दोलनों को चलाने का श्रेय रामनारायण चौधरी, ठाकुर देशराज तथा अखिल भारतीय जाट महासभा के नेताओं को दिया जा सकता है। इसी प्रकार मेव आन्दोलनों का नेतृत्व गुड़गाँवाँ के यासीन खाँ ने किया था।

देशी राज्यों में प्रजामण्डलों की स्थापना के बाद किसान आन्दोलनों को नई दिशा प्राप्त हुई। प्रजामण्डलों ने किसानों की दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए आह्वान किया था। उन्होंने समय–समय पर आन्दोलन कर किसानों की शिकायतों को दूर करवाने के लिए भरसक प्रयत्न किये। उन्हीं के प्रयासों के फलस्वरूप जागीरी क्षेत्रों में भूमि बन्दोबस्त की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। आजादी के बाद राजस्थान राज्य का गठन हुआ, तब से किसानों की स्थिति को सुधारने कें लिए अनेक कानून बनाये गये। अन्ततः जागीर उन्मूलन कानून पारित किया गया जिसके फलस्वरूप सदियों पुरानी सामन्ती व्यवस्था की इतिश्री हो गई। भूमि सुधार नियमों के कारण किसान वर्ग की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा।

पंचम अध्याय ''गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम एवं महिलाओं की भूमिका'' है। वास्तव में गांधीवादी रचनात्मक कार्य जैसै खादी, चरखा, बालिका शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण, मद्य निषेध आदि अधिक प्रखर थी। प्रारंभ से ही गाँधी जी ने अस्पृश्यता की बात कही और यह उनके कार्यक्रम का मुख्य अंग था। स्त्रियों के कल्याण की बात भी काफी पहले ही उनके कार्यक्रम का अंग थी। किसी भी आंदोलन की सफलता में रचनात्मक कार्य पृष्ठाधार का कार्य करने लगी। ''बारदोली के मामले में भी गाँधी जी ने सफलता का बहत बड़ा कारण यह

बताया था कि बारदोली सत्याग्रह के छह–सात साल पहले से वहॉ सामाजिक और आर्थिक सुधार का रचनात्मक कार्यक्रम चलता रहा था।'' सन् 1920 में गाँधी जी ने काँग्रेस द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम भारतवर्ष के सामने रखा था। गाँधी जी के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम अहिसंक राज्य की व्यवस्था के विकास का ढॉचा है। भारत वर्ष का रचनात्मक कार्यक्रम आवश्यक रूप से ग्रामकार्य है। गाँधी ने इस कार्यक्रम में कई बातों को शामिल किया और ये ऐसी बातें हैं जो अहिंसा द्वारा राष्ट्र की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए अनिवार्य है।

राजस्थान में रचनात्मक कार्यों की दृष्टि से राजस्थान सेवक संघ, गोविन्द गढ़, चरखा संघ, रींगस खादी एवं मेवाड़ सेवा संघ, अग्रवाल मित्र मण्डल, तालिम संघ, ग्रामोद्योग संघ, आदिवासी सेवा समिति, वैदिक शिक्षा समिति, राजस्थान हरिजन सेवक संघ, आर्य महिला मण्डल एवं विविध रचनात्मक सम्मेलन आदि का अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा। संगठनों का महत्वपूर्ण कार्य कार्यकर्त्ताओं को संगठित करना था। जिसमें महिलाओं ने सुधार के दृष्टि से अत्यधिक संख्या में भाग लिया। इन महिलाओं में श्रीमती सुशीला देवी, भगवती देवी, कमला जैन, कुमारी रजिया जी तहसीन, श्रीमती सुकीर्ति देवी, श्रीमती दुर्गा देवी अत्यन्त महत्वपूर्ण रही।

शिक्षा के प्रसार के कार्यों में रतन देवी शास्त्री, जानकी देवी बजाज, गीता बजाज ने महत्ती भूमिका निभाई। खादी प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से जानकी देवी बजाज, सुशीला देवी, भगवती देवी विश्नोई, श्रीमती कोकिला देवी, गुलाब देवी भण्डारी और श्रीमती शान्ति देवी ने महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रत्येक गांव–गांव एवं घर–घर में चरखा उपलब्ध करवाने के लिए राजस्थान चरखा संघ के निर्देशन में श्रीमती जानकी देवी बजाज, श्रीमती भागीरथी देवी तथा विमला देवी चौधरी ने चरखें उपलब्ध करवायें एवं बहनों को सूत कातने के लिए प्रेरित किया। जिन बहनों को सूत कातना नहीं आता था उन्हे सूत कातना सिखाया गया। इन महिलाओं ने रचनात्मक कार्यक्रम के सभी पक्षों पर

व्यापक कार्य किया। महिलाओं ने न केवल खादी एवं चरखा का प्रचार–प्रसार किया, अपितु शैक्षणिक वातावरण तैयार करने में इसके विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आजादी के पूर्व में राजस्थान की अनेक रियासतों में रचनात्मक कार्यक्रम चलाये गये थे। मेवाड़ के बिजोलिया क्षेत्र में देश के एक तरह प्रथम किसान आंदोलन के साथ खादी ग्रामोद्योग की स्थापना शुरूआत हुई। हरिजन सेवा, आदिवासी सेवा, शैक्षणिक एवं अन्य रचनात्मक कार्यक्रम रियासतों मे ंचलने लगे। गांधी जी का खादी से तात्पर्य स्वदेशी से था। स्वदेशी को बढ़ावा देना जो उनके आन्दोलन का मूलमंत्र था।

षष्टम अध्याय ''सक्रिय राजनीति और महिलाओं की भागीदारी'' है। राजस्था में राजनीतिक चेतना एवं महिलाओं की इसमें सक्रियता को प्रजामण्डलों एवं अन्य राजनीतिक संस्थाओं ने अत्यधिक प्रभावी बनाया। इस क्षेत्र में बने संगठन मारवाड़ लोक परिषद 1928, 24 अप्रैल, 1938 को मेवाड़ प्रजामण्डल, 1931 में जयपुर प्रजामण्डल की स्थापना, 1931 में कोटा प्रजामण्डल, 1938 में अलवर कांग्रेस प्रजामण्डल, 1938 में शाहपुरा प्रजामण्डल एवं भरतपुर प्रजामण्डल की स्थापना भरतपुर के बाहर रेवाड़ी में की गई। उल्लेखनीय है कि प्रजामण्डल आन्दोलन रियासतों में अखिल भारतीय कांग्रेस के पूरक आंदोलन के रूप में चलाया गया था। इस स्त्रियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया, भाग लेने वाली स्त्रियों में श्रीमती विमला देवी चौधरी, भगवती देवी, रतन शास्त्री, जानकी देवी, गीता बजाज, महिमा देवी किंकर, नारायणी देवी वर्मा, रानी देवी, रजिया तहसीन, सुशील देवी, कमला जैन, तारा बहन, सुकीर्ति देवी, दुर्गा देवी, रामप्यारी देवी, नगेन्द्र बाला, गंगा बाई, कमला स्वाधीन, किशोरी देवी, वीर बाला भावासार, नारायणी देवी, अंजना देवी आदि प्रमुख रही।

लेकिन सन् 1938 में सुभाष चन्द्र बोस की अध्यक्षता में कांग्रेस के हरिपुरा आन्दोलन में रियासतों की जनता को अपने–अपने राज्यों में उत्तरदायी शासन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता संगठन बनाकर आंदोलन करने

और जनजागृति फैलाने का आह्वान किया गया। स्वयं जवाहर लाल नेहरू ने अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के अध्यक्ष के रूप में कार्य करना स्वीकार किया। 1938 के बाद राजस्थान की लगभग सभी रियासतों में प्रजामण्डलों की स्थापना हुई और सभी रियासतों में उत्तरदायी शासन की माँग को लेकर आंदोलन किये जाने लगे।

वस्तुतः गांधीजी द्वारा भारतीय राजनीति में सत्याग्रह आरंभ करने से पूर्व ही राजस्थान में सत्याग्रह आन्दोलन का आरंभ हो चुका था, जिसके प्रणेता विजय सिंह पथिक थे। उन्होंने लोगों को सत्याग्रह से परिचित करवाया एवं जनता को अन्याय एवं असमानता के विरूद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक तक राजस्थान की प्रमुख रियासतों में शिक्षा का प्रसार हो गया था। इन रियासतों के अभिजात वर्ग के नवयुवक उत्तरप्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से, जैसे इलाहाबाद, लखनऊ व आगरा आदि, उच्च शिक्षा प्राप्त कर वापस आ चुके थे। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक तक बहुत से राज्यों में पढ़े लिखे लोगों की कमी नहीं रही थी। किन्तु राज्य में कार्य करने का अवसर नहीं मिलने से उनमें असंतोष व्याप्त हो रहा था। अपनी प्रतिभा की उपेक्षा से यह वर्ग रियासती शासकों से अत्यधिक क्रुद्ध था। उच्च पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त यह स्थानीय वर्ग स्वतन्त्रता, समानता, राष्ट्रीयता एवं लोकतन्त्र की अवधारणाओं से तथा उन आदर्शों की प्राप्ति के लिए हुई विभिन्न क्रान्तियों के इतिहास से पूर्णतः अवगत था। अतः इसी मध्यम वर्ग से रियासती जनता के राजनैतिक नेतृत्व का आविर्भाव हुआ। इसी शिक्षित वर्ग ने रियासत में प्रचलित आर्थिक व्यवस्था एवं राजनैतिक व प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त अनियमितताओं तथा दोषों को उजागर कर जनता में जागृति उत्पन्न की। इसी वर्ग ने भाषणों, लेखों, जुलूसों तथा सार्वजनिक सभाओं द्वारा जनता में राजनैतिक चेतना का प्रसार किया और उसे नागरिक अधिकारों तथा उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु संघर्ष करने की प्रेरणा एवं क्षमता प्रदान की।

सप्तम अध्याय ''महिला कार्यकर्त्ताओं का संक्षिप्त जीवन वृत्त'' है। भारतीय स्वतंत्रता–आन्दोलन का इतिहास स्वतंत्रता कि लिए भारतीयों के संघर्ष की अदभुत गाथा है। इस संघर्ष में पुरूषों और महिलाओं ने समान रूप से

भाग लिया। भारतीय महिलाओं का योगदान इसमें इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि उनका सामाजिक उत्थान हुए बहुत लंबा समय व्यतीत नहीं हुआ था। घर का मोर्चा हो या राजनीति का रणक्षेत्र, महिलाओं ने जिस साहस, सहिष्णुता और वीरता से स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भूमिका निभाई, वह इतिहास की धरोहर है।

निष्कर्षतः गांधीजी महिलाओं के पुनरूत्थान के बहुत बड़े हिमायती थे। उनके चर्खा, नशाबन्दी, ग्रामोत्थान, तथा हरिजनों और महिलाओं के उत्थान के कार्यक्रमों ने राजनीतिक दासता के विरूद्ध संघर्ष के लिये एक मजबूत आधार तैयार किया। इस संघर्ष में उन्होंने महिलाओं को पुरूषों के बराबर का हिस्सेदार बनाया। किसी भी रूढ़िवादी समाज में महिलाओं के उद्धार का काम कोई सरल नहीं हुआ करता। महात्मा गांधी ने बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा तथा विधवाओं के प्रति होने वाले क्रूर अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाई।

राजस्थान में प्रजामंडल आन्दोलन राजनीतिक जागरण एवं देश में गाँधी जी के नेतृत्व में चल रहे स्वतंत्र संघर्ष का परिणाम था। इसकी पृष्ठभूमि राजस्थान राज्यों में चल रहे कृषक आन्दोलन थे। कृषक आन्दोलन उस व्यापक असन्तोष के अंग थे, जो प्रचलित राजनीतिक और आर्थिक ढांचे में विद्यमान था। कृषकों ने विभिन्न आन्दोलनों के माध्यम से उस समय के ठिकानेदारों और जागीरदारों के अत्याचारों को तथा कृषि संबंध में आये विचार को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जागीरदारी व्यवस्था उस पैतृकवादी स्वरुप को छोड़कर शोषणात्मक स्वरुप ले चुकी थी। प्रचलित व्यवस्था में असन्तोष व्यापक था। इसलिए 1920 ई. के पश्चात् राजनीतिक अधिकारों और सामाजिक सुधारों से संबंधित संस्थाओं की स्थापना हुई। इस प्रकार गांधीवादी विचारों और कार्यों प्रभावित होकर राजस्थान में महिला जागरण का अभूतपूर्व कार्य किया गया। व्यवहारिक दृष्टि से महिलाओं की प्रगति में जितना सहयोग महात्मा गांधी ने दिया उतना सम्भवतः किसी अन्य ने नहीं दिया। इसी का परिणाम है कि आज वे जीवन के सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में पुरूषों के साथ मिलकर कार्य कर रही हैं, तथा देश की उन्नति में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

शोध–सारांश

सन् 1905 में बंग–भंग के पश्चात् देश में राजनीतिक जागृति का जो दौर आया, राजपूताना भी उससे अछूता नहीं रहा। प्रथम महायुद्धोपरान्त महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति में आगमन हुआ। तत्पश्चात् असहयोग आन्दोलन और अन्ततः सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के फलस्वरुप उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों के माध्यम से राजस्थान के राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन में भी जागृति आई। राजस्थान में महिलाओं ने इस जन जागृति में अत्यन्त की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। समाज की वेदना और संत्रास को वाणी देने तथा दमन और अत्याचारों के विरुद्ध आवाज बुलन्द करने एवं जन कल्याण की दिशा में मार्गदर्शन करने में प्रदेश के कर्त्तव्यनिष्ठ महिलाओं ने सदैव अपने साहस और दायित्व बोध का परिचय दिया। इसी का समीचीन एवं समुचित मूल्यांकन करने का प्रयत्न प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में किया गया है।

राजस्थान जैसा अपेक्षाकृत पिछड़ा राज्य, जो विभिन्न रियासतों में बँटा हुआ था तथा जहाँ सामन्ती अत्याचारों का सिलसिला बराबर चलता रहा था, न केवल राजनीतिक दृष्टि से वरन् सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से भी बहुत पिछड़ा हुआ था। सदियों से चली आ रही रुढ़िवादी प्रथाओं और अन्धविश्वासों ने यहाँ की धरती में गहरी जड़ें जमा ली थी। पर्दा प्रथा, बाल–विवाह आदि अनेक अनिष्टकारी कुरीतियों ने समाज के अधिकतर लोगों को, विशेषकर स्त्रियों को शुद्ध हवा में श्वास लेने का मौका ही नहीं दिया। अतः एक राष्ट्र का प्रत्यय समझाने, राष्ट्रीयता की भावना जगाने तथा राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने के लिए पहली आवश्यकता थी सामाजिक पुनरुत्थान करने की। सांस्कृतिक नव जागरण के लिए और समाज में व्याप्त त्रुटिपूर्ण और विकृत परम्पराओं के निष्कासन के लिए राजनेताओं ने कई आंदोलन चलाए। ऐसे आंदोलनों में यहाँ आर्य समाज का प्रभाव सबसे अधिक

रहा। आर्य समाज आंदोलन ने नारी शिक्षा, नारी की समानता, अछूतोद्धाार आदि में अपना अमूल्य योगदान किया। छुआछूत को मिटाने के लिए गाँधीजी द्वारा चलाए गए आन्दोलनों का असर भी राजस्थान में पडने़ लगा। दूसरी तरफ यहाँ आर्थिक शोषण के विरुद्ध कृषकों ने भी अपने आन्दोलन छेड़ दिए थे।

राजपूताना के निवासी सामान्यतः अन्धविश्वासी, रुढ़िवादी एवं पुरातनवादी थे तथा समाज में अनेक कुरीतियाँ व्यापक रूप से व्याप्त थी। इनमें सती प्रथा, समाधि, डाकन प्रथा, कन्यावध, दास–दासी प्रथा, त्याग प्रथा आदि प्रमुख थी। समाज में स्त्रियों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। उनमें पर्दा, निरक्षरता, बाल व अनमेल विवाह, बहुविवाह एवं लड़कियों के क्रय–विक्रय की स्थिति बनी हुई थी। विवाह व मृत्यु के अवसर पर लगभग सभी जातियों में अत्यधिक धन का व्यय होता था जिससे उन पर सदैव आर्थिक संकट बना रहता था।

दास प्रथा भी 20वीं शताब्दी में राजस्थान में एक प्रमुख सामाजिक कुरीति के रूप में विद्यमान थी। इस वर्ग की स्थिति तत्कालीन समाज में काफी शोचनीय थी। इस वर्ग का एकमात्र जीवन लक्ष्य अपने मालिकों को प्रसन्न रखना एवं उनके आदेशों का पालन करना बन गया था। इन्हें गोला–गोली, दावड़ी, वड़ारन, दरोगा, चाकर, हजूरिया, दास, खानजादा, चेला आदि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता था। सन् 1921 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में घरेलू दास–दासियों की संख्या 1,60,755 थी जिनमें आधे ऐसे दास थे जिनका जन्म ही अपने मालिकों के घरों में हुआ था।

यहाँ राज्य में बहुत से दास–दासी है, जिन्हें हुजूरी या दरोगा कहते हैं। राज्य परिवार के हाथों इनकी बड़ी दुर्गति हो रही है। उन्हें सम्पत्ति की भाँति अपनी मिल्कियत समझा जाता है। गुजारे के लिए प्रति व्यक्ति मासिक 4 रुपये मिलता है और रात–दिन नौकरी ली जाती है। दम मारने को भी फुर्सत नहीं

मिलती। ऐसी दशा में गुजारा हो तो कैसे हो। वे दूसरी जगह नौकरी कर नहीं सकते।

लड़कियाँ ज्यों–ज्यों बड़ी होती है अपने मालिक या मित्रों की विषय–वासना पूरी करने के लिए रख ली जाती हैं। वे उन्हें बेच या दूसरों को नजऱ भी कर देते हैं। अनियमित रूप से पैदा होने के कारण ये लोग तरीके से कानूनी शादी करने की माँग भी नहीं रख सकते। एक वैश्या को कुछ अधिकार मिले हुए होते हैं परन्तु एक दरोगिन को ये भी नहीं होते। यहाँ तक की कानून भी उनके विवाहों को जायज स्वीकार नहीं करता। मालिकों की मर्जी पर एक विवाहित दरोगिन भी अपने पति के कुटुम्ब से हटाई जा सकती है।

दास प्रथा के अलावा निःशुल्क श्रम अथवा बेगार की कुप्रथा भी तत्कालीन समाज में विद्यमान थी। अपने आरम्भिक स्वरूप में यह प्रथा यद्यपि स्वैच्छिक थी लेकिन कालान्तर में शासकों एवं जागीरदारों ने इसे हर समय की और जबरदस्ती की चीज बना डाली। धीरे–धीरे उनके नौकर–चाकर भी अपने को बेगार लेने के हकदार समझने लगे। जागीरदार लोग परम्परागत रूप से मुफ्त सेवाएं लेने लगे। ब्राह्मण और राजपूतों के अलावा बाकी अन्य जातियों को बेगार देनी पड़ती थी। चमार, माली, नाई, खाती तथा अन्य ऐसे लोगों से बिना कुछ दिए बेगार में आटा पिसवाना, पानी भरवाना, लकड़ी फड़वाना, ठिकाने के कागजों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना, घोड़ों व ऊंटों के लिए चारा मँगवाना आदि अनेक काम करवाये जाते थे। जागीरदार के यहाँ शादी–गमी में तो ऊँची जातियों से भी कई प्रकार की बेगार ली जाती थी। बेगार न देने पर सरेआम बेइज्जत करना, गढ़ में बुलवाकर या उसके घर पर उसको जूते से पिटवाना, मुर्गा बनाकर धूप में खड़ा करना आदि मामूली बातें थी।

महात्मा गाँधी, जिन्हें लोग प्यार से बापू कहते हैं, भारतीय राजनीतिक मंच पर सन् 1919 से सन् 1948 तक इस प्रकार छाए रहे कि इस युग को भारतीय इतिहास का गाँधी युग कहा जाता है। गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने

रचनात्मक कार्यक्रम को बहुत बढ़ावा दिया। वह केवल राजनैतिक स्वतंत्रता ही नहीं चाहते थे अपितु जनता की आर्थिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति चाहते थे। इस भावना से उन्होंने श्ग्राम उद्योग संघ्य, श्तालीमी संघ्य और श्गौ रक्षा संघ्य बनाए। उन्होंने समाज में शोषण समाप्त करने के लिए भूमि का समाजीकरण ही नहीं माँगा अपितु आर्थिक क्षेत्र के विकेन्द्रीकरण द्वारा इस प्रश्न को हल करना चाहा। खादी उनके आर्थिक कार्यक्रर्म की प्रतीक थी। सामाजिक सुधार के लिए भी गाँधीजी द्वारा अनेक प्रयत्न किए गए। उन्होंने जन्म, जाति, धर्म और धन आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार की असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास किया। अछूतों के उद्धार के लिए कार्य किया और उन्हें हरिजन (ईश्वर के लोग) की संज्ञा दी। नशाबन्दी के लिए और हिन्दु–मुस्लिम एकता के लिए भी उन्होंने अनेक प्रयत्न किए।

महिला जागरण में महात्मा गांधी के विचारों ने, महिला समाज को गति देने में उत्प्रेरक का काम किया। गांधी जी चाहते थे कि महिला शक्ति का उपयोग देश सेवा के लिए हो। गांधी जी ने उनकी आत्मा को सच्चे अर्थों में पहचाना। वे महिलाओं को त्याग, सहनशीलता, विनम्रता, श्रद्धा और विवेक की प्रतिमूर्ति मानते थे। उन्होंने जगह–जगह घूमकर महिलाओं तक स्वतंत्रता, समानता और नवजागृति का संदेश पहुँचाया। साथ ही उनका भारतीय स्वरूप भी अक्षुण्ण रखा। उन्होंने महिलाओं को उनके अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया तथा उनके आत्मविश्वास को प्रबल किया। उन्होंने परिवार भावना से बढ़कर व्यापक सामाजिक भावना के विकास के लिये प्रत्येक महिला के मानसिक विकास को आवश्यक माना और साथ ही विश्व भावना तक उसका प्रसार चाहा। इसके लिये उन्होंने भारतीय महिलाओ की प्रगति को अवरूद्ध करने वाली समस्त सामाजिक कुरीतियों पर करारी चोट ही नहीं की बल्कि उनके मार्ग की बाधाओं को दूर करने के लिये अपनी पूरी शक्ति लगा दी।

गांधी जी के जीवन का महत्वपूर्ण कार्य महिलाओं का उद्धार करना था। समाज के क्षेत्र में उनकी सबसे बड़ी सेवा महिलाओं के प्रति परम्परागत स्वरूप

में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना था। महिलाओं के मन में बहुत कुछ कर गुजरने के लिये जोश व शक्ति थी, परन्तु संगठन के अभाव में वे अपने हृदय के भावों को कार्य रूप में परिणित नहीं कर पा रही थीं। गांधी जी ने उनके जोश और उत्साह को एक सूत्र में पिरोकर उनमें दृढ़ इच्छा शक्ति तथा संगठन की भावना उत्पन्न की।

भारतीय महिलाओं में सत्याग्रह की भावना उत्पन्न करना गांधी जी का प्रधान लक्ष्य था। वे जानते थे कि महिलाएं बहुत अच्छी सत्याग्रही हो सकती थी। महिलाओं के संदर्भ में सत्याग्रह की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा था ' महिला की कोई रक्षा करने वाला नहीं है। वह खुद ही अपनी रक्षा कर सकती है। वह स्वावलम्बी बन सकती है या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर अन्त में यही निकलता है कि हॉ। यदि वह सत्याग्रह सीख ले तो पूरी तरह स्वतंत्र और स्वावलम्बी बन जाए।'' उन्होंने देश के नगरों एवं गांवों में घूम–घूमकर महिलाओं तक स्वतंत्रता, समानता और नवजागृति का संदेश पहुँचाया तथा उनके अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया। गांधी जी के विचारों का राजस्थान की महिलाओं पर विशेष प्रभाव पड़ा। महिलायें संगठित होकर प्रभात फेरी के माध्यम से जन–जागृति का कार्य करने लगी तथा घर–घर जाकर खादी का प्रचार करने लगी। राजस्थान में हरिजनोद्धार के कार्य में वे सहयोग प्रदान कर रही थीं। इस प्रकार गांधी जी के सत्याग्रह संबंधी विचारों का प्रभाव देश के अन्य भागों की महिलाओं के साथ साथ राजस्थान की महिलाओं पर भी पड़ा।

गांधी जी ने महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों की वकालत दो बिन्दुओं पर की। प्रथम यह कि महिलाएं पुरूषों से किसी तरह कम नहीं थी, अपितु कई मामलों में पुरूषों से श्रेष्ठ थीं। द्वितीय यह कि महिलाओं के राजनीति में आने से निश्चित रूप से महिला सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त होगा। उन्होंने महिलाओं में सत्य और अहिंसा के पालन का गुण देखा था। यही कारण है कि वे उनको राजनीति में सक्रिय कर स्वाधीनता आन्दोलन को सफल बनाना

चाहते थे। गांधी जी स्वाधीनता आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी के पूर्ण पक्षधर थे। वे महिलाओं की सभाओं में अपने भाषणों में, आन्दोलन में उनकी भागीदारी अनिवार्य बताते थे। साथ ही उन्हें यह कहकर प्रेरित करते थे कि देवियों और वीरांगनाओं की तरह आन्दोलन में उनकी अपनी अलग भूमिका थी और उनमें इस भूमिका को निभाने की शक्ति और हिम्मत भी थी। उन्होंने महिलाओं को विश्वास दिलाया कि आन्दोलन को उनके महत्वपूर्ण सहयोग की आवश्यकता थी।

इसमें संदेह नहीं कि भारतीय महिलाओं के संबंध में गांधी जी के विचार एवं महिला शक्ति के संबंध में उनका दर्शन समयानुकूल था। उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनके प्रयासों से समाज में व्याप्त अनेक बुराईयां जैसे बालविवाह, सती प्रथा तथा अंधविश्वास समाप्त हो रहे थे। ब्रिटिश शासन की शिक्षा नीति का लाभ भी अपेक्षाकृत कम महिलाओं को मिल रहा था। फिर भी गांधी जी की तुलना में ये सब कार्य महिलाओं पर दया करने जैसे थे। उनकी सुप्त शक्ति को जागृत करने का कार्य गांधी जी ने ही किया। जिस प्रकार उन्होंने महिलाओं में आत्मत्याग, सहनशीलता और दृढता के गुण देखे तथा महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने हेतु प्रेरित किया, वह एक प्रकार का चमत्कार ही कहा जा सकता है। उनकी प्रेरणा से महिलाओं में तीव्र गति से परिवर्तन होने लगे।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान महात्मा गांधी के आह्वान पर महिलायें राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिये उठ खड़ी हुई। घर का मोर्चा हो या राजनीति का रणक्षेत्र महिलाओं ने जिस साहस, सहिष्णुता और उत्साह से स्वतंत्रता संग्राम में अपनी भूमिका निभाई वह इतिहास की अमूल्य धरोहर है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने महिलाओं को एक मंच प्रदान किया। इन महिलाओं को संगठित एवं उत्साहित कर एक लक्ष्य गांधी जी ने प्रदान किया। 1920 में गांधी जी द्वारा चलाये गये असहयोग आंदोलन से महिलाओं को एक नयी

दिशा मिली। 1930 में गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम सविनय अवज्ञा आन्दोलन एवं 1942 में चलाये गये भारत छोड़ों आन्दोलन में भी महिलाओं ने तन–मन–धन से पूर्ण सहयोग दिया। उन्होंने संगठित रूप से कर्तव्य के प्रति समर्पित होकर सक्रियता से आन्दोलन में भाग लिया और अनेक यातनाओं को सहते हुए उस समय राजनीतिक कार्यक्षेत्र की बागडोर संभाली जब नेताओं को ब्रिटिश सरकार ने शिकंजों में जकड़कर रखा था।

जिस समय सम्पूर्ण राष्ट्र स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रवाह में बह रहा था राजस्थान उससे कैसे अछूता रहता? राष्ट्रीय आन्दोलन के समय इन महिलाओं ने खादी का प्रचार, विदेशी वस्त्रों की होली जलाना, विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दुकानों के समक्ष धरना देना आदि कार्यों में भाग लिया। स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का राजस्थान में काफी प्रभाव था। असहयोग आन्दोलन से लेकर भारत छोड़ों आंदोलन तक इस क्षेत्र की महिलाओं ने उत्साह से भाग लिया। तथा कथित रूप से पिछड़े हुए इस क्षेत्र की महिलाओं की भूमिका स्वाधीनता आन्दोलन में अति महत्वपूर्ण थी क्योंकि उन्नत क्षेत्र की महिलाओं की अपेक्षा पिछड़े हुए क्षेत्र की महिलाओं का स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेना या स्वाधीनता आन्दोलन में भाग ले रहे अपने परिवार के पुरूष सदस्यों को पूर्ण सहयोग देना निश्चित ही एक उल्लेखनीय उपलब्धि मानी जायेगी। निःसंदेह स्वाधीनता आन्दोलन में राजस्थान की महिलाओं का योगदान एवं उनका प्रभाव सराहनीय माना जायेगा और यह कहा जा सकेगा कि इस अंचल की महिलाओं ने पुरूषों की बराबरी कर नारी जागरण को और स्वाधीनता आन्दोलन को सार्थक कर दिखाया।

यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान में महिलाओं पर अनेक प्रकार के सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिबंध थे। आदिवासी बहुल क्षेत्र होने के कारण यहां की महिलाओं में शिक्षा का प्रसार भी अपेक्षाकृत कम था। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं जिस प्रकार एकजुट होकर प्रभात फेरी निकालती थी तथा चरखा चलाकर अपने परिवार का पोषण करती थीं उससे महिला सशक्तिकरण

की धारणा बलवती होती है। इतना ही नहीं जंगल सत्याग्रह तथा विदेशी वस्त्रों की दुकानों के समक्ष धरना देते हुए जिस प्रकार वे पुलिस प्रताड़ना को सहती रही तथा जेल जाकर भी जिनकी हिम्मत कम नहीं हुई, ये सब इस तथ्य को इंगित करते हैं कि तत्कालीन राजस्थान की महिलाएं अन्य क्षेत्रों की महिलाओं की तुलना में कम जागरूक नहीं थी।

गांधीजी के प्रेरणा से यहां की महिलाओं ने हरिजनोद्धार के लिए जिस उदारता से आभूषणों का दान दिया, असहयोग आंदोलन के दौरान शहरी महिलाओं ने गांधी जी से प्रेरित होकर अपने विदेशी वस्त्रों का जिस प्रकार त्याग किया, धरना देते समय और जेलों में रहकर उन्होंने जिस वीरता और साहस का परिचय दिया तथा अपने पतियों के जेलों में बंद रहने की अवधि में उन्होंने जिस सहनशीलता और हिम्मत के साथ अपने परिवार का पालन पोषण किया ये सब निःसंदेह यहां की महिलाओं के उत्थान के ज्वलंत प्रमाण कहे जा सकते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि राजस्थान सहित भारतीय महिलाओं के उत्थान में महात्मा गांधी का योगदान आधुनिक भारतीय इतिहास की एक गौरवशाली गाथा है।

प्रथम अध्याय ''प्रस्तावना'' है। महात्मा गाँधी ने मानव समाज की समस्याओं का व्यावहारिक समाधान करने का प्रयास किया है। गाँधी की समग्र मानव की अवधारणा सम्पूर्ण विश्व संस्कृति के लिए एक अद्भुत व अपूर्व योगदान है। समग्र मानव की यह अवधारणा हर्बर्ट मारक्यूज की तरह मनुष्य को एक आयामी (One Dimensional man) न मानकर चेतना की अनन्त सम्भावनाओं से युक्त बहु–आयामी प्राणी मानती है। गाँधी ने मानव जीवन के लिए समग्र दृष्टिकोण एवं विश्व दृष्टि (World View) की प्रस्तुति की है। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में कस्तूरबा को अपने सत्याग्रह के विचार की प्रेरणा देने वाली अपनी गुरू कहा है। उनका ध्यान महिलाओं की जुझारू क्षमता पर पहली बार दक्षिण अफ्रीका में गया। उन्होंने अनेक बार इसका उल्लेख किया है

कि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन में उन्होंने महिलाओं में आत्मत्याग और पीड़ा सहने की अद्भूत क्षमता देखी।

जहाँ तक पुरुष व स्त्री के कार्यगत क्षेत्रों का सवाल है, तो गाँधी कार्यगत विशिष्टता में विश्वास करते थे। एक ओर पुरुष का कार्य है कि वह परिवार के लिए रोटी का अर्जन करे, वहीं स्त्रियों का यह दायित्व है कि वह घर व बच्चों के पालन–पोषण में अपनी श्रेष्ठतम भूमिका अदा करे। गाँधी के दृष्टिकोण में स्त्रियों की भूमिका एक पालनकर्त्ता की थी। उनका मानना था– ''महिलाऐं मुख्य रूप से घर गृहिणी होती है, नौनिहालों की उत्तम परवरिश महिलाओं की मुख्य व एकाधिकारपूर्ण जिम्मेदारी होती है। बिना उनके लालन–पालन के मानवता के अस्तित्व कदापि संभव नहीं है।'' उन्होंने विवाह को महिलाओं के लिए अवश्यंभावी चीज मानने से इंकार कर दिया।

यद्यपि गाँधी सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियों की सक्रिय भूमिका के प्रबल पैरोकार नहीं थे फिर भी जब 1921 में महिला मताधिकार का मुद्दा उठा तो उन्होंने इसका पुरजोर समर्थन किया तथा सत्याग्रह आंदोलन व दांडी मार्च की सफलता में स्त्रियों की उत्साहपूर्ण व सक्रिय भागीदारी की निर्णायक भूमिका थी। ''गाँधी अहिंसक संघर्षों में महिलाओं की भूमिका को अपनी मूल अवधारणा के विपरीत नहीं मानते थे। वरन् इसके उलट उनका ख्याल था, सत्याग्रह में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित कर महिलाऐं सम्पूर्ण मानवता के पालन–पोषण की अपनी जिम्मेदारी को और अधिक सुविस्तृत व सुव्यापक करती है।'' कैथल में स्त्रियों की एक सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा– ''समाज की बुनियाद घर के अस्तित्व पर टिकी होती है तथा 'धर्म' के विकास का श्रेष्ठतम स्थान घर होता है।''

द्वितीय अध्याय ''स्त्रियों की स्थिति के विषय में गाँधीजी के विचार'' के अन्तर्गत आधुनिक भारत में गाँधीजी के पहले ही कुछ सुधारकों के व्यक्तिगत प्रयासों तथा कई सुधार संगठनों द्वारा किये गए कार्यों के परिणामस्वरूप स्त्रियों के उद्धार की समस्या के प्रति पर्याप्त जनचेतना उत्पन्न हो चुकी थी। गाँधीजी

ने इसे नयी स्फूर्ति एवं उत्साह प्रदान किया। स्त्रियों के संबंध में गांधीजी के दृष्टिकोण को उनके सामान्य जीवन दर्शन के संदर्भ में रख कर ही ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। अहिंसा और सत्य पर आधारित इस जीवन दर्शन में किसी प्रकार के भेदभाव अथवा ऊँच–नीच की भावना के लिए स्थान नहीं है।

गांधीजी महिलाओं के पुनरूत्थान के बहुत बड़े हिमायती थे। उनके चर्खा, नशाबन्दी, ग्रामोत्थान, तथा हरिजनों और महिलाओं के उत्थान के कार्यक्रमों ने राजनीतिक दासता के विरूद्ध संघर्ष के लिये एक मजबूत आधार तैयार किया। इस संघर्ष में उन्होंने महिलाओं को पुरूषों के बराबर का हिस्सेदार बनाया। किसी भी रूढ़िवादी समाज में महिलाओं के उद्धार का काम कोई सरल नहीं हुआ करता। महात्मा गांधी ने बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा तथा विधवाओं के प्रति होने वाले क्रूर अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाई।

नारी की दयनीय स्थिति गाँधीजी को बुरी तरह खली। उन्होंने देखा की नारी में आत्मबलिदान की, त्याग की, सहिष्णुता की, कष्ट–सहन की क्षमता थी, परंतु पुरूषों ने उसे दासी बनाकर उसकी उपेक्षा और अवहेलना की हद कर दी। साहस, शूरता और वीरता की तो बात ही क्या बेचारी आत्मरक्षा में भी समर्थ नहीं थी। उनका मानना था कि नारी पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए जो पुरूषों पर ना लगाया हो। लड़का और लड़की में कोई भेद नहीं होना चाहिए। उनके अनुसार जब तक नारी इस शोचनीय स्थिति में पड़ी रहेगी तब तक न तो नारी का उद्धार होगा और न कल्याण होगा, न नर का न तो सारे समाज की स्थिति सुधरेगी न देश या राष्ट्र की।

अपने पत्र यंग इंडिया में उन्होंने लिखा, 'पुरूषों द्वारा स्वनिर्मित सम्पूर्ण बुराईयों में सबसे घृणित, विभत्स व विकृत बुराई है। उसके द्वारा मानवता के आधे हिस्से (जो कि मेरे लिए स्त्री जाति है न कि कमजोर व पिछड़ी जाति) को उसके न्यायसंगत अधिकार से वंचित करना। यदि मैं स्त्री रूप में पैदा होता तो मैं पुरूषों द्वारा थोपें गए किसी भी अन्याय का जमकर विरोध करता तथा उनके खिलाफ विद्रोह का झण्डा बुलंद करता।'

गाँधीजी ने विवेकहीन परम्पराओं और अन्धविश्वासों पर प्रहार करते हुए दृढ़तापूर्वक यह घोषणा की कि जब तक भारतीय समाज में इन कुरीतियों का विरोध कर समानता को स्वीकार नहीं किया जाएगा तब तक भारत का उत्थान सम्भव नहीं है। गाँधीजी ने घोषित किया कि व्यक्ति को आत्मोन्नति के प्रयत्न करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये अपितु सबकी उन्नति को ही अपनी उन्नति समझना चाहिये।

तृतीय अध्याय ''राजस्थान में महिला जागृति'' है। 19वीं शताब्दी में राजस्थान क्षेत्र में सामंतवादी शासन पद्धति प्रचलित थी। सम्भवतः ही सामंतवाद अलोकतान्त्रिक एवं एक व्यक्ति का शासन होता है जिसमें स्वतन्त्रता, समानता, अधिकारों आदि का कोई सरोकार नहीं होता। उल्लेखनीय है कि सामन्तवादी विचारधारा मध्ययुगीन विचारों से प्रेरित एवं प्रभावित थी, जिसमें आधुनिक तत्वों के स्थान पर प्राचीन कालीन प्रथायें मान्यताऐं, परम्पराओं को व्यक्तिगत जीवन में अत्यधिक महत्व दिया जाता था एवं इन्हें लागू करने के लिए तत्कालीन समाज किसी भी सीमा तक जा सकता था। ऐसी विकट स्थिति में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, उन्हें राजनैतिक, सामाजिक एवं सम्पत्ति सम्बन्धी किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं थे। स्त्रियों को अनेक प्रकार की प्रथाएँ, परम्पराओं मान्यताओं को आरोपित कर रखा था। जैसे– बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, दहेज–प्रथा, विधवा का नरकीय जीवन, अशिक्षा आदि।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी में राजस्थान उन मध्यकालीन मूल्यों को समेटे हुआ था जिसमें लोकतन्त्र माननवाद, कल्याण, आदि अवधारणाओं का कोई स्थान नहीं था। राजस्थानी समाज में जागृति के स्थान पर केवल मात्र परम्पराओं के पालन में विश्वास किया जाता था जो कि प्रतिक्रियावादी थी। सामंतवाद एक ऐसी वैचारिक विचारधारा होती है। जिसमें किसी नवसृजित मूल्यों के सरोकार से कोई तादात्म्य नहीं होता। इन परिस्थितियों में स्त्रियों को

केवल घर की चार दीवारी तक सीमित कर दिया एवं उनकी समस्त प्रकार की गतिविधियां समाज के पुरूषों पर निर्भर रहती थी। इन सभी विविध कारणों से महिलाओं की अत्यन्त दयनीय स्थिति थी।

इस दौरान 19वीं शताब्दी के समाज–सुधार आन्दोलन के समाज सुधार कार्यों से महिलाओं में स्फूर्ति का विकास हुआ। इसके अलावा 19वीं शताब्दी में देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए गतिविधियाँ भी चल रही थी जिनसे महिलाओं को व्यापक प्रेरणा प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगी। और वे अपने सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के साथ–साथ राष्ट्रीय विचारधारा से जुड़ने लगी, धीरे–धीरे महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति इतनी अधिक जागरूक होती चली गई कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग करने लगी।

राजस्थान की महिलाएँ अपने शौर्य त्याग और बलिदान के लिए सदैव ही अग्रणी रही है, यहाँ कि महिलाओं ने पुरुषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर खेत–खलिहान और कारखानों में काम किया है। वहीं इन्होंने आन्दोलन में अत्याचारों में पुरुषों के साथ संघर्ष किया। राजस्थान की आम महिलाओं में जागृति का अंकुर 1925 में प्रस्फुटित हुआ। समाज सुधार आन्दोलन में घूंघट हटाना, नव जागृति के लोक गीत गाना, रूढ़िवादिता का त्याग और अंधविश्वासों के त्याग आदि अधिकांश कार्यक्रम महिलाओं के लिए आयोजित किए गए एवं जिस द्रुत गति से महिलाओं ने इन कार्यों को अपनाया आज उसी का परिणाम है कि आज इस राज्य की महिलाओं कि शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक गतिविधियाँ अत्यधिक अच्छी एवं उच्च प्राथमिकता वाली रही।

चतुर्थ अध्याय ''कृषक आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी'' है। राजस्थान के देशी राज्यों में भूमि का अधिकांश भाग जागीरदारों के नियंत्रण में था। अपेक्षाकृत खालसा क्षेत्र के किसानों की स्थिति अच्छी थी, क्योंकि वहाँ राजा का किसानों के सीधा सम्बन्ध था। इसके अतिरिक्त खालसा क्षेत्र में

स्थायी भूमि बन्दोबस्त की व्यवस्था सम्पन्न हो जाने के कारण किसानों की बहुत सी शिकायतों का समाधान हो चुका था। जागीर क्षेत्र में भूमि बन्दोबस्त न होने से वहाँ का किसान वर्ग लाग–बाग, बेगार और लगान की ऊँची दरों के कारण पूर्णतया दुःखी व चिन्तित था। जागीरदार अपने क्षेत्र में दिनोंदिन निरंकुश व स्वेच्छाचारी बनता जा रहा था। राजा का जगीरी क्षेत्र में न्यूनतम हस्तक्षेप था। ऐसी स्थिति में किसान वर्ग को जागीरदार व राजा से न्याय मिलने की सम्भावना नहीं रही, अतः उसने आन्दोलनों का सहारा लिया।

तत्कालीन राजस्थान में सिरोही (भील आन्दोलन) और अलवर (मेव आन्दोलन) राज्यों को छोड़कर अन्य सभी रियासतों में सामान्यतः आन्दोलन अहिंसात्मक तौर पर संचालित किये गये थे। राजस्थान में किसान आन्दोलनों की एक अन्य विशेषता यह थी कि इनका आधार जातिगत रहा। उदारहणार्थ, बिजौलिया आन्दोलन में धाकड़ जाति की महती भूमिका रही। सीकर और शेखावाटी के आन्दोलनों में जाट जाति का वर्चस्व रहा। मेवाड़ और सिरोही राज्यों के किसान आन्दोलनों के पीछे भील और गरासिया जातियों की शक्ति रही। इसी प्रकार अलवर और भरतपुर राज्यों के आन्दोलनों में मेवों की मुख्य भूमिका रही। आन्दोलनों को सुनियोजित रूप से संचालित करने का श्रेय जाति पंचायतों व जाति संगठनों को दिया जा सकता है। जातीय पंचायतों के निर्णय सभी के लिए अनिवार्य हो गया था क्योंकि ऐसा न करने पर उन्हें जातीय बहिष्कार का भय बना रहता था। एकता बनाये रखने के लिए देवी–देवताओं को साक्षी बनाकर अथवा गंगाजल हाथ में रखवाकर उन्हें शपथ दिलाई जाती थी। भील और गरासियों का ''एकी'' तथा जाटों का ''प्रजापति'' महायज्ञ संगठनों का आधार जाति ही थी।

राजस्थान में प्रायः सभी जागीरदार राजपूत जाति से सम्बन्धित थे और किसान वर्ग में विभिन्न जातियाँ थीं, जिनमें मुख्यतः जाट जाति के लोग थे। सामाजिक दृष्टि से शासक वर्ग किसान वर्ग को हीन दृष्टि से देखता था तथा नीचा समझता था। सामाजिक असमानता के कारण राजपूतों और जाटों के

बीच कटुता का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। राजस्थान में किसान आन्दोलनों को यह एक सामाजिक पहलू था। राजस्थान के किसान आन्दोलनों का नेतृत्व प्रायः बाहर के लोगों ने ही किया था। बिजौलिया, बेगूँ और बून्दी आन्दोलनों में अजमेर में स्थित सेवा संघ की महती भूमिका रही। विजयसिंह पथिक, रामनारायण आदि नेताओं ने उक्त आन्दोलनों का संचालन किया था। शेखावाटी व सीकर के आन्दोलनों को चलाने का श्रेय रामनारायण चौधरी, ठाकुर देशराज तथा अखिल भारतीय जाट महासभा के नेताओं को दिया जा सकता है। इसी प्रकार मेव आन्दोलनों का नेतृत्व गुड़गाँवाँ के यासीन खाँ ने किया था।

देशी राज्यों में प्रजामण्डलों की स्थापना के बाद किसान आन्दोलनों को नई दिशा प्राप्त हुई। प्रजामण्डलों ने किसानों की दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए आह्वान किया था। उन्होंने समय–समय पर आन्दोलन कर किसानों की शिकायतों को दूर करवाने के लिए भरसक प्रयत्न किये। उन्हीं के प्रयासों के फलस्वरूप जागीरी क्षेत्रों में भूमि बन्दोबस्त की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। आजादी के बाद राजस्थान राज्य का गठन हुआ, तब से किसानों की स्थिति को सुधारने कें लिए अनेक कानून बनाये गये। अन्ततः जागीर उन्मूलन कानून पारित किया गया जिसके फलस्वरूप सदियों पुरानी सामन्ती व्यवस्था की इतिश्री हो गई। भूमि सुधार नियमों के कारण किसान वर्ग की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा।

पंचम अध्याय ''गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम एवं महिलाओं की भूमिका'' है। वास्तव में गांधीवादी रचनात्मक कार्य जैसै खादी, चरखा, बालिका शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण, मद्य निषेध आदि अधिक प्रखर थी। प्रारंभ से ही गाँधी जी ने अस्पृश्यता की बात कही और यह उनके कार्यक्रम का मुख्य अंग था। स्त्रियों के कल्याण की बात भी काफी पहले ही उनके कार्यक्रम का अंग थी। किसी भी आंदोलन की सफलता में रचनात्मक कार्य पृष्ठाधार का कार्य करने लगी। ''बारदोली के मामले में भी गाँधी जी ने सफलता का बहत बड़ा कारण यह

बताया था कि बारदोली सत्याग्रह के छह–सात साल पहले से वहॉ सामाजिक और आर्थिक सुधार का रचनात्मक कार्यक्रम चलता रहा था।'' सन् 1920 में गाँधी जी ने काँग्रेस द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम भारतवर्ष के सामने रखा था। गाँधी जी के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम अहिसंक राज्य की व्यवस्था के विकास का ढॉचा है। भारत वर्ष का रचनात्मक कार्यक्रम आवश्यक रूप से ग्रामकार्य है। गाँधी ने इस कार्यक्रम में कई बातों को शामिल किया और ये ऐसी बातें हैं जो अहिंसा द्वारा राष्ट्र की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए अनिवार्य है।

राजस्थान में रचनात्मक कार्यों की दृष्टि से राजस्थान सेवक संघ, गोविन्द गढ़, चरखा संघ, रींगस खादी एवं मेवाड़ सेवा संघ, अग्रवाल मित्र मण्डल, तालिम संघ, ग्रामोद्योग संघ, आदिवासी सेवा समिति, वैदिक शिक्षा समिति, राजस्थान हरिजन सेवक संघ, आर्य महिला मण्डल एवं विविध रचनात्मक सम्मेलन आदि का अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा। संगठनों का महत्वपूर्ण कार्य कार्यकर्त्ताओं को संगठित करना था। जिसमें महिलाओं ने सुधार के दृष्टि से अत्यधिक संख्या में भाग लिया। इन महिलाओं में श्रीमती सुशीला देवी, भगवती देवी, कमला जैन, कुमारी रजिया जी तहसीन, श्रीमती सुकीर्ति देवी, श्रीमती दुर्गा देवी अत्यन्त महत्वपूर्ण रही।

शिक्षा के प्रसार के कार्यों में रतन देवी शास्त्री, जानकी देवी बजाज, गीता बजाज ने महत्ती भूमिका निभाई। खादी प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से जानकी देवी बजाज, सुशीला देवी, भगवती देवी विश्नोई, श्रीमती कोकिला देवी, गुलाब देवी भण्डारी और श्रीमती शान्ति देवी ने महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रत्येक गांव–गांव एवं घर–घर में चरखा उपलब्ध करवाने के लिए राजस्थान चरखा संघ के निर्देशन में श्रीमती जानकी देवी बजाज, श्रीमती भागीरथी देवी तथा विमला देवी चौधरी ने चरखें उपलब्ध करवायें एवं बहनों को सूत कातने के लिए प्रेरित किया। जिन बहनों को सूत कातना नहीं आता था उन्हे सूत कातना सिखाया गया। इन महिलाओं ने रचनात्मक कार्यक्रम के सभी पक्षों पर

व्यापक कार्य किया। महिलाओं ने न केवल खादी एवं चरखा का प्रचार–प्रसार किया, अपितु शैक्षणिक वातावरण तैयार करने में इसके विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आजादी के पूर्व में राजस्थान की अनेक रियासतों में रचनात्मक कार्यक्रम चलाये गये थे। मेवाड़ के बिजोलिया क्षेत्र में देश के एक तरह प्रथम किसान आंदोलन के साथ खादी ग्रामोद्योग की स्थापना शुरूआत हुई। हरिजन सेवा, आदिवासी सेवा, शैक्षणिक एवं अन्य रचनात्मक कार्यक्रम रियासतों मे ंचलने लगे। गांधी जी का खादी से तात्पर्य स्वदेशी से था। स्वदेशी को बढ़ावा देना जो उनके आन्दोलन का मूलमंत्र था।

षष्टम अध्याय ''सक्रिय राजनीति और महिलाओं की भागीदारी'' है। राजस्था में राजनीतिक चेतना एवं महिलाओं की इसमें सक्रियता को प्रजामण्डलों एवं अन्य राजनीतिक संस्थाओं ने अत्यधिक प्रभावी बनाया। इस क्षेत्र में बने संगठन मारवाड़ लोक परिषद 1928, 24 अप्रैल, 1938 को मेवाड़ प्रजामण्डल, 1931 में जयपुर प्रजामण्डल की स्थापना, 1931 में कोटा प्रजामण्डल, 1938 में अलवर कांग्रेस प्रजामण्डल, 1938 में शाहपुरा प्रजामण्डल एवं भरतपुर प्रजामण्डल की स्थापना भरतपुर के बाहर रेवाड़ी में की गई। उल्लेखनीय है कि प्रजामण्डल आन्दोलन रियासतों में अखिल भारतीय कांग्रेस के पूरक आंदोलन के रूप में चलाया गया था। इस स्त्रियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया, भाग लेने वाली स्त्रियों में श्रीमती विमला देवी चौधरी, भगवती देवी, रतन शास्त्री, जानकी देवी, गीता बजाज, महिमा देवी किंकर, नारायणी देवी वर्मा, रानी देवी, रजिया तहसीन, सुशील देवी, कमला जैन, तारा बहन, सुकीर्ति देवी, दुर्गा देवी, रामप्यारी देवी, नगेन्द्र बाला, गंगा बाई, कमला स्वाधीन, किशोरी देवी, वीर बाला भावासार, नारायणी देवी, अंजना देवी आदि प्रमुख रही।

लेकिन सन् 1938 में सुभाष चन्द्र बोस की अध्यक्षता में कांग्रेस के हरिपुरा आन्दोलन में रियासतों की जनता को अपने–अपने राज्यों में उत्तरदायी शासन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता संगठन बनाकर आंदोलन करने

और जनजागृति फैलाने का आह्वान किया गया। स्वयं जवाहर लाल नेहरू ने अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के अध्यक्ष के रूप में कार्य करना स्वीकार किया। 1938 के बाद राजस्थान की लगभग सभी रियासतों में प्रजामण्डलों की स्थापना हुई और सभी रियासतों में उत्तरदायी शासन की माँग को लेकर आंदोलन किये जाने लगे।

वस्तुतः गांधीजी द्वारा भारतीय राजनीति में सत्याग्रह आरंभ करने से पूर्व ही राजस्थान में सत्याग्रह आन्दोलन का आरंभ हो चुका था, जिसके प्रणेता विजय सिंह पथिक थे। उन्होंने लोगों को सत्याग्रह से परिचित करवाया एवं जनता को अन्याय एवं असमानता के विरूद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक तक राजस्थान की प्रमुख रियासतों में शिक्षा का प्रसार हो गया था। इन रियासतों के अभिजात वर्ग के नवयुवक उत्तरप्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से, जैसे इलाहाबाद, लखनऊ व आगरा आदि, उच्च शिक्षा प्राप्त कर वापस आ चुके थे। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक तक बहुत से राज्यों में पढ़े लिखे लोगों की कमी नहीं रही थी। किन्तु राज्य में कार्य करने का अवसर नहीं मिलने से उनमें असंतोष व्याप्त हो रहा था। अपनी प्रतिभा की उपेक्षा से यह वर्ग रियासती शासकों से अत्यधिक क्रुद्ध था। उच्च पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त यह स्थानीय वर्ग स्वतन्त्रता, समानता, राष्ट्रीयता एवं लोकतन्त्र की अवधारणाओं से तथा उन आदर्शों की प्राप्ति के लिए हुई विभिन्न क्रान्तियों के इतिहास से पूर्णतः अवगत था। अतः इसी मध्यम वर्ग से रियासती जनता के राजनैतिक नेतृत्व का आविर्भाव हुआ। इसी शिक्षित वर्ग ने रियासत में प्रचलित आर्थिक व्यवस्था एवं राजनैतिक व प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त अनियमितताओं तथा दोषों को उजागर कर जनता में जागृति उत्पन्न की। इसी वर्ग ने भाषणों, लेखों, जुलूसों तथा सार्वजनिक सभाओं द्वारा जनता में राजनैतिक चेतना का प्रसार किया और उसे नागरिक अधिकारों तथा उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु संघर्ष करने की प्रेरणा एवं क्षमता प्रदान की।

सप्तम अध्याय ''महिला कार्यकर्त्ताओं का संक्षिप्त जीवन वृत्त'' है। भारतीय स्वतंत्रता–आन्दोलन का इतिहास स्वतंत्रता कि लिए भारतीयों के संघर्ष की अदभुत गाथा है। इस संघर्ष में पुरूषों और महिलाओं ने समान रूप से

भाग लिया। भारतीय महिलाओं का योगदान इसमें इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि उनका सामाजिक उत्थान हुए बहुत लंबा समय व्यतीत नहीं हुआ था। घर का मोर्चा हो या राजनीति का रणक्षेत्र, महिलाओं ने जिस साहस, सहिष्णुता और वीरता से स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भूमिका निभाई, वह इतिहास की धरोहर है।

निष्कर्षतः गांधीजी महिलाओं के पुनरूत्थान के बहुत बड़े हिमायती थे। उनके चर्खा, नशाबन्दी, ग्रामोत्थान, तथा हरिजनों और महिलाओं के उत्थान के कार्यक्रमों ने राजनीतिक दासता के विरूद्ध संघर्ष के लिये एक मजबूत आधार तैयार किया। इस संघर्ष में उन्होंने महिलाओं को पुरूषों के बराबर का हिस्सेदार बनाया। किसी भी रूढ़िवादी समाज में महिलाओं के उद्धार का काम कोई सरल नहीं हुआ करता। महात्मा गांधी ने बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा तथा विधवाओं के प्रति होने वाले क्रूर अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाई।

राजस्थान में प्रजामंडल आन्दोलन राजनीतिक जागरण एवं देश में गाँधी जी के नेतृत्व में चल रहे स्वतंत्र संघर्ष का परिणाम था। इसकी पृष्ठभूमि राजस्थान राज्यों में चल रहे कृषक आन्दोलन थे। कृषक आन्दोलन उस व्यापक असन्तोष के अंग थे, जो प्रचलित राजनीतिक और आर्थिक ढांचे में विद्यमान था। कृषकों ने विभिन्न आन्दोलनों के माध्यम से उस समय के ठिकानेदारों और जागीरदारों के अत्याचारों को तथा कृषि संबंध में आये विचार को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जागीरदारी व्यवस्था उस पैतृकवादी स्वरुप को छोड़कर शोषणात्मक स्वरुप ले चुकी थी। प्रचलित व्यवस्था में असन्तोष व्यापक था। इसलिए 1920 ई. के पश्चात् राजनीतिक अधिकारों और सामाजिक सुधारों से संबंधित संस्थाओं की स्थापना हुई। इस प्रकार गांधीवादी विचारों और कार्यों प्रभावित होकर राजस्थान में महिला जागरण का अभूतपूर्व कार्य किया गया। व्यवहारिक दृष्टि से महिलाओं की प्रगति में जितना सहयोग महात्मा गांधी ने दिया उतना सम्भवतः किसी अन्य ने नहीं दिया। इसी का परिणाम है कि आज वे जीवन के सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में पुरूषों के साथ मिलकर कार्य कर रही हैं, तथा देश की उन्नति में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।